सत्यमेव जयते

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

Digital India
Power To Empower

जनवरी - मार्च, 2021

ज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

अंक : 69

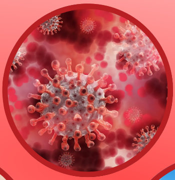

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

वैतशआ
CSTT

Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Education
(Department of Higher Education)
Government of India

ज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

अंक :69

जनवरी-मार्च, 2021

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

© भारत सरकार 2021
ISSN: 2321-0443

प्रकाशक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा मंत्रालय ,उच्चतर शिक्षा विभाग
भारत सरकार
पश्चिमी खंड -7, रामकृष्ण पुरम,
नई दिल्ली- 110 066

विक्रय हेतु पत्र व्यवहार का पता

बिक्री एकक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा मंत्रालय, उच्चतर शिक्षा विभाग
भारत सरकार
पश्चिमी खंड -7, रामकृष्ण पुरम,
नई दिल्ली -110 066
टेलीफोन: 011- 26105211
फैक्स: 011- 26102882

बिक्री स्थान
प्रकाशन नियंत्रक
प्रकाशन विभाग, भारत सरकार
सिविल लाइन्स
दिल्ली -110 054

सदस्यता शुल्क	
	भारतीय मुद्रा
व्यक्तियों / संस्थानों के लिए प्रति अंक	रु .14.00
वार्षिक चंदा	रु .50.00
विद्यार्थियों के लिये प्रति अंक	रु .8.00
वार्षिक चंदा	रु .30.00

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। संपादक मंडल की इनसे सहमति अनिवार्य नहीं है ।
यह पत्रिका वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली के प्रचार-प्रसार के साथ हिंदी में वैज्ञानिक लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए प्रकाशित की जाती है।

संपादन एवं समन्वय

परामर्श एवं संपादन मंडल

प्रोफेसर एम.पी. पूनियां
अध्यक्ष एवं प्रधान संपादक

प्रोफेसर गोपा भारद्वाज (सेवा निवृत्त) मनोविज्ञान विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	डॉ. अनिल कुमार धीमान सूचना वैज्ञानिक गुरुकुल काँगड़ी (सम-विश्वविद्यालय) हरिद्वार (उत्तराखंड)
डॉ. सुरुची भाटिया एसोसिएट प्रोफेसर मनोविज्ञान विभाग श्यामा प्रसाद मुखर्जी कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	डॉ. भ. प्र. निदारिया (सेवा निवृत्त) उपनिदेशक केंद्रीय हिंदी निदेशालय नई दिल्ली
संपादक डॉ. संतोष कुमार सहायक निदेशक	

अध्यक्ष की कलम से

ज्ञान विज्ञान के विभिन्न स्तरों पर शिक्षण माध्यम के रूप में हिंदी के विकास के लिए राष्ट्रपति के आदेश से भारत सरकार द्वारा शिक्षा मंत्रालय के अधीन सन 1961 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की गई । अब तक आयोग ने विभिन्न विषयों की तकनीकी शब्दावली, अखिल भारतीय शब्दावली, परिभाषा कोश, चयनिकाओं, पाठमालाओं तथा विश्वविद्यालय स्तर के हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओँ की पुस्तकों के निर्माण संबंधी विविध प्रयास किए हैं।

आयोग की ओर से सामाजिक विज्ञानों तथा मानविकी में हिंदी में उच्च स्तरीय लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए सामाजिक विज्ञानों की त्रैमासिक पत्रिका 'ज्ञान गरिमा सिंधु' का प्रकाशन किया जा रहा है। इससे विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों एवं उच्च शिक्षा तथा अनुसंधान कार्य में रत छात्रों को उनके विषय की अद्यतन जानकारी मिलने के अतिरिक्त हिंदी में मौलिक लेखन एवं स्तरीय अनुवाद को प्रोत्साहन मिलता है, इसके साथ-साथ आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली के प्रयोग को सुनिश्चित करने के लिए लेखकों को स्तरीय मंच भी प्रदान किया जाता है। इस पत्रिका में उच्च स्तरीय लेख प्रकाशित किए जाते हैं।

इस क्रम में 'ज्ञान गरिमा सिंधु' का 69वाँ अंक पाठकों एवं लेखकों को सौंपते हुए, मुझे अपार खुशी का अनुभव हो रहा है । इस अंक में विभिन्न जानकारी, नवीनतम अनुसंधानों एवं शोध कार्यों की अद्यतन सूचनाएँ एक ही स्थान पर हिंदी भाषा में उपलब्ध कराई जा रही हैं। हम सब जानते हैं कि पत्रिकाएँ संस्था विशेष के ज्ञान की परिचायक होती हैं एवं राष्ट्रीय स्तर पर अलग-अलग क्षेत्रों में हो रहे महत्वपूर्ण अनुसंधानों एवं शोध कार्यों का एक समेकित और जनोपयोगी सार्थक मंच भी प्रदान करती हैं। यद्यपि अन्य वैज्ञानिक पत्रिकाओं के समांतर 'ज्ञान गरिमा सिंधु' का उद्देश्य मूल रूप से हिंदी में वैज्ञानिक लेखन का प्रचार-प्रसार करना है। जिसका कार्यान्वयन व अनुपालन पत्रिका अपने अंकों में करती रही है। पत्रिका का यह अंक कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण और संग्रहणीय है। जैसा कि आपको विदित है, नई शिक्षा नीति 2020 को सरकार ने लागू कर दिया है। इस संदर्भ में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की भूमिका पर बल दिया गया है। इस अंक में नई शिक्षा नीति संबंधी लेखों को शामिल किया गया है, वहीँ पंचायती राज संस्थान, महात्मा गाँधी का राष्ट्रभाषा-दर्शन, पहले सिनेमा का रंगीन-रूपक: हरिश्चंद्राची फैक्ट्री के साथ-साथ हिंदी साहित्य संबंधी विविध लेखों, आदिवासी एवं दलित विमर्श आदि को भी शामिल किया गया है। पूर्व की भांति इस अंक में दक्षिण भाषी हिंदीतरभाषियों के लेख भी सम्मिलित किए गए हैं, जो हिंदी के प्रति उनकी निष्ठा को दर्शातें हैं। इस अंक में प्रकाशित लेखों से पाठक भी लाभान्वित होंगे ऐसा विश्वास है।

मैं इस अवसर पर विभिन्न विश्वविद्यालयों, तकनीकी, वैज्ञानिक एवं अन्य संस्थाओं के वैज्ञानिकों, लेखकों से अपेक्षा करता हूँ कि वे आयोग के विशेषज्ञों, विद्वानों के सहयोग से

तैयार की गई प्रामाणिक एवं मानक शब्दावली का अधिक से अधिक उपयोग कर अपना सार्थक सहयोग आयोग को प्रदान करेंगे। यह पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है, इसमें मानविकी, सामाजिक विज्ञान, शिक्षा शास्त्र आदि विषयक लोकप्रिय, ज्ञानवर्धक, ज्ञानोपयोगी एवं रोचक सामग्री प्रस्तुत की जाती है ।

मैं उन सभी लेखकों, विशषज्ञों एवं आयोग के अधिकारियों और कर्मचारियों; जिन्होंने इस पत्रिका के निर्माण, समन्वय एवं संशोधन कार्य में सहयोग दिया; के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। विशेष रूप से डॉ. संतोष कुमार, सहायक निदेशक जिन्हें इस पत्रिका के संपादन तथा प्रकाशन का उत्तरदायित्व सौंपा गया था; का धन्यवाद व्यक्त करता हूँ; जिनके अथक प्रयासों से यह पत्रिका उपलब्ध हो सकी।

सुधी पाठकों के अमूल्य सुझावों व सहयोग की प्रतीक्षा रहेगी।

(**प्रोफेसर एम. पी. पूनियां**)
अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

अनुक्रम

(लेखों का क्रम लेखकों के नाम से रोमन अकारादि क्रम से रखा गया है)

अध्यक्ष की कलम से

अ. क्र.	आलेख शीर्षक	लेखक	पृष्ठ क्रमांक
1	विज्ञान क्या है	अज़ीज़ राय	1
2	नई शिक्षा नीति और पुस्तकालय	डॉ. अनिल कुमार धीमान	10
3	ऋणजल धनजल : अवर्षण और वर्षण की त्रासदी	अनुपमा तिवारी	23
4	मध्यप्रदेश की विमुक्त जनजाति बंजारा का सामाजिक - सांस्कृतिक परिदृश्य	डॉ. अर्चना श्रीवास्तव	36
5	लाहौल स्पीति क्षेत्र के लोक गीत	छविंदर कुमार	50
6	द्वितीय भाषा शिक्षण और प्रौद्योगिकी	डॉ. दीपक पांडेय	67
7	महात्मा गांधी का राष्ट्रभाषा-दर्शन	प्रो. हरीश कुमार शर्मा	73
8	मोक्षदायिनी नर्मदा	प्रो. खेमसिंह डहेरिया	86

9	21वीं सदी के कथा-साहित्य में दलित- चेतना	डॉ॰ लवलीन कौर	103
10	हिन्दी में हाइकु : शक्ति और संभावना	डॉ.मनोज पाण्डेय	120
	जेंडर इक्वलिटीः विकास की पहली कड़ी	मानसी सेंगर डॉ. सुरुची भाटिया	131
11	राजभाषा हिंदी और सूचना प्रौद्योगिकी	नेहा रंजन	140
12	गुप्तकालीन सर्जनात्मकता के संदर्भ और कालिदास की मूल्यदृष्टि	डॉ. निशि त्यागी	152
13	गद्य क्षणिका : रामदेव धुरंधर का अभिनव साहित्यिक प्रयोग	डॉ नूतन पाण्डेय	168
14	भाषा, साहित्य और प्रौद्योगिकी	पद्मा पाटील	187
15	पंचायती राज संस्थान और संवैधानिक प्रावधान	प्रो. पवन कुमार	205
16	कोरोना काल में ध्यान के भावनात्मक लाभ	डा. प्रणव कुमार डा. प्रज्ञेंदु	213
17	पहले सिनेमा का रंगीन-रूपक: ‘हरिश्चंद्राची-फैक्ट्री’	प्रताप सिंह	223
18	सेवानिवृत्ति उपरान्त सेना के जे सी ओ व अन्य पदों के लिए द्वितीय कैरियर /व्यवसाय व उपजीविका के विकल्प एवं सुझाव	डॉ. राहुल उठवाल	230

19	हिंदी-तमिल, तमिल- हिंदी अनुवाद परंपरा और प्रदेय	डॉ. पी. राजरत्नम	258
20	मोहन राकेश कृत नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में प्रेम और प्रभुता का द्वंदव्	रामायण प्रसाद विश्वकर्मा	270
21	विद्यालय नेतृत्व और नेतृत्व विकास	डॉ. रमेश तिवारी	279
22	मानसिक परिवर्तन, शिक्षक प्रशिक्षण, कौशल विकास एवं प्रौद्योगिकी: नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के कार्यान्वयन में प्रमुख मुद्दे	प्रो. (डा.) एस. बी. शर्मा	289
23	सूचना प्रौद्योगिकी और हिंदी भाषा	डॉ. सचिन गपाट	302
24	सामाजिक विज्ञान में शिक्षण एवं मूल्याकन : एक परिचय	डॉ. संजय प्रसाद श्रीवास्तव	309
25	समकालीन हिन्दी उपन्यास: आदिवासी समाज	डॉ. सविता डहेरिया	317
26	आदिवासी कविता में पर्यावरण विमर्श	श्रीलेखा के. एन	332
27	एनईपी: सशक्त भारत में शिक्षा का योगदान	डॉ. सुरुचि भाटिया अनिका यादव ग्रेस हाओकिप	342
28	साहित्य, समाज और संस्कृति	डॉ. सूर्यकांत त्रिपाठी	354

29	समकालीन हिंदी कविता में आदिवासी विमर्श का स्वरूप	प्रो. तीर्थेश्वर सिंह	367
30	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजशास्त्र की प्रासंगिकता	विदुषी शर्मा	374

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत

शब्दावली निर्माण के सिद्धांत

1. अंतरराष्ट्रीय शब्दों को यथासंभव उनके प्रचलित अंग्रेजी रूपों में ही अपनाना चाहिए और हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार ही उनका लिप्यंतरण करना चाहिए। अंतरराष्ट्रीय शब्दावली के अंतर्गत निम्नलिखित उदाहरण दिए जा सकते हैंः

   (क) तत्वों और यौगिकों के नाम, जैसे - हाइड्रोजन, कार्बनडाइआक्साइड, आदि।

   (ख) तौल और माप की इकाइयाँ और भौतिक परिमाण की इकाइयाँ, जैसे - डाइन, कैलॉरी, ऐम्पियर, आदि।

   (ग) ऐसे शब्द जो व्यक्तियों के नाम पर बनाए गए हैं, जैसे- मार्क्सवाद (कार्ल मार्क्स), ब्रेल (ब्रेल), बायॅकाट (कैप्टेन बॉयकाट), गिलोटिन (डॉ. गिलोटिन) गेरीमैंडर (मि. गेरी) एम्पियर (मि. एम्पियर फारेनहाइट तापक्रम (मि. फारेनहाइट आदि)।

   (घ) वनस्पतिविज्ञान, प्राणिविज्ञान, भूविज्ञान आदि की द्विपदी नामावली।

   (ड.) स्थिरांक, जैसे - π, g आदि

(च) ऐसे अन्य शब्द जिनका आमतौर पर सारे संसार में व्यवहार हो रहा है, जैसे- रेडियो, पेट्रोल, रेडार, इलेक्ट्रान, प्रोटॉन, न्यूट्रान, आदि।

(छ) गणित और विज्ञान की अन्य शाखाओं के संख्यांक, प्रतीक, चिह्न और सूत्र, जैसे - साइन, कोसाइन, टेन्जेन्ट, लॉग, आदि (गणितीय संक्रियाओं में प्रयुक्त अक्षर रोमन या ग्रीक वर्णमाला के होने चाहिए)

2. प्रतीक, रोमन लिपि में अंतरराष्ट्रीय रूप में ही रखे जाएँगे परंतु संक्षिप्त रूप नागरी और मानक रूपों में भी, विशेषतः साधारण तौल और माप में लिखे जा सकते हैं, जैसे - सेंटीमीटर का प्रतीक cm हिंदी में भी ऐसे ही प्रयुक्त होगा परंतु नागरी संक्षिप्त रूप से.मी. भी हो सकता है। यह सिद्धांत बाल-साहित्य और लोकप्रिय पुस्तकों में अपनाया जाएगा, परंतु विज्ञान और प्रौद्योगिकी की मानक पुस्तकों में केवल अंतरराष्ट्रीय प्रतीक, जैसे - cm ही प्रयुक्त करना चाहिए।

3. ज्यामितीय आकृतियों में भारतीय लिपियों के अक्षर प्रयुक्त किए जा सकते हैं, जैसे - क, ख, ग या अ, ब, स परंतु त्रिकोणमितीय संबंधों में केवल रोमन अथवा ग्रीक अक्षर ही प्रयुक्त करने चाहिए, जैसे- साइन A, कॉस B, आदि।

4. संकल्पनाओं को व्यक्त करने वाले शब्दों का सामान्यतः अनुवाद किया जाना चाहिए।

5. हिंदी पर्यायों का चुनाव करते समय सरलता, अर्थ की परिशुद्धता, और सुबोधता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सुधार-विरोधी प्रवृत्तियों से बचना चाहिए।

6. सभी भारतीय भाषाओं के शब्दों में यथासंभव अधिकाधिक एकरूपता लाना ही इसका उद्देश्य होना चाहिए और इसके लिए ऐसे शब्द अपनाने चाहिए जो-
   (क) अधिक से अधिक प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हों, और
   (ख) संस्कृत धातुओं पर आधारित हों।
7. ऐसे देशी शब्द जो सामान्य प्रयोग के पारिभाषिक शब्दों के स्थान पर हमारी भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे - telegraphy/telegram के लिए तार, continent के लिए महाद्वीप, post के लिए डाक, आदि इसी रूप में व्यवहार में लाए जाने चाहिए।
8. अंग्रेजी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, आदि भाषाओं के ऐसे विदेशी शब्द जो भारतीय भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे - टिकट, सिगनल, पेन्शन, पुलिस ब्यूरो, रेस्तरां, डीलक्स, आदि इसी रूप में अपनाए जाने चाहिए।
9. अंतरराष्ट्रीय शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण- अंग्रेजी शब्दों का लिप्यंतरण इतना जटिल नहीं होना चाहिए कि उसके कारण वर्तमान देवनागरी वर्णों में नए चिह्न व प्रतीक शामिल करने की आवश्यकता पडे। शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण अंग्रेजी उच्चारण के अधिकाधिक अनुरूप होना चाहिए और उनमें ऐसे परिवर्तन किए जाएं जो भारत के शिक्षित वर्ग में प्रचलित हों।
10. **लिंग -** हिंदी में अपनाए गए अंतरराष्ट्रीय शब्दों को, अन्यथा कारण न होने पर, पुल्लिंग रूप में ही प्रयुक्त करना चाहिए।
11. **संकर शब्द -** पारिभाषिक शब्दावली में संकर शब्द, जैसे guaranteed के लिए गारंटित, classical के लिए 'क्लासिकी',

codifier के लिए 'कोडकार' आदि के रूप सामान्य और प्राकृतिक भाषाशास्त्रीय प्रक्रिया के अनुसार बनाए गए हैं और ऐसे शब्द रूपों को पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकताओं तथा सुबोधता, उपयोगिता, और संक्षिप्तता का ध्यान रखते हुए व्यवहार में लाना चाहिए।

12. **पारिभाषिक शब्दों में संधि और समास** - कठिन संधियों का यथासंभव कम से कम प्रयोग करना चाहिए और संयुक्त शब्दों के दो शब्दों के बीच हाइफन लगा देना चाहिए। इससे नई शब्द-रचनाओं को सरलता और शीघ्रता से समझने में सहायता मिलेगी। जहाँ तक संस्कृत पर आधारित 'आदिवृद्धि' का संबंध है, 'व्यावहारिक', 'लाक्षणिक', आदि प्रचलित संस्कृत तत्सम शब्दों में आदिवृद्धि का प्रयोग ही अपेक्षित है परंतु नवनिर्मित शब्दों में इससे बचा जा सकता है।
13. **हलंत** - नए अपनाए हुए शब्दों में आवश्यकतानुसार हलंत का प्रयोग करके उन्हें सही रूप में लिखना चाहिए।
14. **पंचम वर्ण का प्रयोग** - पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग करना चाहिए। परंतु lens, patent, आदि शब्दों का लिप्यंतरण लेंस, पेटेंट न करके, लेन्स, पेटेन्ट या पेटेण्ट ही करना चाहिए।

Principles for Evolution of Terminology Approved by the Commission for Scientific and Technical Terminology

1. 'International terms' should be adopted in their current English forms, as far as possible and transliterated in Hindi and other Indian languages according to their genius. The following should be taken as example of international terms.
   (a) Names of elements and compounds, e.g. Hydrogen, Carbon dioxide, etc.;
   (b) Units of weights, measures and physical quantities, e.g. dyne, calorie, ampere, etc.
   (c) Terms based on proper names e.g., Marxism (Karl Marx). Braille (Braille), Boycott (Capt. Boycott), Guillotine (Dr. Guillotin), Gerrymander (Mr. Gerry), Ampere (Mr. Ampere), Fahrenheit scale (Mr. Fahrenheit). etc.
   (d) Binomial nomenclature in such sciences as Botany, Zoology, Geology etc.
   (e) Constants, e.g., π, g, etc.

(f) Words like radio, radar, electron, proton, neutron, etc., which have gained practically world-wide usage.

(g) Numerals, symbols, signs and formulae used in mathematics and other sciences e.g., sin, cos, tan, log etc. (Letters used in mathematical operation should be in Roman or Greek alphabets).

2. The symbols will remain in international form written in Roman script, but abbreviations may be written in Nagari and standardised form, especially for common weights and measures, e.g., the symbol 'cm' for centimeter will be used as such in Hindi, but the abbreviation in Nagari may be सें.मी. This will apply to books for children and other popular works only, but in standard works of science and technology, the international symbols only like cm., should be used.

3. Letters of Indian scripts may be used in geometrical figures e.g., क, ख, ग or अ, ब, स but only letters of Roman and Greek alphabets should be used in trigonometrical relations e.g., sin A, cos B etc.

4. Conceptual terms should generally be translated.

5. In the selection of Hindi equivalents simplicity, precision of meaning and easy intelligibility should be

borne in mind. Obscurantism and purism may be avoided.

6. The aim should be to achieve maximum possible identity in all India languages by selecting terms.

   (a) common to as many of the regional languages as possible, and

   (b) based on Sanskrit roots.

7. Indigenous terms, which have come into vogue in our languages for certain technical words of common use, as तार for telegraph/telegram, महाद्वीप for continent, डाक for post etc. should retained.

8. Such loan words from English, Portuguese, French, etc., as have gained wide currency in Indian languages should be retained e.g., ticket, signal, pension, police, bureau, restaurant, deluxe etc.

9. **Transliteration of International terms into Devanagari Script–** The transliteration of English terms should not be made so complex as to necessitate the introduction of new signs and symbols in the present Devanagari characters. The Devanagari rendering of English terms should aim at maximum approximation to the standard English pronunciation with such modifications as prevalent amongst the educated circle in India.

10. **Gender**—The International terms adopted in Hindi should be used in the masculine gender, unless there are compelling reasons to the contrary.

11. **Hybrid formation**—Hybrid forms in technical terminologies e.g., गारंटित for 'guaranteed', क्लासिकी for 'classical', कोडकार for 'codifier' etc., are normal and natural linguistic phenomena and such forms may be adopted in practice keeping in view the requirements for technical terminology, viz., simplicity, utility and precision.

12. **Sandhi and Samasa in technical terms**—Complex forms of Sandhi may be avoided and in cases of compound words, hyphen may be placed in between the two terms, because this would enable the users to have an easier and quicker grasp of the word structure of the new terms. As regards आदिवृद्‌धि in Sanskrit-based words, it would be desirable to use आदिवृद्‌धि in prevalent Sanskrit tatsama words e.g., व्यावहारिक, लाक्षणिक etc. but may be avoided in newly coined words.

13. **Halant**—Newly adopted terms should be correctly rendered with the use the 'hal' wherever necessary.

14. **Use of Pancham Varna**—The use of अनुस्वार may be preferred in place of पंचम वर्ण but in words like 'lens', 'patent', etc., the transliteration should be लेन्स, पेटेन्ट and not लेंस, पेटेंट or पेटेण्ट.

विज्ञान क्या है

अज़ीज़ राय
एन.एच.-7, मेन रोड
चट्टी लखनादोन
मध्य प्रदेश - 9575503000
ईमेल : azizrai@gmail.com

जब कभी 'अमुक क्या है' को लेकर प्रश्न किया जाता है, तो संबंधित उत्तर, मनुष्य को अमुक के वर्ग या प्रकार के बारे में जानकारी देकर संतुष्ट करता है। विज्ञान क्या है, को जानना इसलिए कठिन हो जाता है, क्योंकि वह भौतिक वस्तु न होकर अमूर्त ज्ञान का एक विशिष्ट प्रकार है। रसायनज्ञ प्रो. जेम्स बी. कोनेन्ट 'साइंस एँड कॉमन सेंस' पुस्तक में 'विज्ञान को कुल संचित ज्ञान का केवल एक भाग बताते हैं।'

ज्ञान को कई प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है जैसे कि ज्ञेय और अज्ञेय, परा और अपरा या प्राग्नुभाविक और प्रायोगिक आदि ज्ञान। विज्ञान की प्रमुख अवधारणा के अनुसार यह कथन निश्चितता के साथ कहा जाता है कि विज्ञान ज्ञेय है अर्थात् एक वैज्ञानिक कभी भी अज्ञेय के बारे में दावा नहीं करता है कि 'आप सत्य नहीं जान सकते हैं।' इसके विपरीत एक वैज्ञानिक सदैव यह दावा करता है कि 'मैंने अभी तक जो कुछ भी जाना है उसे आप भी परख और जान सकते हैं।'

ज्ञेय पर विचार करने से उसे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। जिसे जाना चुका है या जानते हैं उसे ज्ञात ज्ञान कहते हैं और जिसे अभी तक नहीं जाना गया है उसे अज्ञात ज्ञान कहते हैं। विज्ञान वास्तव में इसी अज्ञात ज्ञेय ज्ञान को जानने का नाम है। हिब्रू विश्वविद्यालय के इतिहासकार प्रो. युवाल नोआ हरारी 'सेपियन्स' पुस्तक में कहते हैं कि 'वैज्ञानिक क्रांतियाँ वास्तव में ज्ञान की क्रांतियाँ नहीं हैं बल्कि मानव जाति के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तरों की कमी या अज्ञान को स्वीकार करने की क्रांतियाँ हैं।'

अज्ञान, व्यक्तिगत या सामूहिक दो प्रकार का हो सकता है। प्राचीन काल में केवल दो प्रकार के अज्ञान को स्वीकार किया जाता था। पहला : जब व्यक्ति किसी विद्वान से संपर्क कर अपने अज्ञान को दूर करता था। इसके अंतर्गत उस व्यक्ति को परम ज्ञानी मानकर परामर्श या ज्ञान प्राप्त किया जाता था। दूसरा : दैनिक जीवन में महत्त्वहीन विषय-वस्तुओं के प्रति अज्ञान स्वीकार कर अनावश्यक ज्ञान की उपेक्षा की जाती थी। प्राचीन काल की संबंधित स्थिति को जानने का सबसे अच्छा उदाहरण कन्फ्यूशियस को उद्धृत कर रचित राष्ट्रकवि दिनकर की 'माध्यम' कविता है। यही कारण है कि सामूहिक अज्ञान को स्वीकार करना आवश्यक नहीं समझा गया था, परंतु आधुनिक काल में सामूहिक अज्ञान को स्वीकार करने की परंपरा ने जन्म लिया है। इसका परिणाम यह हुआ कि आधुनिक काल में विज्ञान ने चर-घातांकी विकास किया है।

विज्ञान की प्रकृति और परिभाषा

ज्ञान और विज्ञान में केवल यह अंतर है कि ज्ञान, हमें सिद्धांत, नियम, तथ्य अथवा जानकारी के रूप में ज्ञात होता है, जबकि ज्ञान और उस तक पहुँचने के माध्यम (विधि) का संयुक्त

नाम विज्ञान है, इसलिए विज्ञान को विशेष ज्ञान कहा जाता है, परंतु गणितज्ञ जैकब ब्रोनोव्स्की (Jacob Bronowski) तथा थॉमस हेनरी हक्सले सहित औरों का भी मत है कि विज्ञान में विशेष जैसा कुछ नहीं होता है। ज्ञान में नाहक ही 'वि' उपसर्ग लगाकर उसे विज्ञान कह दिया गया है।

विज्ञान में 'वि' उपसर्ग लग जाने से वह ज्ञान से भिन्नता दर्शाने लगता है। इससे विज्ञान के विशेष होने का पता चलता है। दार्शनिक थॉमस हॉब्स (Thomas Hobbes; 1588-1679 ई.) के अनुसार "विज्ञान, परिणामों और एक तथ्य का दूसरे तथ्य पर निर्भरता का ज्ञान है।" अर्थात् ज्ञात ज्ञान पर निर्भर होकर अज्ञात को जानने-समझने की प्रक्रिया का नाम विज्ञान है। और यह भिन्नता ज्ञेय ज्ञान में पाई जाती है; न कि अज्ञेय ज्ञान के बारे में कही जा सकती है।

ज्ञात ज्ञान पर निर्भर होकर जब अज्ञात ज्ञान को खोजा जाता है, तो प्राप्त ज्ञान को सहजबोध (Common sense) से आगे बढ़कर असाधारण दावे के रूप में स्वीकर किया जाता है, क्योंकि विज्ञान अप्रत्याशित खोज करता है। और यही कारण है कि प्रारम्भ में प्रत्येक वैज्ञानिक दावे की या तो खिल्ली उड़ाई जाती है या फिर अलौकिक ज्ञान मानकर उसकी उपेक्षा कर दी जाती है। जबकि इसके विपरीत विज्ञान का प्रत्येक दावा पारलौकिक न होकर लौकिक होता है।

विज्ञान को ऐन्द्रिक या अनुभाविक ज्ञान कहना इसलिए अनुचित है, क्योंकि वह सहजबोध के रूप में तत्काल स्वीकार लिया जाता है, परंतु असाधारण दावा के रूप में सामने आने से शंका बनी रहती है, मन में प्रश्न उठते हैं, उसे परखा जाता है और सबसे महत्त्वपूर्ण बिंदु यह है कि इस स्थिति में सामूहिक अज्ञान को

स्वीकार किया जाता है। भौतिकशास्त्री वेर्नेर हाइजेनबर्ग का उद्धरण है कि "प्राकृतिक विज्ञान केवल प्रकृति की सरल व्याख्या और वर्णन नहीं करता है; यह प्रकृति और हमारे बीच की परस्पर क्रिया का एक हिस्सा है। यह प्रकृति का वर्णन हमारे प्रश्न पूछने के स्वभाव पर उजागर करता है।" इसलिए हम कह सकते हैं कि विज्ञान बने-बनाए उत्तरों को प्रचारित-प्रसारित करने का नाम नहीं है।

विज्ञान शब्द सार्थक शब्दों के किस वर्ग में रखा जाए? इस प्रश्न से विज्ञान की प्रकृति निर्धारित करने का विवाद जन्म ले लेता है। वह इसलिए कि एक पक्ष उसे संज्ञा शब्द तो दूसरा उसे क्रिया शब्द के रूप में परिभाषित करता है। इससे विज्ञान की दो प्रकृतियों की जानकारी सामने आती है। एक पक्ष उसकी स्थिर प्रकृति के बारे में तर्क देता है, तो दूसरा पक्ष उसकी गत्यात्मक प्रकृति के बारे में तर्क देता है, अर्थात् पहला पक्ष 'परिणाम के रूप में प्राप्त ज्ञान' को ही विज्ञान मानता है जबकि दूसरा पक्ष 'प्रक्रिया के रूप में विधि' को विज्ञान मानता है। इस प्रकार यह विवाद यहाँ तक पहुँच जाता है कि विज्ञान शब्द को ज्ञान मानकर संज्ञा शब्द कहें या विधि मानकर क्रिया शब्द कहें। इस मुद्दे पर प्रसिद्ध उपन्यासकार सर टेरी प्रचेत्त का कथन है कि "विज्ञान ज्ञात तथ्यों से निर्मित प्रणाली के बारे में नहीं है, यह एक अजीब-से प्रश्न पूछने और उसकी वास्तविकता को जाँचने के लिए विधि है, इस प्रकार जो हमें अच्छा महसूस कराता है पर विश्वास करने की मानव प्रवृत्ति से बचना है।"

विज्ञान शब्द का अंग्रेजी रूपांतरण साइंस (Science) शब्द है, जो लैटिन शब्द साइंटिया (Scientia) से लिया गया है, जिसका आशय संज्ञा शब्द ज्ञान (Knowledge) से होता है। जिसे हम भौतिक और रसायन विज्ञान में दिए जाने वाले नोबेल पदक के पिछले भाग में अंकित देख सकते हैं। नोबेल पुरस्कार से सम्मानित

रसायनज्ञ हिदेकी शिराकावा (Hideki Shirakawa) अपने एक व्याख्यान में इसका अर्थ 'विज्ञान की देवी' बताते हैं। जबकि एक प्राचीन अर्थ में इस शब्द का अर्थ 'जादू की देवी' बताया जाता है। प्रो. महेंद्र प्रसाद सिंह की पुस्तक 'विज्ञान का दर्शन और राजनीति' के अनुसार 'Scientia [ski-En'tSja]' शब्द का अर्थ 'गठन' होता है अर्थात् वह सामष्टिक ज्ञान जो किसी ढ़ाँचे के अशों या अवयवों के संगठन के सिद्धांतों को उजागर कर प्राप्त किया जाता है। जबकि लैटिन भाषा-परिवार की अन्य भाषाओं एस्टोनियाई, डच और जर्मन में इसका आशय क्रिया शब्द 'जानना' से होता है। जिसे लैटिन शब्द सायर (Scire) से लिया गया है।

विज्ञान केवल ज्ञान का भंडार नहीं है। यह उस ज्ञान और उसको जानने की प्रक्रिया अर्थात् वैज्ञानिक विधि का संयुक्त नाम है, परंतु 'विज्ञान' शब्द, 'साइंस' शब्द से अधिक पुराना और व्यापक अर्थ देने वाला संस्कृत शब्द है। लोकप्रिय संस्कृत शब्दकोश

'अमरकोश' और सर मोनियर-विलियम्स के अनुसार विज्ञान शब्द का अर्थ 'ज्ञान और उस ज्ञान को जानने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह उस ज्ञान के प्रति मानव की समझ को भी विज्ञान शब्द में समाहित किये हुए है।' उपनिषदों के प्रसिद्ध अनुवादक एकनाथ ईश्वरन ने भी विज्ञान शब्द के अंग्रेजी रूपांतरण के लिए साइंस शब्द का उपयोग नहीं किया है; बल्कि विज्ञान को 'सत्-असत् में भेद करने वाली विवेकपूर्ण बुद्धि (Discriminating Intellect) कहा है।' इस तरह से यह मानव समझ वैज्ञानिक पद्धति को जन्म देती है।

इस तरह से विज्ञान की यह परिभाषा उभर कर सामने आती है कि **'प्रश्नों के उत्तर रूप में प्राप्त विधियुक्त पद्धतीय ज्ञान को विज्ञान कहते हैं।'** सामूहिक अज्ञान को स्वीकार करने और विधियुक्त होने के कारण प्राप्त होने वाला ज्ञान स्वाभाविक रूप से वस्तुनिष्ठ (objective) होता है।

विज्ञान का प्रकार और कार्यक्षेत्र

विज्ञान दो प्रकार का होता है – पहला : भौतिक घटकों के रूपों और कारकों की उपस्थिति का विशुद्ध विज्ञान जिसे हम मूलभूत विज्ञान (Basic Sciences) कहते हैं; दूसरा : उनमें निहित संभावनाओं को साकार रूप देने वाला उपयोगी विज्ञान जिसे हम अनुप्रयुक्त विज्ञान (Applied Sciences) कहते हैं। आग की खोज, न ही विशुद्ध विज्ञान है और न ही उपयोगी विज्ञान के अंतर्गत आती है, अर्थात् वह न ही एक विशुद्ध खोज थी और न ही वह एक विशुद्ध आविष्कार था, फिर भी हम उसे खोज की श्रेणी में रखते हैं, क्योंकि मनुष्य ने सर्वप्रथम आग को अपने नियंत्रण में लेने की सम्भावना या समझ की खोज की थी; न कि कोई अन्य तरीके से आग को प्रज्वलित किया था। जैसा कि आज हम पोटेशियम-पर-

मैग्नेट (लाल दवा) में कुछ बूंदे ग्लिसरीन की मिलाकर आग प्राप्त कर सकते हैं या फिर लाइटर या माचिस द्‌वारा भौतिक-रासायनिक अभिक्रिया से आग प्राप्त करते हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि जब हम किसी समस्या का समाधान प्रकृति के संरक्षण में रहकर प्रकृति से ही प्राप्त करते हों, अर्थात् प्रकृति के समान ही (देखा-सीखी या नकल करके) समाधान करने लगते हों मगर उसकी क्रियात्मकता का आधार नहीं जानते हों तो वह खोज, उपयोगी खोज तो कहलाती है, परंतु विशुद्‌ध या मूलभूत खोज नहीं कहलाती है। इसलिए आग की खोज, विशुद्‌ध या मूलभूत खोज नहीं है।

वर्तमान में अब हम आग की खोज को एक आविष्कार भी कह सकते हैं, क्योंकि हमारी समझ उसकी क्रियात्मकता के बारे में प्रयोगों द्‌वारा स्पष्ट हो चुकी है। इसके साथ ही हम यह जान चुके हैं कि आग के लिए ऑक्सीजन ज़रूरी है। आज हम केवल प्राकृतिक तरीकों से आग प्राप्त नहीं करते हैं बल्कि उसे पहले से अधिक अच्छे तरीके से नियंत्रित भी करते हैं, जो आज से पहले संभव नहीं था।

विज्ञान के बारे में बार-बार यह प्रश्न उठता है कि क्या विज्ञान का कार्यक्षेत्र केवल प्रकृति तक सीमित है या सामाजिक व्यवस्थाएँ भी विज्ञान के कार्यक्षेत्र के अंतर्गत आती हैं? आइजेक न्यूटन का विज्ञान केवल प्राकृतिक क्षेत्र की वकालत करता है परंतु समाजशास्त्री मैक्स वेबर के अनुसार यह सामाजिक क्षेत्र में भी प्रभावी है। भौतिकशास्त्री जॉन हार्टी के अनुसार 'इस समस्या का समाधान सटीक भविष्यवाणी करने में छिपा है।' यदि सामाजिक क्षेत्र में भी भौतिकी की तरह सटीक भविष्यवाणी करना संभव है, तो हमें समाज शास्त्र को भी विज्ञान की श्रेणी में रखना होगा, परंतु होता यह है कि सामाजिक क्षेत्र से लिये गए आँकड़ों से जो निदर्श

(Models) सामने आते हैं, वे या तो भविष्यवाणी करने में सक्षम नहीं होते हैं या फिर उनकी भविष्यवाणियाँ ग़लत हो जाती हैं।

निश्चित रूप से इसके बहुत-से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक कारण होते हैं, जो भविष्यवाणी सामने आने पर मनुष्य के परिवर्तित क्रियाकलापों द्वारा झूठे साबित कर दिए जाते हैं। इस मुद्दे पर अर्थशास्त्री प्रोफ़ेसर थॉमस बावर का मत है कि "यदि मैं किसी निकट भविष्य के बारे में भविष्यवाणी करता हूँ जो अल्पावधि बाद ही आने वाला है; तो मेरे पास बहुत-सी ऐसी सूचनाएँ होती हैं जिनके आधार पर मैं सटीक भविष्यवाणी कर सकता हूँ, लेकिन यदि मुझे किसी दीर्घावधि बाद के लिए भविष्यवाणी करना हो; तो ये आँकड़े शायद ही सही आकलन करने में सहायक होंगे।" इसका एक संभावित कारण यह भी है कि लोगों के संज्ञान में भविष्यवाणियों के आने से उनका व्यवहार परिवर्तित हो जाता है, जो भविष्यवाणियों को ग़लत कर देता है।

सामाजिक व्यवस्थाओं में विविधता और उनकी जटिलता, फलस्वरूप उन सामाजिक व्यवस्थाओं में प्रयोग की असमर्थता, निष्कर्षों की पुष्टि के लिए विधियों के दोहराव का अभाव, परिवर्तन के प्रभावों को मापने योग्य राशियों के रूप में दर्शा नहीं पाना तथा प्रणाली के प्रकार की पहचान की समस्या और सटीक भविष्यवाणी करने की अक्षमता; यही वे पाँच मुख्य कारण हैं, जिनके रहते सामाजिक व्यवस्था के कार्यक्षेत्र जिनमें आर्थिक, राजनीतिक, मानसिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र आते हैं; को वैज्ञानिक मानने में संदेह उत्पन्न होता है। इस तरह प्राकृतिक विज्ञान, प्रकृति केंद्रित होता है जबकि सामाजिक विज्ञान, मानव प्रवृत्ति पर केंद्रित होता है। विज्ञान के दर्शन में समाजशास्त्र के पहलुओं को सम्मिलित करने का श्रेय भौतिकशास्त्री विज्ञान-दार्शनिक थॉमस कुह्न (Thomas

Samuel Kuhn) को जाता है। उसमें भी सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में जहाँ समाजशास्त्री मैक्स वेबर विज्ञान की विवरणात्मक (मानक) कार्यशैली के पक्षधर थे वहीं समाजशास्त्री डेविड इमाइल दरखाइम (David Émile Durkheim) विज्ञान की मात्रात्मक (आदर्श) कार्यशैली के पक्षधर थे। इमाइल दरखाइम की मात्रात्मक कार्यशैली सामाजिक क्षेत्र में सटीक भविष्यवाणी करने में सक्षम है, परंतु मैक्स वेबर की विवरणात्मक कार्यशैली की भविष्यवाणियाँ ग़लत सिद्ध होती हैं, इसलिए यह कार्यशैली मानव-इतिहास के समान केवल वर्तमान का विवरण प्रस्तुत कर सकती है।

केवल विश्वसनीयता के लिए दार्शनिक इम्मान्यूअल कांट ने सामाजिकता को विज्ञान के 'कार्यक्षेत्र' के अंतर्गत लाने और दार्शनिक कार्ल मार्क्स ने भौतिक इतिहासवाद को विज्ञान की 'शाखा' बनाने का प्रयास किया है। सफलता दोनों को हाथ नहीं लगी, परंतु सामाजिकता के सिद्धांत ने अपनी कमियों को स्वीकार किया, इसलिए संभव है कि वह भविष्य में विज्ञान का कार्यक्षेत्र बन भी जाए। पूरा क्षेत्र न सही उसकी एक शाखा ही सही। पिछले सौ वर्षों में व्यवहारवाद के कारण सुधार फलदायी हुआ है। सामाजिक क्षेत्र की संबंधित उपर्युक्त चारों कमियों और एक महत्त्वपूर्ण ग़लती में सुधार करने का प्रयास चल रहा है। मनो-विज्ञान इसमें मोटे तौर पर सफल रहा है, क्योंकि इसमें प्राकृतिक और सामाजिक दोनों क्षेत्र बराबर शामिल होते हैं, परंतु भौतिक इतिहासवाद ने कभी भी अपनी ग़लतियों और कमियों को स्वीकार नहीं किया है। जिसके परिणाम आज हमारे सामने यह है कि हम इतिहासवाद और द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को उनकी ग़लत भविष्यवाणियों के होने से छद्म विज्ञान कहते हैं।

नई शिक्षा नीति और पुस्तकालय

डॉ. अनिल कुमार धीमान
सूचना वैज्ञानिक
गुरुकुल काँगड़ी (सम-विश्वविद्यालय)
हरिद्वार -249 404 (उत्तराखंड)

1. प्रस्तावना

किसी भी राष्ट्र की संपूर्ण सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक, तकनीकी एवं वैश्विक प्रगति को सुनिश्चित करने के लिए शिक्षा मूलभूत आवश्यकता है। भारत की शिक्षा प्रणाली आज विश्व की दूसरी सबसे बड़ी शिक्षा प्रणाली मानी जाती है, जिसमें 1028 विश्वविद्यालय, 45 हजार कॉलेज, 14 लाख स्कूल तथा 33 करोड़ विद्यार्थीगण सम्मिलित हैं| शिक्षा के उत्थान हेतु भारत में स्वतंत्रता के बाद कई शिक्षा समितियाँ बनी, जैसे -

- डा0 एस. राधाकृष्णनन् आयोग को वर्ष 1948-49 में गठित किया गया जिसके फलस्वरूप विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) की स्थापना की गई।
- मुदालियर शिक्षा आयोग को वर्ष 1952-53 में गठित किया गया जिसे माध्यमिक शिक्षा आयोग भी कहा जाता है।

- डा0 डीएस कोठारी आयोग को वर्ष 1964-66 में गठित किया गया जिसमें सामाजिक उत्तरदायित्व व नैतिक शिक्षा पर ध्यान दिया गया।

परंतु शिक्षा नीति पर सबसे पहले इंदिरा गाँधी ने सन 1968 में कार्य शुरू किया था। उसके बाद राजीव गाँधी ने भी 1986 में इसमें ज़रूरी बदलाव किये। 1992 में प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव ने भी इसमें ज़रूरी बदलाव किए थे। हालाँकि देखा गया कि पुरानी शिक्षा नीति से शिक्षा और उन्नति की प्रगति कहीं न कहीं रुक गई थी। इसी कारण शिक्षा नीति में भी नया परिवर्तन लाने को सोचा गया। नई शिक्षा नीति के तहत शिक्षा प्रणाली में बदलाव का सुझाव इसरो के पूर्व प्रमुख के. कस्तूरीरंगन ने दिया था| राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को तैयार करने के लिए विश्व की सबसे बड़ी परामर्श प्रक्रिया अपनाई गई|

यद्यपि मोदी सरकार ने 2016 से ही नई शिक्षा नीति लाने की तैयारियाँ शुरु कर दी थीं और इसके लिए टीएसआर सुब्रहमण्यम कमेटी का गठन भी हुआ था| इस कमेटी ने मई 2019 में शिक्षा नीति का अपना मसौदा केंद्र सरकार के सामने रखा था लेकिन वह ड्राफ्ट सरकार को पसंद नहीं आया। इसके बाद सरकार ने वरिष्ठ शिक्षाविद् इसरो के पूर्व प्रमुख और जेएनयू के पूर्व चांसलर के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में एक नौ सदस्यीय कमेटी का गठन किया।

- वसुधा कामत, पूर्व कुलपति, एसएनडीटी महिला विश्वविद्यालय, मुंबई ।
- मंजुल भार्गव, प्रोफेसर गणित, प्रिंसटन विश्वविद्यालय, यूएसए।

- आर. बैंरडन फ्राड, प्रोफेसर गणित, प्रिंसटन विश्वविद्यालय, यूएसए।
- राम शंकर कुरेल, पूर्व संस्थापक वीसी, बाबा साहेब अंबेडकर यूनिवर्सिटी आफ सोशल विज्ञान, मध्य प्रदेश।
- टी.वी. कट्टीमनी, कुलपति, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, मध्य प्रदेश।
- कृष्णमोहन त्रिपाठी, शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) और पूर्व अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश हाई स्कूल और इंटरमीडिएट परीक्षा बोर्ड, उतर प्रदेश।
- मजहर आसिफ, प्रोफेसर, फारसी और मध्य एशियाई अध्ययन केंद्र, स्कूल आफ लैंग्वेज, साहित्य और संस्कृति अध्ययन, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
- एस.के. श्रीधर, पूर्व सदस्य सचिव, कर्नाटक ज्ञान आयोग, बेंगलुरु, कर्नाटक।

इस कमेटी ने मई 2019 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मसौदा प्रस्तुत किया था। केंद्र सरकार ने नई शिक्षा नीति 29 जुलाई 2020 को मंजूरी दे दी है। इस तरह राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, वर्ष 1968 और वर्ष 1986 के बाद स्वतंत्र भारत की तीसरी शिक्षा नीति है।

2. नई शिक्षा नीति की प्रमुख बातें

अब मानव संसाधन विकास मंत्रालय का नाम परिवर्तन करके शिक्षा मंत्रालय कर दिया गया है। स्कूल में 10+2 के फॉर्मेट को संपूर्ण रूप से समाप्त कर दिया गया है। इसकी जगह पर 5+ 3+ 3 +4 फॉर्मेट को आरंभ किया जाएगा।

फाउंडेशन स्टेज : पहले तीन साल बच्चे आंगनबाड़ी में प्री-स्कूलिंग शिक्षा लेंगे| फिर अगले दो साल कक्षा एक एवं दो में बच्चे स्कूल में पढ़ेंगे | इन पांच सालों की पढ़ाई के लिए एक नया पाठ्यक्रम तैयार होगा | इसमें 03 से 08 साल तक की आयु के बच्चे सम्मिलित होंगे |

प्रीप्रेटरी स्टेज : इस चरण में कक्षा तीन से पांच तक की पढ़ाई होगी| इस अवधि प्रयोगों के जरिए बच्चों को विज्ञान, गणित, कला आदि की पढ़ाई कराई जाएगी | 08 से 11 साल तक की उम्र के बच्चों को इसमें सम्मिलित किया जाएगा।

मिडिल स्टेज : इसमें कक्षा 6-8 की कक्षाओं की पढ़ाई होगी तथा 11-14 साल की उम्र के बच्चों को कवर किया जाएगा | इन कक्षाओं में विषय आधारित पाठ्यक्रम पढ़ाया जाएगा और साथ ही कौशल-विकास के कोर्स भी शुरू किए जाएँगे |

सेकेंडरी स्टेज : कक्षा 9 से 12 की पढ़ाई दो चरणों में होगी जिसमें विषयों का गहन अध्ययन कराया जाएगा| इस स्टेज में विषयों को चुनने की स्वतंत्रता भी होगी | यह स्टेज चार वर्ष की होगी|

स्कूल में आर्ट्स, कॉमर्स और विज्ञान विषय को समान रूप से महत्व दिया जायेगा। विद्यार्थी, जो चाहे उस पाठ्यक्रम का चुनाव अपने हिसाब से कर सकते हैं।

- नई शिक्षा नीति के तहत 2030 तक देश के 100 प्रतिशत बच्चों को स्कूली शिक्षा में नामांकन कराने का लक्ष्य रखा गया है| अभी भी गरीब और पिछड़े वर्ग के बच्चे बेसिक शिक्षा से वंचित हैं जिन तक शिक्षा का प्रसार बेहद जरूरी है |
- शिक्षा नीति में सुधार के साथ-साथ एससी, एसटी, ओबीसी और अन्य एसईडीजी से संबंधित छात्रों की योग्यता को

प्रोत्साहित करने का प्रयास किया जाएगा| राष्ट्रीय छात्रवृत्ति पोर्टल का समर्थन करने, बढ़ावा देने और छात्रवृत्ति प्राप्त करने वाले छात्रों की प्रगति को ट्रैक करने के लिए विस्तारित किया जाएगा | निजी हायर एजुकेशन इंस्टिट्यूट (HEI) को अपने छात्रों को बड़ी संख्या में छात्रवृत्ति प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा|

- स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता की प्रत्येक पांच वर्षों में समीक्षा की जाएगी |
- नई शिक्षा नीति के अनुसार जहाँ भी संभव हो, निर्देश का माध्यम कम से कम ग्रेड 5 तक, मातृभाषा / स्थानीय भाषा/ क्षेत्रीय भाषा होगी। इसके बाद, स्थानीय भाषा को जहाँ भी संभव हो भाषा के रूप में पढ़ाया जाएगा | यह नियम सार्वजनिक और निजी दोनों तरह के स्कूलों में लागू होंगे | विदेशी भाषाओं की पढ़ाई सेकेंडरी लेवल से होगी| हालांकि नई शिक्षा नीति में यह भी कहा गया है कि किसी भी भाषा को थोपा नहीं जाएगा|
- मैथमेटिकल थिंकिंग, साइंटिफिक टेंपर कोर्स का हिस्सा होंगे| खेल, व्यावसायिक, कला, वाणिज्य, विज्ञान जैसे सह-पाठ्यक्रम विषय समान स्तर पर होंगे | छात्र अपनी पसंद के अनुसार पाठ्यक्रम चुन सकते हैं| कक्षा 6 से छात्रों को कोडिंग की अनुमति दी गई है|
- बोर्ड परीक्षा के नंबरों का महत्व अब कम होगा जबकि कॉन्सेप्ट और प्रैक्टिकल नॉलेज का महत्व ज्यादा होगा | सभी छात्रों को किसी भी स्कूल वर्ष के दौरान दो बार एक मुख्य परीक्षा और एक सुधार के लिए बोर्ड परीक्षा देने की अनुमति दी जाएगी |

- बोर्ड परीक्षा को सरल बनाने और छात्रों पर से पाठ्यक्रम का बोझ कम करने पर जोर दिया जाएगा|
- राजनीतिक दलों द्वारा विरोध के बाद, थ्री-लैंग्वेज फार्मूले के बारे में नई शिक्षा नीति के मसौदे में हिंदी और अंग्रेजी के संदर्भ को अंतिम नीति दस्तावेज से हटा दिया गया है|

3. नई शिक्षा नीति और उच्च शिक्षा

यदि उच्च शिक्षा की बात करें तो शिक्षकों की शिक्षा के लिए एक नया और व्यापक राष्ट्रीय स्तर का पाठ्यक्रम तैयार किया जाएगा, जिसे NCFTE के परामर्श से बनाया जाएगा | 2030 तक, शिक्षण के लिए न्यूनतम डिग्री योग्यता चार-वर्षीय एकीकृत बी.एड. डिग्री होगी | घटिया स्टैंड-अलोन शिक्षक शिक्षा संस्थानों (TEIs) के खिलाफ सख्त कार्रवाई की जाएगी |

- एक अकादमिक बैंक ऑफ क्रेडिट (ABC) की स्थापना की जाएगी जो विभिन्न मान्यता प्राप्त हायर एजुकेशनल इंस्टिट्यूट (HEI) से अर्जित शैक्षणिक क्रेडिट को डिजिटल रूप से संग्रहित करेगा | क्रेडिट बैंक का मुख्य उद्देश्य शिक्षा प्रणाली में छात्रों की गतिशीलता को सुगम बनाना होगा| इस बैंक में छात्रों के क्रेडिट सेव किए जाएंगे ताकि अपनी डिग्री पूरी करने के लिए छात्र किसी भी समय इनका उपयोग कर सकें|
- सार्वजनिक और निजी HEI के लिए सामान्य मानदंड दिए गए है अर्थात शुल्क नियामक ढांचे के भीतर तय किया जाएगा और कैप से ज्यादा कोई अतिरिक्त शुल्क नहीं लिया जाएगा|
- नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में राष्ट्रीय परीक्षा एजेंसी द्वारा उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश के लिए कॉमन एंट्रेंस

एग्जाम कराया जाएगा | नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) के अनुसार, नेशनल टेस्टिंग एजेंसी (National Testing Agency) को अब देश भर के विश्वविद्यालयों में प्रवेश के लिए प्रवेश परीक्षा आयोजित करने के लिए एडिशनल चार्ज दिया जाएगा| जिसमें वह हायर एजुकेशन के लिए आम यानी कॉमन एंट्रेंस परीक्षा का आयोजन कर सकता है|

- नई शिक्षा नीति 2020 शिक्षण, मूल्यांकन, शिक्षक, स्कूल और छात्र प्रशिक्षण का हिस्सा है | ई-सामग्री क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध करवाई जाएगी| हिंदी और अंग्रेजी में उपलब्ध ई-पाठ्यक्रमों में शामिल होने के लिए 8 प्रमुख भाषाओं - कन्नड, ओडिया, बंगाली आदि के साथ शुरू किया जाएगा|
- भाषा, साहित्य, संगीत, फिलॉसफी, कला, नृत्य, रंगमंच, शिक्षा, गणित, स्टैटिक्स, प्योर एंड अप्लाईड साइंस, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, खेल, अनुवाद और व्याख्या, आदि विभागों को सभी उच्च शिक्षा संस्थानों में स्थापित किया जाएगा और इन संस्थानों पर जोर दिया जाएगा| यूजी, पीजी, पीएचडी लेवल के कोर्सेज चलते रहेंगे|
- एमफिल को बंद किया जाएगा | जो रिसर्च में जाना चाहते हैं उनके लिए 4 साल का डिग्री प्रोग्राम होगा| जबकि जो लोग नौकरी में जाना चाहते हैं वो तीन साल का ही डिग्री प्रोग्राम करेंगे | लेकिन जो रिसर्च में जाना चाहते हैं वो एक साल के MA के साथ चार साल के डिग्री प्रोग्राम के बाद PhD कर सकते हैं| इसके लिए M.Phil. की जरूरत नहीं होगी |
- मल्टीपल एंट्री और एग्जिट सिस्टम लागू किया गया है | आज की व्यवस्था में अगर चार साल इंजीनियरिंग पढ़ने

या 6 सेमेस्टर पढ़ने के बाद किसी कारणवश आगे नहीं पढ़ पाते हैं तो कोई उपाय नहीं होता, लेकिन मल्टीपल एंट्री और एग्जिट सिस्टम में 1 साल के बाद सर्टिफिकेट, 2 साल के बाद डिप्लोमा और 3-4 साल के बाद डिग्री मिल जाएगी| विद्यार्थियों के हित में यह एक बड़ा फैसला है |

- नई शिक्षा नीति में बदलाव करते हुए उच्च शिक्षा और व्यापक शिक्षा तक सबकी पहुंच सुनिश्चित की गई है | इसके जरिए भारत का लगातार विकास सुनिश्चित होगा ताकि भारत वैश्विक मंचों पर आर्थिक विकास, सामाजिक विकास, समानता और पर्यावरण की देख-रेख, वैज्ञानिक उन्नति और सांस्कृतिक संरक्षण के नेतृत्व का समर्थन कर सकने में सक्षम होगा|
- 2013 में शुरू की गई B. Vocational डिग्री अब भी जारी रहेगी, लेकिन चार वर्षीय बहु-विषयक (multidisciplinary) बैचलर प्रोग्राम सहित अन्य सभी बैचलर डिग्री कार्यक्रमों में नामांकित छात्रों के लिए वोकेशनल पाठ्यक्रम भी उपलब्ध होंगे|
- 'लोक विद्या', अर्थात, भारत में विकसित महत्वपूर्ण व्यावसायिक ज्ञान का व्यावसायिक शिक्षा पाठ्यक्रमों के साथ एकीकरण के माध्यम से छात्रों के लिए सुलभ बनाया जाएगा|
- नई शिक्षा नीति में छात्रों को ये स्वतंत्रता भी होगी कि अगर वो कोई कोर्स बीच में छोड़कर दूसरे कोर्स में दाख़िला लेना चाहें तो वो पहले कोर्स से एक ख़ास निश्चित समय तक ब्रेक ले सकते हैं और दूसरा कोर्स ज्वाइन कर सकते हैं|

- उच्च शिक्षा संस्थानों को फ़ीस चार्ज करने के मामले में और पारदर्शिता लानी होगी|
- ई-पाठ्यक्रम क्षेत्रीय भाषाओं में विकसित किए जाएंगे| इसके लिए वर्चुअल लैब विकसित की जा रही है और एक राष्ट्रीय शैक्षिक टेक्नोलॉजी फ़ोरम (NETF) बनाया जा रहा है|
- इस नीति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि स्कूली शिक्षा, उच्च शिक्षा के साथ कृषि शिक्षा, कानूनी शिक्षा, चिकित्सा शिक्षा और तकनीकी शिक्षा जैसी व्यावसायिक शिक्षाओं को इसके दायरे में लाया गया है| इसका मुख्य उद्देश्य छात्रों को पढ़ाई के साथ-साथ किसी लाइफ स्किल से सीधा जोड़ना है|
- पाठ्यक्रम में भारतीय ज्ञान पद्धतियों को शामिल करने, 'राष्ट्रीय शिक्षा आयोग' का गठन करने और प्राइवेट स्कूलों को मनमाने तरीके से फीस बढ़ाने से रोकने की सिफारिश की गई है| ये राष्ट्रीय शिक्षा आयोग भारत की प्राचीन ज्ञान पद्धतियों को समग्रता के साथ शिक्षा से जोड़ने का काम करेगा|
- दिव्यांगजनों के लिए शिक्षा में बदलाव |
- नेशनल रिसर्च फाउंडेशन (एनआरएफ) की स्थापना |
- कॉलेजों को एक्रेडिटेशन के आधार पर ऑटोनॉमी दी जाएगी|

4. नई शिक्षा नीति और पुस्तकालय

नई शिक्षा नीति में इक्कीसवीं सदी की आवश्यकतानुसार तथा तेजी से बदलते प्रौद्योगिकी युग में भविष्य के पुस्तकालयों की तैयारी पर सीधा जोर दिया है| शिक्षा के लिए गुणवत्तापूर्ण प्रौद्योगिकी-आधारित विकल्प जैसे ऐप, ऑनलाइन पाठ्यक्रम /

मॉड्यूल, उपग्रह-आधारित टीवी चैनल, ऑनलाइन किताबें, और आईसीटी से सुसज्जित पुस्तकालय और वयस्क शिक्षा केंद्र आदि विकसित किए जाएंगे|

पुस्तकालयों को जीवंत बनाना और अन्य एक्टिविटी को कराना नई शिक्षा नीति में शामिल है जैसे बच्चे स्टोरी टेलिंग, रंगमंच, ग्रुप स्टडी, पोस्टर और डिस्प्ले से भी सीखें. बच्चों को किताबों के अलावा दूसरे माध्यमों से सिखाने पर जोर है, ये बच्चों के बस्ते का बोझ कम करने के उद्देश्य से भी जरूरी माना गया है|

शिक्षकों की सहायता के लिए तकनीक के प्रयोग को प्रोत्साहित करने की बात भी नई शिक्षा नीति में शामिल है | इसके लिए कंप्यूटर, लैपटॉप व फोन इत्यादि के जरिए विभिन्न ऐप का इस्तेमाल करके शिक्षण को रोचक बनाने की बात कही गई है| इस तरह नई शिक्षा नीति में पुस्तकालय की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण होने वाली है |

नई शिक्षा नीति में गुणवत्ता पूर्ण प्रोद्योगिकी - आधारित पुस्तकें व सूचना तकनीक से सुसज्जित पुस्तकालयों को विकसित करने पर अधिक जोर देना होगा । बच्चों के लिए मोबाइल पुस्तकालय व सार्वजनिक पुस्तकालयों की स्थापना भी की जाएगी । डिजिटल पुस्तकालयों को और अधिक विकसित किया जाएगा ताकि पुस्तकों की ऑनलाइन पहुँच हो सके। ई-कंटेंट्स विकसित करने पर बल दिया जाना है इसके लिए वीडियो पुस्तकालयों की स्थापना की जाएगी । पुस्तकें केवल पढने के लिए न होकर उनको समझना, विश्लेषण करना और उनका अर्थ निकाल कर उसके तात्पर्य को समझने पर भी बल दिया जाएगा।

अत: पुस्तकालयों में निम्न कार्यों पर बल दिया जाना आवश्यक है -

- सभी स्तरों पर छात्रों के लिए आनंददायक और प्रेरणादायक पुस्तकों का संकलन।
- सार्वजानिक व कॉलेज पुस्तकालयों का निर्माण ।
- डिजिटल पुस्तकालयों की स्थापना ।
- नेशनल बुक्स प्रमोशन पालिसी के तहत सभी भाषाओँ में पुस्तकों की उपलब्धता सुनिश्चित करना।
- पुस्तकालयों में डिजिटल, बहुभाषी व बहु-स्तरीय पुस्तकों का संकलन तथा वैदिक साहित्य के साथ-साथ सभी भाषाओँ में आधुनिक व शास्त्रीय साहित्य का प्रकाशन व संकलन ।
- जॉब, महत्वपूर्ण सोच व समस्या को सुलझाने वाली पुस्तकें।
- उच्च गुणवत्ता वाली पुस्तकों के साथ भाषा सीखने से छात्रों को दुनिया की संस्कृतियों से अवगत कराने वाले साहित्य का संकलन ।
- वैदिक जागरूकता के लिए संसाधन ।

हालाँकि भारत में पुस्तकालयों को प्रोत्साहित करने की बात पूर्व की सभी शिक्षा नीतियों में की गई है। नई शिक्षा नीति में भी पुराने प्रावधानों के साथ-साथ कुछ नवीन प्रावधानों को भी शामिल किया गया है । परन्तु पूर्व की नीतियों की भांति नई शिक्षा नीति के इस ड्राफ्ट में विस्तार का अभाव है ।

उदाहरण के तौर पर 1952 में बने मुदालियर आयोग ने पुस्तकालयों को लेकर विस्तार में रणनीति व योजना का जिक्र किया था। इसके प्रमुख बिंदु इस प्रकार थेः-

- पढ़ने की आदत का विकास
- स्वतंत्र रूप से सीखने के लिए पुस्तकालय की आवश्यकता

- पुस्तकालय की रूपरेखा (डिज़ाइन) कैसी हो
- पुस्तकालय में फर्नीचर की व्यवस्था कैसी होनी चाहिए
- क्लासरूम पुस्तकालय का महत्व
- पुस्तकालय प्रभारी के गुण व विशेषताएँ

मुदालियर आयोग की रिपोर्ट में कहा गया कि पुस्तकालय को विद्यालय की सबसे आकर्षक जगह होनी चाहिए, ताकि सभी विद्यार्थी स्वाभाविक रूप से इसकी तरफ खिंचे चले आएं। यह एक ऐसे कमरे में होनी चाहिए जिसमें पर्याप्त रौशनी आती हो, जिसकी दीवारों पर आकर्षक चित्र बने हों, फूलों व कलात्मक कलाकृतियों व प्रसिद्ध पैंटिंग्स लगी हुई हों। फिर भी नई शिक्षा नीति से काफी आशाएँ हैं ।

5. उपसंहार

नई शिक्षा नीति को कई पहलुओं पर कार्य किए जाने का प्रयास किया गया है । जहां पर शिक्षा नीति मनोरंजक हो, अनुसंधान, भारतीय ज्ञान परंपरा, पर्यावरण संरक्षण, जनजातीय अध्ययन, स्वदेशी ज्ञान परंपरा, सभी विषयों के प्रति व्यापक दृष्टिकोण अनौपचारिक योग्यताओं का विकास, सहानुभूति, शिष्टाचार, सम्मान, तकनीकी ज्ञान, स्वच्छता, पर्यावरण के प्रति प्रेम, सौहार्द हो। साथ ही वसुधैव कुटुंबकम की भावनाओं से ओतप्रोत हमारी नई शिक्षा नीति को हमें पुस्तकालय विज्ञान के माध्यम से पुस्तकालय अध्यक्षों और पुस्तकालय शिक्षकों के रूप में काम करने का अवसर प्राप्त हुआ है ।

केंद्र सरकार ने नई शिक्षा नीति को वर्ष 2020 से शुरू कर दिया है। अब राज्य सरकार की अनुमति से इसे राज्यों में लागू किया जाएगा। कर्नाटक नेशनल एजुकेशन पॉलिसी 2020 लागू करने

वाला देश का पहला राज्य है। अब तक कर्नाटक और मध्य प्रदेश सरकार द्वारा नई शिक्षा नीति को अपने राज्यों में लागू कर दिया है। आशा है जल्द ही अन्य राज्य भी इसे अपने राज्यों में लागू कर देंगे।

संदर्भ

- पांडेय, आर. एवं गौतम, जे.एन. (2021) राष्ट्रीय शिक्षा नीति और विश्वविद्यालय ग्रंथालयों का सशक्तिकरण : दृष्टिकोण एवं संदर्भ. ग्रंथालय विज्ञान, 52: 91-97।
- https://www.hindi.rajras.in/nayi-rashtriya-shiksha-neeti-2020/
- https://kisansuchna.com/nai-rashtriya-shiksha-niti-2020/
- https://hindi-essay.com/hindi-essay-on-nai-shiksha-niti/
- https://rkalert.in/new-national-education-policy-pdf.
- https://www.lisworld.in/p/new-education-policy-and-library-by.html
- https://educationmirror.org/2019/06/05/how-much-importance-library-is-getting-in-new-education-policy-draft-of-2019-in-india/
- http://www.insidestory.in/madhya-pradesh/webinar-importance-of-libraries-in-new-national-education-policy/
- https://www.lisworld.in/p/new-education-policy-and-library-by.html.

ऋणजल धनजल : अवर्षण और वर्षण की त्रासदी

अनुपमा तिवारी
धोत्तर अध्येता, हिंदी विभाग
आंध्र विश्वविद्यालय,
विशाखापट्टणम, आंध्र प्रदेश
मो. - 8886995593 / 8142623426
Email: anutosh.tiwari82@gmail.com

फणीश्वर नाथ रेणु का रिपोर्ताज 'ऋणजल धनजल' एक महत्तर उद्देश्य से अनुप्राणित रचना है । यह उद्देश्य जीवंत रेखा की तरह समूचे रिपोर्ताज में व्याप्त है। यह महत्तर उद्देश्य है - बाढ और सूखा जैसे प्राकृतिक आपदा से ग्रस्त जनजीवन के विलक्षण तनाव और समग्र अर्थ - व्यंजना की। यह उद्देश्य है - अकाल महामारी, बाढ़ और विनाश के विवरण से राजनेताओं के कर्तव्यबोध व उनके संज्ञान को जागृत करने की। यह उद्देश्य है- विषम परिस्थिति में भी परस्पर सौहार्द्र, सहिष्णुता बनाए रखकर जंगल में मंगल करने की कला की। घटित घटनाओं का आंखों देखा हाल लिखना, उस स्थान का अवलोकन कर वहां की स्थिति से स्वयं को जोडकर यथार्थ और संवेदना के धरातल पर जो कुछ लिखा जाता है वही रिपोर्ताज है जो कि हिंदी साहित्य में द्वितीय विश्व

युद्ध की देन है। रेणु ने लिखा कि - “गत महायुद्ध ने चिकित्साशास्त्र के चीर - फाड विभाग को पेंसिलिन दिया और साहित्य के कथा विभाग को रिपोर्ताज”1 । रिपोर्ताज किसी घटना के आंखों देखे हाल का साक्ष्य होता है जिसकी व्युत्पत्ति साहित्य और पत्रिकारिता के विशेष संयोग से हुयी है। रामचंद्र तिवारी ने लिखा कि - “वास्तविक घटनाओं को ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर देना ‘रिपोर्ट‘ है । ठेठ हिंदी में इसे रपट लिखना कहते हैं । जब सफल पत्रकार या साहित्यकार वास्तविक घटना को अपनी भावना में रंगकर बिम्बधर्मी भाषा के माध्यम से सजीव बनाकर प्रस्तुत करते हैं , तब वह रिपोर्ताज की कला सृष्टि करता है । ‘रिपोर्ताज’ लेखक के लिये घटना का प्रत्यक्षदर्शी होना आवश्यक है” 2। रेणु ने अपनी सृजनधर्मिता से जितना अधिक उपन्यास और कहानी विधा को समृद्ध किया है उतना ही योगदान उन्होने रिपोर्ताज विधा को विकसित करने में दिया है। आप द्वारा सृजित ऋणजल धनजल (1977 ई.), नेपाली क्रांति कथा (1978 ई .) तथा श्रुत - अश्रुत पूर्व (1984 ई.) विशेष रूप से चर्चित रिपोर्ताज हैं । यूं तो आपके प्रत्येक रिपोर्ताज का अपना अलग वैशिष्ट्य है जो कि भिन्न भिन्न स्थितियों पर केंद्रित हैं परंतु ऋणजल धनजल की महत्ता हिंदी जगत में कई पैमानों पर अलग है। “ऋणजल धनजल सूखा और अकाल के लिए गढा हुआ उनका अपना शब्द है । जल का अभाव ही सूखों का कारण है, इसीलि ऋणजल और जल का बहुतायत में होना ही धनजल है, जो बाढ का द्योतक है । गणित में माइनस को ऋण और प्लस को धन कहते हैं । इस तरह सूखे और बाढ के लिये यह रेणु के द्वारा दिया हुआ नवीन शब्द बेहद अर्थ व्यंजक है”3 ।

इसमें लेखक ने पहले जल के धनात्मक स्वरूप की प्रस्तुति प्रतीकात्मक भाषा और वर्तुल बिंब विधान के द्वारा

आत्मलोचन शैली में जीवंतता के साथ की है । सन 1975 ई. में पटना में आई बाढ के केंद्र में रेणु ने ऋणजल का सृजन किया जो दिनमान पत्रिका में प्रकाशित हुई। इसे लेखक ने पांच भिन्न उपशीर्षकों में प्रस्तुत किया है - ' कुत्ते की आत्मा ', ' जो बोले सो निहाल ', ' पंछी की लाश ', 'कलाकारों की रिलीफ पार्टी ' और ' मानुष बने रहो '। इन सबमें लेखक का व्यंगधर्मी पक्ष निदर्शित हुआ है साथ ही बाढ और प्रलय में समाज का उपेक्षित वर्ग ईमानदारी से अपनी समस्या का निदान स्वत: जिस सहजता और सौहार्द्रता से प्रसन्नतापूर्वक निकालता है लेखक का यह संदेश एकत्व को बनाए रखने के लिए है । लेखक ने संयम च्युत व्यक्तियों से मनुज बने रहने की भी अपील की है । वहीं अकाल पर आधारित जल का ऋणात्मक रूप - 'भूमि दर्शन की भूमिका' छह भागों में दिसम्बर - जनवरी, 1966 में दिनमान पत्रिका में क्रमश: प्रकाशित हुई । यात्रा कथात्मक शैली में सृजित यह रिपोर्ताज सूखे के अभाव में लाचारी पूर्वक अपने भाग्य को कोसते कोसला गांव की सीधी - सरल जनता की व्यथा को प्रस्तुत करता है । भूखे, नंगे, पीडित, दमित, वर्ग के लोगों के दर्द को रेणु ने जिस सजीवता से दर्शाया है, उसे पढते समय ऐसा प्रतीत होता है कि हम स्वत: उस स्थान का प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे हैं ।

रिपोर्ताज एक कलात्मक सर्जन है और लेखक को इसके शिल्प विधान से अवगत होना पडता है । रेणु ने इस रिपोर्ताज को शाब्दिक तथा कलात्मक उपकरणों से सुसज्जित कर इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि घटनाचित्र का प्रभावपूर्ण वर्णन एवं यथार्थ की सजीवता प्रत्येक पाठक को गहरे तक संवेदित करके रख देती है । इसमें लेखक ने रिपोर्ट को प्रस्तुत करते हुए मानवता को सर्वोपरि दिखाया है जहां सूचना के साथ - साथ अपकृष्ट मानसिकता को

परिवर्तित करने तथा दुख में हाथ न सेंकने का सार्थक उद्देश्य सन्निहित है । बाढ के विकट समय में मनुष्य के उजडते संवेदना-छंद की रक्षा के निमित्त ये पंक्तियां हृदय द्रवित करने वाली हैं - "भीड़ में कहीं भी कोई भी अपना परिचित नहीं....... भीड़-प्रिय आदमी कभी किसी का अपना नहीं होता । वह व्यक्ति अपने परिवार के कनिष्ठतम प्राणी के साथ बाढ का मेला देखने आया है । परिवार के सभी सदस्य रंग - बिरंगी पोशाक पहने हुए हैं । औरतें और लडकियां सजी-धजी हुई हैं । बंगला में इसी को 'हुजुग' कहते हैं । इस हुजुग को, मेला देखने वाली भीड को , देखकर बाढ के पानी में डूब मरने को जी करता है ।"4

घटित घटनाओं का साक्षात्कार कर उसे संवेदना के धरातल पर सहजता से प्रस्तुत करना चुनौतीपूर्ण होता है । रिपोर्ताज लेखन में यथार्थवादी आग्रह को प्रश्रय देने की होड में कई बार कुछ रचनाओं का साहित्यिक पक्ष गौण हो जाता और वह लेखन , मात्र यथार्थ का विवरण बनकर रह जाता है और कभी कभी रचना में कलात्मकता को अधिक मुखरित करने की लालसा में यथार्थवादी पक्ष कमजोर हो जाता है , परंतु रेणु एक ऐसे सिद्ध साहित्यकार हैं जो यथार्थ, साहित्यिक पक्ष , भाषिक सौंदर्य तथा संवेदना के संतुलन से अपनी रचनाओं को साधते हैं । बाढ की विभीषिका ने जहां आम जनजीवन के सुख शांति को अपनी हिलोरों में समेट लिया है और ऐसे में उनकी दुखती रग पर जख्म डालने के सदृश जब शिष्ट लोगों की भीड उमडती है तो लेखक को यह बंगाली मेला हुजुग की भांति लगता है । बाढ के स्थल को पर्यटन स्थल समझ कर , सुंदर पोशाक में वहां आनंद लेने आए लोगों की निष्ठुरता से दुखी होकर लेखक खुद जल समाधि ले लेना चाहते हैं । जल प्रलय से अनवरत जीव - जंतु और मनुष्यों के मृत्यु का कहर देखकर लेखक

का मन इतना दृढ हो चुका है कि अब वे मृत्यु का वरण करने में भयभीत नहीं अपितु तैयार हैं यथा - “अब काहे का डर ?..... दिन में सुअर के बच्चे जिस तरह डूबते - बहते हुये मर रहे थे , उसी तरह मरने को तैयार हूं । किंतु चिचियाऊंगा नहीं उनकी तरह । मृत्यु की वंदना गाता हुआ मरुंगा” । 5

स्पष्ट है कि विवेच्य पंक्तियां जितनी भावप्रवण हैं उतनी ही व्यंगधर्मी भी । प्राकृतिक आपदा से पीडित आम जन जीवन की समस्याओं को रेणु ने अतिमानवीय दृष्टि से निरुपित किया है जिसमें यथार्थ और संवेदना का संगम रिपोर्ताज को अधिक रोचक बनाता है। रिपोर्ताज लेखक जब किसी घटना या समस्या का वर्णन संवेदना एवं मानवीय मूल्यों के साथ जोडकर प्रस्तुत करता है तो वह लम्बे अरसे तक पाठकों के मन - मस्तिष्क में अंकित रह जाता है और कुछ घटनाए इतनी मार्मिक होती हैं कि सहृदयी पाठक उसे बार - बार पढते हैं। फणीश्वर नाथ रेणु इसी शृंखला के साहित्यकार हैं । ऋणजल धनजल में कहीं कहीं आपका संवेदना पक्ष इतने विराट ढंग से निदर्शित हुआ है कि मन द्रवीभूत हो जाता है यथा -

“मलिकवन के कौन फिकिर ? घर में अनाज - पानी भरल है।”

“हमनिये के उपजायेल , ओसायल - बरायल और घर में सईंतल अनजवा - देखल अनजवा कहां चल जइते भैया?”

“गरीबन के देखे वाला केयो नाहीं।”

“ सात दिन केर लडकोरिया के एह खेसारी के घाठा ? हे परमेसर , एसन कभ्भी न देखली। ”

“ माइये के ना खायेला मिलतई त बचवा जीयतय कैसे? ”

“दुधवे न होइ है .... ।”

“कीप ऑन टाकिंग ..... । ”- ‘ यायावर’ अपने कैमरे के ‘ व्यूफैण्डर ’ में देखते हुए कहते हैं ।” 6

रेणु भाव प्रवणता के प्रेक्षक हैं । सूखा के कारण साधारण जनता किस प्रकार पीडित व संघर्षरत है उसे लेखक ने उनके संवाद के माध्यम से ही व्यक्त किया है । वह स्थिति दयनीय है जहां नवजात शिशु की मां को जीवित रहने भर के लिए खाद्य सामग्री अनुपलब्ध है। इस दारुण स्थिति में क्षुधा से व्याकुल मां जाये संतान का पोषण किस भांति कर सकतीं हैं ? रिपोर्ताज में यथार्थ और संवेदना को उद्भासित करने के लिये जिस साहस की आवश्यकता होती है , वह रेणु में अदम्य रूप से व्याप्त है । 'हमनिये के उपजायेल, ओसायेल - बरायेल और घर में सईंतल अनजवा कहां चल जैते भैया?' तथा ' गरीबन के देखे वाला केयो नाहीं ' आदि पंक्तियां विवशता और लाचारी के मारे हुए गरीबों के जीवन में घटित यथार्थ के कई परतों का अनावरण करके रख देते हैं। रेणु का अनुभव संसार बिहार की आंचलिकता से बिंधा हुआ है। बाढ और सूखा के समय जब लेखक उन स्थानों का पर्यवेक्षण करते हैं तो अकाल के महामारी का तांडव देखकर उनके भीतर का संवेदनशील मन करुणा से इतना आद्र हो उठता है कि वे उस गांव में पुन: जाना ही नहीं चाहते - " मैं कोसला गांव फिर कभी नहीं आना चाहता । कभी नहीं आऊंगा , यहां ! क्योकि जानता हूं...... जब लौटकर आऊंगा तो देखूंगा .... जशोदा नहीं है । अकलवा अपनी मां को खा कर चल बसा है । .... मैं खोजूंगा - यहां कहीं कोसला गांव था ? यहां जशोदा थी ? ...... जशोदा मा...ई...ई.। जशोदा बेटी - ई - ई ।" संवेदना ही मूल्यों की प्रतिरक्षक है । संवेदन शून्य व्यक्ति साहित्य न तो समझ सकता है और न ही किसी के दुख दर्द को भांप सकता है और जो किसी के दुख का अनुमान न लगा सके वह समाज और साहित्य के साथ न्याय नहीं कर पाते । रेणु जैसे साहित्यकार अपने भीतर छिपी गहरी

संवेदना के कारण ही ऐसे साहित्य का सृजन करने में सफल हुए हैं जो युगों - युगों तक मानवीय मूल्यों का संरक्षण करते हुए पारस्परिक सहानुभूति और सहयोगिता से व्यक्ति को एक दूसरे के समीप लाने में सक्षम है। यद्यपि यह घटना 1966 की है परंतु उस स्थिति का जैसा वर्णन रेणु ने किया है वह आज भी समाज में घटित होता रहता है । उडीसा , बिहार , मुम्बई, गुजरात आदि शहरों में बहुधा जो अतिवृष्टि या प्राकृतिक उत्पात होते रहते हैं उसे देखकर ये घटनाए जीवंत हो कर हमारे मन में पुनरावलोकित होने लगती हैं । भूख अपने विकट अभिमान से किसी के भी ईमान को डगमगा देती है । इसी का अति करुण वर्णन इस प्रकार है - " अज्ञेय जी ने हाथ में अमरूद लेकर बंगाली मुसहर के बच्चे को बुलाया तो पहले वह झिझका। फिर ' हुलसता ' हुआ दौडा आया । उस समय उसके सूखे मुरझाए चेहरे पर एकाएक आनंद की आभा देखकर लगा - कोई ' अलौकिक ' दृश्य देखा ।"7

बाढ़ और अकाल की इस समस्या से प्रति वर्ष लाखों लोग गुजरते हैं । वही पीडा, अभाव, लिजलिजी गरीबी ढोने को अभिशापित आम जनता, और राजनैतिक अराजकता आदि । आज के इस वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में रेणु की यह रचना एक विशेष महत्व रखती है जो अपने प्रभावपूर्ण, दारुण घटनाचक्र, व सुसंगठित रिपोर्ट के माध्यम से निर्माण की नई दिशा की ओर समाज , जनता , राजनेता और सरकार का ध्यान आकृष्ट करती है । इसमें कपोल कल्पित तथ्य नहीं प्रत्यक्षदर्शी सत्य और व्यंग की भरमार है । रेणु के लेखन की यह विशेषता है कि वे कटाक्ष भी करते हैं तो इतनी कलात्मकता से करते हैं कि बात भी स्पष्ट हो जाए और किसी पर आरोप - प्रत्यारोप भी न आए यथा - "अरे दुर साला । कॉदछिस केन ? ..... रोता क्यों है ! साले! तुम लोग थोडी सी मस्ती

में जब चाहो तब राह चलते ‘ कमर दुलिये - दुलिये ’ (कमर लचकाकर और कूल्हे मटकाकर) ट्विस्ट नाच सकते हो । रम्बा - सम्बा हीरा - टीरा और उलंग नृत्य कर सकते हो और बृहत सर्वग्रासी महामत्ता रहस्यमयी प्रकृति कभी नहीं नाचेगी ?......... ए - बार नाच देख ! भयंकर नाच रही है - ता - ता - थे ई - थे ई।”8 मनुष्य की लोलुप प्रवृत्तियां जिस निर्बाधता से प्राकृतिक खजाने का दोहन कर उस पर विजय पाने का मिथ्याभिमान पाले रहती हैं , उसकी भरपाई तो करनी पडती है । विवेच्य व्यंगोक्तियों में लेखक ने इसी तथ्य को व्यक्त किया है । साथ ही सरकार की ढीली व्यवस्था पर लेखक का मन क्षोभ से भर उठता है । यद्यपि लेखक यहां राजनेताओं के क्रियाकलाप और पीडित जनता के प्रति उनके दायित्वों का समूचा विवरण देने में संकोच कर गए हैं परंतु एक जगह उनकी भडास कुछ यूं दर्शित हुई है - “(....... बाढ । दुग्धोज्ज्वल खादी की टोपियों की बाढ , ज्वार भाटा) रोज दिल्ली अर्थात केंद्र से कोई न कोई अन्नदाता उडकर आता है ‘ ड्राउट ’ देखने । (छत्तर का मेला हो गया यह ड्राउट !) रोज राज्य का कोई न कोई मालिक (बडा , छोटा , मंझला , संझला , पांचू , छठ , सत्तो .... मालिकों का अकाल है यहां । ‘ भयानक और भीषण ’बयान दे डालता है , केंद्र के अन्नदाता कहते हैं , पहले उन चूहों का अंत करो जो अन्न वस्त्र को ही नहीं - सारे राज्य की जनता की आत्मा को कुतर रहे हैं। ”9 बात को बिना घुमाये और संक्षिप्त रूप में स्पष्ट कर देना रेणु के लेखन का वैशिष्ट्य है । अध्ययन और अनुभव में निपुण रेणु जी ने राजनीतिक विसंगतियों , विकृतियों पर बडी सतर्कता से व्यंगात्मक प्रहार किया है । रिपोर्ताज में अनुभव ही लेखक का दस्तावेज होता है । इस रिपोर्ताज में लेखक ने आंखों देखे हाल का वर्णन काव्यात्मक व व्यंगोक्ति शैली

में किया है । एक उदाहरण इस प्रकार है - " सूखी धरती पर भूख से तिलमिलाकर मृत्यु से साक्षात्कार करने वालों से साक्षात्कार करने के लिए ।"10 इसमें रेणु जी ने व्यंग के माध्यम से आम जनता के संघर्षमय जीवन के साक्षात्कार को प्रस्तुत किया है । विपत्ति के चक्रव्यूह में फंसा आम आदमी संयम के साथ जब स्थिति को सहज बनाने के लिए प्रयासरत रहते हैं उस मर्मांतक समय में पत्रकारों और अन्य दर्शकों की भीड उनके मनोबल को आघात पहुंचाते हैं । जमीन से जुडे लेखक रेणु , व्यक्ति की मानसिकता को समझते हैं । जब दिनमान पत्रिका के संपादक अज्ञेय जी सूखा ग्रस्त क्षेत्रों का निरीक्षण करने आते हैं उनके संदर्भ में उपर्युक्त पंक्तियां लेखक ने लिखी हैं । अज्ञेय की ओट में रेणु जी ने यह भी इंगित किया है कि पत्रिका व अखबार में रिपोर्ट देने वाला पत्रकार या रिपोर्टर बहुधा संवेदना शून्य ही रहता है, वह मात्र अपने व्यापार की श्री वृद्धि हेतु दुर्गम स्थिति में भी घटना स्थल पर पहुंचता है । रेणु ने यथा स्थिति का अवलोकन कर प्रतिबद्धता व साहस से शोषित जनता पर सहानुभूति दिखाकर व्यंग किया है । यह व्यंग भी भाषा , अनुभव और उपहास का मिला जुला परिणाम है जहां हास्य न के बराबर है। यहाँ विसंगति पर चोट है जो अन्याय के खिलाफ लेखक के छटपटाहट को दिखाता है ।

रेणु आंचलिकता के जनक हैं । उनकी किसी भी कृति में प्रस्तुत आंचलिक जीवन का यथार्थ , लेखक का अपना जिया हुआ अनुभव है । रेणु का लेखन ऐसी सहृदयता या भावुकता का प्रमाण है, जो ग्रामांचल की जिंदगी के प्रति लगाव को पुष्ट करता है और जिसे आधुनिकता या आधुनिकतावाद की रुढियों के निर्वाह की कोई आवश्यकता महसूस नहीं होती । रेणु की प्रत्येक रचना अंचल और लोक के तात्विक समावेश से ही पूर्णता प्राप्त करती है । 'ऋणजल

धनजल’ में लेखक ने बाढ की विभीषिका में भी लोक जन जीवन तथा उनके उत्सवधर्मी स्वभाव को जिस रोचकता से प्रस्तुत किया है वह समाज के लियप्रेरक है । लेखक ने जहां अपरोक्ष रूप से इस बात की पुष्टि की है कि समाज के धनाढ्य व राजनैतिक वर्ग के लोग बाढ की आपदा को अनदेखा करते हुए अपने भंडार को समृद्ध बनाने में व्यस्त रहते हैं, फिर भी मानसिक अवसाद से ग्रस्त होते हैं वहीं समाज का उपेक्षित , पीडित , शोषित , दलित , दमित वर्ग के लोग जिंदगी जीने की कला में पारंगत हैं । बाढ के प्रलय में मछ्ली और चूहों को भूनकर खाने वाले ‘मुहसरी’ टोला के लोग ‘ बलवाही ’ नृत्य तथा नाटक के अभिनय से , घुटन व दहशत भरे वातावरण में हास्य, व्यंग, नृत्य व लोकगीत के भावात्मक निर्झरी में सराबोर करते हुए अपने परिजनों को प्रसादित करते हैं । उनकी इस उन्मुक्त खुशहाल प्रवृत्ति के प्रति रेणु ने लिखा कि - “ कीचड - पानी में लथपथ भूखे- प्यासे नर - नारियों के झुंड में मुक्त खिलखिलाहट लहरें लेने लगती है । हम रिलीफ बांटकर भी ऐसी हंसी उन्हें दे सकेंगे क्या! ”10

तनावभरे वातावरण में आम जनता की समस्या को लेखक ने जिस सकारात्मकता से दिखाया है वह एकता को निदर्शित करते हुए सौहार्द्र के भाव को मजबूती प्रदान करता है तथा दम्भ से दूर सरल मनुष्यों की ऋजुता को दर्शाता है । विद्रोह , विसंगति , प्रतिस्पर्धा युक्त आज के वातावरण में रेणु का यह पक्ष लोकहित में अनुकरणीय है । लोकगीतों के अभाव में तो रेणु की कोई भी रचना अपूर्ण होती है । इन गीतों के माध्यम से लेखक स्थानीय समाज के रीति को संक्षिप्त में प्रस्तुत करते हैं । सावन - भादों के महीने में ससुराल से बेटियां मायके आने के लिये आतुर रहती हैं । किसी

कारणवश यदि मायके पक्ष के लोग उन्हें बुला नहीं पाते तो उलाहना भरे गीत लडकी के दर्द को व्यक्त करते हैं यथा -

“कासी फूटल कसामल रे दैबा / बाबा मोर सुधियो न लेल,

बाबा भेल निर्मोहिया रे दैबा / भऊजी बिसरि कैसे गेल ...?11

कोसी नदी बिहार की जनता के जीवन का अभिन्न हिस्सा है। दुख, सुख , उत्सव ,उल्लास , शोक के माहौल में कोसी रहती ही है। कभी खुशियों से वहां के लोगों को झूमने के लिए मजबूर करती है तो कभी दुख देकर दुगुना वापस ले भी लेती है । ससुराल गई बहन को बुलाने जब भाई जाता है उस समय कोसी की बाढ में भाई- बहन के बिछडाव का जो दर्द है वह अति मार्मिक है -

“कटि गेल कासी - कुशी छितरि गेल थम्हवा

खुलि गेल मूंज केर डोरिया - रे सुन सखिया !

.... बीचहि नदिया में अइले हिलोरवा

छुटि गेलै भैया केर बहियां - रे सुन सखिया !

.... डूबि गेलै भैया केर बेडवा - रे सुन सखिया !”12

इस लोकगीत के माध्यम से रेणु जी ने जहाँ बहन के दर्द को दिखाया है वहीं इस ओर भी इशारा किया है कि बाढ का प्रलय और उसकी क्षति सदियों से रही है । प्रकृति पर विजय पाना मनुष्य के परे है परंतु स्थितियों को सामान्य बनाने के लिए सरकार की प्रतिबद्धता भी अनिवार्य होती है । रेणु ने इन लोकगीतों के द्वारा इस रिपोर्ताज को संगीतात्मक और लयात्मक रूप देकर रोचक एवं अर्थ व्यंजक बनाया है ।

इस रिपोर्ताज में परिवेश, संवेदना एवं परिस्थिति के संदर्भानुसार भाषा का प्रयोग हुआ है । पढते समय कहीं से इस बात का भान नहीं होता कि इसमें समरूपता का अभाव है जबकि लेखक ने अंग्रेजी , मगही, बंगाली तथा संस्कृत के श्लोकों के प्रयोग

आदि से इसे विशिष्टतम बनाया है यथा - " नाभिनन्देत मरणं नाभिनंदेत जीवितम , कालमेव प्रतिक्षेत निर्देशम्मृत को यथा ....." इसी प्रकार " आमादेर दिकेमाने आमार खेते कोसी - प्रोजेक्टर कृपाय भालो धान होये छे । " " आमि भेवेछिलाम जे आपनि हिंदी - राइटर श्री " आदि बंगला वाक्यों का प्रयोग कई स्थानों पर किया है जो इतनी तरलता से रिपोर्ताज में घुलमिल गई है कि कहीं से भी नीरस प्रतीत न होती हुए पठनीयता को सारगर्भित बनाती है । सूखे के वर्णन में बंजर भूमि के अवलोकनार्थ जब रेणु जी साहित्यकार तथा पत्रकार अज्ञेय जी के साथ कोसला गांव में प्रवेश करते हैं उस समय लेखक द्वारा मगही भाषा में स्थानीय लोगों के साथ का संवाद भाषिक सौंदर्य को अधिक अर्थ व्यंजक बनाता है यथा - " " गांव में कौनो मरद - पुरुखवन केर पता न है ! कहां गेल हो , ई सब ? "

"जइते कहाँ ? कमावे कोडे ला ।"

"चुल्हवा में की पक्कत हलै ? धुंइयां देखै हियेक।"

" पक्के कई की है जे पकतई ! लडकोरिया लेल गोइठवा में अगिया सुलगत हय - ओकरे धुइंया । " आपदा के समय में भी अपनी तुच्छ मानसिकता को न परित्यागने वाले शिक्षित वर्ग के लोगो की अंग्रेजी बोली का भी व्यंगात्मक वर्णन किया है । उदाहरणार्थ - " दिस इज शीयर पार्सियालिटी ..... आई एम नाइदर ए विलेजर नार ए लेबरर , आर ए बेगर ......" साहित्यकारों में रेणु एक ऐसी विभूति हैं जिन्होने अपने साहित्य में ध्वनियों का सर्वाधिक प्रयोग किया है . लेखक ने यत्र तत्र मुहावरों और कहावतों का भी प्रयोग किया है - ' गाय की तरह टुकुर टुकुर देखना ', ' गंगा का कोप होना ' , लजारू बहुरिया होना ' आदि । कुल मिलाकर रेणु के इस रिपोर्ताज का भाषिक पक्ष संदर्भानुसार सहज और आंचलिक है । कहीं - कहीं भाषा का चुटीलापन होठों पर स्मित मुस्कान भी लाती

है यथा - " मैं उनकी पीठ नहीं ...... देख रहा था उनका सिर । जो स्वयं चालित यंत्र की तरह कांच के ' वाइपर ' की तरह ..... बांये से दाहिने और दाहिने से बायें घूम रहा था ।" और कहीं अति सरल तथा संक्षिप्त वाक्य में भी अनेक गूढ रहस्य को दर्शाती पंक्तियां गहरे तक मंथन करने हेतु विवश करती हैं जैसे - " 'बेड टी का एक अर्थ 'जागिये कृपा निधान' भी होता है । जगने का यह संकेत प्रकृति के प्रति उदासीन जनता के लिए , अपने कर्तव्यबोध से विमुख राजनेताओं के लिए, विपत्ति में फँसी निरीह जनता की विवशता को अपने अखबार का कवरेज बनाने वाले पत्रकारों के लिए है । "रेणु में स्थितियों को शब्दों में अंकित करने की अद्भुत क्षमता है । स्थितियों को वे देखकर ही नहीं पूरी तरह महसूस करके लिखते हैं । उनकी सारी इंद्रियां सजग होकर एक साथ काम करती हैं । इसीलिए उनके रिपोर्ताजों में स्थितियों का समग्र अनुभव उभर आता है।" भाव, भाषा, शैली, विचार, चिंतन की दृष्टि से रेणु के समकक्ष आंचलिक सौंदर्य को प्रस्तुत करने वाला कोई नहीं है। रेणु ने अपने जीवन , कर्म तथा सृजन में आंचलिकता को जिस ऊंचाई तक पहुंचाया है , वह हिंदी साहित्य के लिये महत्वपूर्ण प्रदेय है ।

संदर्भ

1. फणीश्वर नाथ रेणु, ऋणजल धनजल ।
2. पूर्वाभास पत्रिका, भारत यायावर ।
3. रामचंद्र तिवारी, हिंदी का गद्य साहित्य, पृ. 446 ।
4. सीतारामदीन, साहित्यालोचन : सिद्धांत और अध्ययन, पृ.- 153 ।

मध्यप्रदेश की विमुक्त जनजाति बंजारा का सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य

डॉ.अर्चना श्रीवास्तव
राजभाषा प्रकोष्ठ
इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय
अमरकण्टक (मध्य प्रदेश)

सारांश

मध्यप्रदेश विभिन्न जनजातियों की शरणास्थली रहा है|जिनमे से एक है बंजारा जनजाति जिन्हें, गोर, नायक, लैंबदी एवं ऐतिहासिक रूप से घुमंतू व्यापारिक जनजाति के रूप में भी जाना जाता है बंजारा जनजाति भौगोलिक रूप से उत्तर से दक्षिण की ओर फैली है| आमतौर पर खानाबदोश लोग जो एक गाँव से दूसरे गाँव भ्रमण करते हुए अपने नियम एवं शर्तों पर जीवनयापन करते हैं| वर्तमान परिदृश्य में देखें तो घुमंतू समाज हाशिए पर चला गया है| इनका अतीत महज नाच गाने और करतब दिखाने तक ही सीमित रह गया है| आज ये अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं| लेकिन हिंदुस्तान की विरासत एवं कला को संजोने में इनका योगदान अद्वितीय है |

यह शोधपत्र बंजारा समुदाय के सामान्य-स्थानीय भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि को सामने लाने का प्रयास है। इसमे इनके वर्णनात्मक इतिहास,

संस्कृति, धार्मिक प्रथाओं, सामाजिक-सांस्कृतिक और भौगोलिक प्रसार पर ध्यान केंद्रित किया गया इनकी रंग-बिरंगी जीवनशैली हमेशा से देश दुनिया के आकर्षण का केंद्र रही है | यह शोधपत्र बंजारा जनजाति की सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति पर मनन एवं उनके अस्तित्व की खोज करने का विनय प्रयास है |

मुख्य शब्द: बंजारे, घुमंतू जनजाति, कला, इतिहास, संस्कृति

परिचय

'घुमंतू' मानव मात्र की मूल प्रकृति है| हमने बंजारा जनजाति को 'घुमक्कड़ समूह के रूप में देखा है। सिंधु नदी सभ्यता पूर्व से इनके इतिहास का पता चलता है लेकिन कोई लिखित दस्तावेज नहीं था। लक्ष्मण गायकवाड़ के अनुसार बंजारा को अंग्रेजों ने चोर डकेत करार दिया था,[1] मध्यप्रदेश का एक अभिन्न हिस्सा है| दंतकथाओं, लोककथाओं, कहानियों, गीतों, स्मृतियों, जनगणना रिपोर्टों और नृवंशविज्ञान लेखन, यात्रा-वृत्तांतों, साक्षात्कारों, प्रश्नावली और अन्य स्थानीय स्रोतों से इनके इतिहास का पता एवं निर्माण किया जाता रहा है | इस लेख में विभिन्न स्त्रोतों के माध्यम से उपलब्ध सामाग्री का उपयोग करते हुए बंजारा संस्कृति को वर्णित करने का प्रयास किया गया है।

उत्पत्ति और पृष्ठभूमि

सिंधु नदी सभ्यता दुनिया की सबसे पुरानी सभ्यता मानी जाती है|कई खानाबदोश जनजातियों का यहां रहवास था । बंजारा जनजाति इंडो-आर्यन जाति के परिवार के अंतर्गत आती है जो संस्कृत और हिंदी के समान भाषा बोलती है। बंजारा की उत्पत्ति और

पृष्ठभूमि उनकी घुमंतू प्रकृति और अशिक्षा के कारण अच्छी तरह से संरक्षित नहीं है।[2] भारत के अंदर और बाहर उनके मूल जन्म स्थान, उनकी बस्तियों के संबंध मे इतिहासकारों के बीच मतभेद हैं। सैयद सिराज उल हसन बंजारा इनकी उत्पत्ति का लेखा-जोखा एक कहानी के आधार पर देते हैं,

बंजारा दावा करते हैं कि वे मोता और मोला नामक दो भाईयों के वंशज हैं, जिन्होंने श्रीकृष्ण की गायों का पालन किया था। मोता से आधुनिक मारवाड़ी, मथुरा बंजारे और लभनों के पूर्वज आते हैं। मोला की कोई संतान नहीं थी, एक बार मोला अपनी पत्नी राधा के साथ एक राजकुमार के दरबार पहुंचा, और वहाँ जिमनास्टिक करतब दिखाए, जिसमें वह निपुण था। राजकुमार मोला के कौशल से बहुत प्रसन्न हुए और राधा की सुंदरता और अनुग्रह से इतना मंत्रमुग्ध हो गए कि उन्होंने उन्हें इनाम के रूप में, विभिन्न जातियों के तीन शिशु लड़कों को प्रदान किया...। उनकी संतान को सामूहिक रूप से चरण बंजारों के रूप में जाना जाता है ।[3]

बंजारा जनजाति को पाँच कुलों में विभाजित किया गया था। (1)मथुरा, (2)लभानी, (3)चरण (4) धादिया(5) धलिया या बंजारी लोगों को संगीतकारों के रूप में प्रत्येक कबीले में जोड़ा गया था, इनके स्पर्श को अन्य कुलों द्वारा अपवित्र माना जाता था। क्यूबर्लीज बताते हैं कि मथुरा बंजारा, जो ऊपरी भारत में मथुरा से सम्बद्ध हैं, हिंदुस्तानी ब्राह्मण कहलाते थे ये पवित्र धागा पहनते हैं मांस नही खाते हैं और वेदों को उच्च जाति की तरह सीखते हैं ।[4]

अन्य सभी कुलों में, चरण बंजारा दक्षिण निज़ाम क्षेत्र और बॉम्बे प्रांतों)में बहुतायत से पाए जाते हैं और उन्हें पाँच कुलों में विभाजित किया गया:(1) राठौड़ (2) पंवार (3) चव्हाण (4) वदित्य और (5) तोरी [5]

राठौड़ के सात बेटे थे, 6 पंवार के बारह बेटे थे, 7 चव्हाण के छह बेटे थे, 8 वदित्य के तेरह बेटे थे, 9 और तोरी (तम्बूरी)के छह बेटे थे। चरण और उनके वंशज डकैती के लिए कुख्यात थे। कृषि और पशु पालन भी करते थे | बंजारे आमतौर पर भारतीय राज्य राजस्थान, उत्तर-पश्चिम गुजरात और पश्चिमी मध्य प्रदेश और पूर्व-स्वतंत्रता पाकिस्तान के पूर्वी सिंध प्रांत के खानाबदोश लोगों के रूप में जाने जाते हैं।

शब्द बंजारा की व्युत्पत्ति

सैयद सिराज ने उल्लेख किया कि “बंजारा” नाम फारसी शब्द “बेरिनजी अरिंद” से लिया गया है जिसका अर्थ है ‘चावल के व्यापारी' और संस्कृत के शब्द "बनिज," "बनिया" और "बनजिगा" सभी का अर्थ भी 'व्यापारी' ही होता है; उन्हें अन्य नामों से जैसे कि "लमानी" जिसका संस्कृत में अर्थ है लवण-नमक, लाबान नमक के वाहक हैं, इसलिए उन्हें लाम्बड़ा, लमबाड़ी, लाम्बानी या बंजारा के नाम से भी जाना जाता था। केएस सिंह ने उल्लेख किया है कि 'लाम्बादियों को बंजारा, बैंगनारी या बंजारी, बोआरी, सुगली'[10] भी कहा जाता है और वे बैल के कारवां पर नमक और खाद्यान् के वाहक के रूप में जाने जाते हैं।

बंजारा पुरुषों और महिलाओं को क्रमशः घोरी माटी और घोर दासी के रूप में संबोधित किया जाता है, और वे गैर-बंजारा को खोर माटी के रूप में संबोधित करते हैं।[11] शब्द "बंजारा" प्राकृत और हिंदी और राजस्थानी शब्द "बन / बन या वान / वान" से निकला होगा जिसका अर्थ है वन या मूरलैंड्स और "चर" जिसका अर्थ है 'मूवर्स'। ये अग्निवंशी राजपूतों के कबीले से संबंध व राजस्थान क्षेत्र से राजपूत वंश के वंशज होने का दावा भी करते थे। यद्यपि ये

सभी इनकी जनजातीय विशेषताएं हैं, लेकिन उन्हें विभिन्न जाति श्रेणियों के तहत शामिल किया गया है |

बंजारा समुदाय का सामाजिक जीवन

भारतीय समाज में जंगल लकड़ी संग्राहकों और वितरकों के रूप में उनकी प्रमुख भूमिका थी। उनका पारंपरिक पेशा कृषि और व्यापार है। बंजारा घुमंतू पशु चरवाहों का एक समूह है। एक अनूठा सामुदायिक जीवन, भाषा, धार्मिक रीति-रिवाजों, त्योहारों और समारोहों का समाविष्ट रूप बंजारों के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को चिह्नित करता है| मुख्य रूप से बंजारों ने एक अनोखी और अलग जनजातीय पहचान बनाए रखी है। [12]

बंजारा समाज की किसी भी अन्य समाज के समान,सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन, टांडा, बस्ती, पोशाक,भाषा, त्योहारों, देवताओं, रीति-रिवाजों और परम्पराओं के निर्वाह की अनूठी परंपरा है।डुबोइस ने ठीक ही कहा है कि, "लाम्बदी एक जाति बनाते हैं जो बाकी हिंदुओं के धर्म, भाषा, शिष्टाचार और रीति-रिवाजों से पूरी तरह से अलग है।"[13]

मो. थिराज लिखते हैं कि गोरवन्शिया (बंजारा) में एक अनूठी संस्कृति, स्वतंत्र सार्वजनिक जीवन, आजीविका की अनूठी परंपरा और जीवन शैली, भोजन की आदतें, त्योहार, अनुष्ठान, पूजा, पसंद और नापसंद, नृत्य, गीत, भाषा, कपड़े और टांडा जीवन में बहुत कुछ स्पष्ट था।[14] बंजारा जाति व्यवस्था का पालन नहीं करते हैं, बल्कि एक वर्ण व्यवस्था है। हालाँकि वे धार्मिक और सामाजिक जीवन के अपने व्यवहार में हिंदू धर्म का पालन करते हैं। दीपावली और होली के दौरान बंजारे देवताओं को बकरों की बलि देते हैं, घर-घर जाकर नृत्य करते हैं और भिक्षा प्राप्त करते हैं। बंजारा

के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन ने उन्हें अन्य लोगों से अलग पहचान दी है।[15]

बंजारा आवास व्यवस्था-टांडा

शहरों एवं कस्बों के बाहर शिविरों में बंजारों की आवास व्यवस्था को टांडा/डेरा कहा जाता था। इन "टांडा" में निवास इनकी विशिष्ट विशेषता थी जो उन्होंने अपने खानाबदोश जीवन के दिनों में हासिल की थी। हालांकि अभी भी वे टांडा में रहते है। इनके पारंपरिक आवास अन्य गैर- बंजारा घरों से बहुत अलग दिखते हैं जो स्वाभाविक रूप से बनाए और आसानी से भंग किए जा सकते हैं। सरकार वर्तमान में उन्हें स्थायी मकान प्रदान कर रही है। बंजारा बस्तियों की कुछ ख़ासियतें यहाँ दी गई हैं-

सामुदायिक जीवन

बंजारा लोग गैर-बंजारा लोगों से दूरी बनाए रखते हुए " टांडा " में रहते हैं। समुदाय को व्यक्तिगत हितों से ऊपर रखा जाता है और "नाइक" (समुदाय के प्रमुख)सामाजिक-राजनीतिक और धार्मिक जीवन के मामलों में समुदाय का नेतृत्व करते हैं । रिश्तेदारी और कबीले या उप-कबीले के रिश्ते ने साम्यवादी जीवन की भावना को मजबूत किया है।

बंजारा और गैर-बंजारा

बंजारा बस्ती एक संकेत है कि वे दूसरों के साथ मिश्रित नहीं होते हैं। बंजारा अन्य गैर-बंजारा लोगों से दूरी बनाए रखते हुए गांवों के बाहर रहते हैं। इससे उन्हें अपने अद्वितीय सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन, भाषा, पोशाक, गीत और धार्मिक जीवन को

संरक्षित करने में मदद मिलती है हालाँकि बंजारों के बीच आधुनिकता और गरीबी ने उन्हें दूसरों के साथ घुलने मिलने के लिए मजबूर कर दिया है।

टांडा जूरी बोर्ड-नसाब

बंजारा जनजाति का राजनीतिक संगठन, समुदाय के अनुशासनात्मक और न्यायिक मामलों के लिए नाइक/प्रमुख के रूप में नेतृत्व करते है।नाइक थांडा के आध्यात्मिक और धर्मनिरपेक्ष दोनों मामलों के प्रमुख होते हैं और समुदाय को नियंत्रित करते हैं। प्रत्येक नांगर या थांडा एक मुखिया या नाइक के अधीन होता है और यह पद ज्यादातर वंशानुगत होते है लेकिन कभी-कभी लोग योग्यता के आधार पर भी व्यक्ति को चुनते है । थंडा परिषद को नसाब या थंडा न्यायपालिका कहा जाता है, यह व्यभिचार, बलात्कार, उन्मूलन, और परिवार संबंधित मामलों का निपटान करती है। यह अपराधियों को जुर्माना और सजा देने का अधिकार भी रखती है।

टांडा ज्यूरी बोर्ड का नेतृत्व नाइक करता है, और करभारी जो थैक की अच्छी तरह से देखभाल के लिए नाइक को बहुमूल्य सुझाव देते हैं।[16] आमतौर पर पुलिस स्टेशन या अदालतों में मुकदमे दर्ज नहीं होते हैं; सभी मामलों को टांडा न्यायपालिका के अन्दर निपटाया जाता है जो समय, धन और प्रतिष्ठा बचाता है।

सामाजिक प्रथाएं

शादी

बंजारा जनजाति को चार कुलों में बांटा गया था, जिनके नाम राठौड़, पामर, चौहान और वदिति थे। ये एक ही उप-कबीले के

भीतर विवाह नहीं करते हैं क्योंकि उन्हें भाई और बहन माना जाता है। एक व्यक्ति अपनी बहन की बेटी, मां के भाई की बेटी से शादी कर सकता है। बंजारा आदमी अपने मामा या बेटी की बेटी से शादी नहीं कर सकता, इसे अनाचार माना जाता है। बंजारा जनजाति में आमतौर पर लड़की के लिए शादी की आयु 14-16 वर्ष और लड़कों के लिए 17-20 है | एक गैर-बंजारा लड़की से शादी की जा सकती है लेकिन एक बंजारा लड़की से गैर-बंजारा लड़के की शादी नहीं की जा सकती है,आम सहमति के साथ आयोजित विवाहों के अलावा अन्य प्रकार के विवाह जैसे सेवा विवाह,आदान प्रदान विवाह, सहपलायन विवाह, विधवा पुनर्विवाह, बहुविवाह भी शामिल हैं।

नशीले पदार्थों का उपयोग

शराब, भांग, हुक्का, बीड़ी, तंबाकू और चबाने वाली सुपारी/पत्ती बंजारा जीवन का हिस्सा है। शराब के बिना बंजारा कार्यक्रम आयोजित नहीं करते हैं।शराब, नशीली दवाओं का सेवन,गरीबी, ऋण, स्वास्थ्य समस्याएं, बंधुआ मजदूरी और अशिक्षा उनके बीच व्याप्त हैं।

टोना, जादू /आकर्षण

बंजारा लोग कोई भी कार्य करने से पहले यात्रा, डकैती, काम या परिवार में फलदायक परिणाम के लिए अपने भाग्य को जानने के लिए उत्सुक रहते हैं। ये अच्छे और बुरे दोनों उद्देश्यों के लिए जादू, आकर्षण और जादू-टोने का भी इस्तेमाल करते हैं।

महिलाओं का स्थान

बंजारा महिलाए पूर्णत: पुरुषों के अधीन भी नहीं हैं और पूरी तरह से मुक्त भी नहीं हैं। महिलाओं को तलाक देने, पुनर्विवाह

करने और अगर अन्यायपूर्ण तरीके से निर्जन किया गया तो उन्हें पति की संपत्ति का आधा हिस्सा दिया जाता है। महिलाएं कृषि, पशुपालन, जलाऊ लकड़ी संग्रह, पशु पालन में भी शामिल हैं और वे शराब बनाकर परिवार की आय में योगदान करती हैं।

टांडा नसाब पुरुष पदानुक्रमित हैं | महिलाओं को टांडा प्रमुख बनने की अनुमति नहीं होती है। परिवार में संपत्ति का उत्तराधिकारी ज्येष्ठ पुत्र होता है। आधुनिक समय में, बाहरी समाज के प्रभाव, आधुनिक शिक्षा और बाहरी दुनिया से संपर्क से महिलाओं की भूमिका में सकारात्मक बदलाव आया है।

बंजारा सांस्कृतिक जीवन और आचरण

बंजारा लोगों का एक अनोखा सांस्कृतिक जीवन और व्यवहार होता है जो उन्हें दूसरों से अलग करता है। भाषा, भोजन, पोशाक और आभूषण, कला और नृत्य, बॉडी टैटू और समारोहों ने बंजारा लोगों की सांस्कृतिक दुनिया का गठन किया। आधुनिक जीवन शैली की आमद और गैर-बंजारा दुनिया के साथ बढ़ते संपर्क ने बंजारा सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित किया। उनकी एक अनूठी संस्कृति और नृत्य शैली है। कई अवसरों पर वे इकट्ठा होते हैं, गाते हैं और नृत्य करते हैं।

खान-पान

इस समुदाय का पारंपरिक भोजन बाटी है। दलिया एक व्यंजन है जो कई अनाज (गेहूं, ज्वार) का उपयोग करके पकाया जाता है।ये मांसाहारी भी होते हैं। सलोई (बकरी के रक्त और बकरी के अन्य भागों से बना) एक मांसाहारी व्यंजन है जो बंजारा विशेष रूप से बनाते है हैं। वे मसालेदार खाना खाना पसंद करते हैं। बंजारों

के घरेलू सामान में एल्यूमीनियम के बर्तन और धूपदान, मिट्टी के बर्तन और लोहे से बने चाकू शामिल हैं। वे जंगल में उपलब्ध घास से चटाई, टोकरी, झाड़ू ट्रे बनाते हैं। वे लाठी, भाला, भेर, खांटी और कुल्हाड़ी का उपयोग विभिन्न हथियारों के लिए अपने हथियार के रूप में करते हैं।

पोशाक

महिलाओं को रंगीन और सुंदर वेशभूषा जैसे पायतिया (घाघरा)और कांचली (शीर्ष के रूप में)पहनने के लिए जाना जाता है और उनके हाथों पर टैटू होते हैं। पोशाक को पश्चिमी संस्कृतियों द्वारा फैंसी और आकर्षक माना जाता है। वे इसे सजाने के लिए दर्पण चिप्स और अक्सर सिक्कों का उपयोग करते हैं। महिलाएं अपनी बाहों (पटली)पर मोटी चूड़ियाँ पहनती रखी हैं। उनके गहने चांदी के छल्ले से बने होते हैं, सिक्के, चेन और बालों की पट्टियाँ कोटला के अंत में एक साथ बंधी होती हैं।

पुरुष धोती और कुर्ता पहनते हैं(कई सिलवटों के साथ छोटे)। ये कपड़े विशेष रूप से रेगिस्तानों में कठोर जलवायु से सुरक्षा और उन्हें दूसरों से अलग करने के लिए डिज़ाइन किए गए थे।

भाषा

लगभग आधी जनसंख्या राजस्थानी बोलियों में से एक लाम्बड़ी बोलती है, जबकि अन्य हिंदी, तेलुगु और अन्य भाषाओं के मूल भाषी हैं जो अपने-अपने क्षेत्रों में बसते हैं|लाम्बदी /बंजारा की भाषा से सत्यापित किया जा सकता है, लांबदी राजस्थानी, गुजराती, मराठी और उस क्षेत्र की स्थानीय भाषा से शब्द उधार लेती है, जिनसे वे संबंधित हैं।

कला एवं नृत्य

बंजारा महिलाओं की सबसे अच्छी कला का काम उनकी वेशभूषा और पोशाक पर समृद्ध कढ़ाई के रूप में दिखता है के. एस. सिंह ने उल्लेख किया है कि "बॉडी टैटू और कढ़ाई (कपड़ा, बढ़ईगीरी और लुहारगीरी जैसे शिल्प उनमें प्रचलित हैं। समुदाय के पास मौखिक परंपराएँ, लोक-कथाएँ और लोक-गाथाएँ में उनका इतिहास निहित है। लोक गीत पुरुषों और महिलाओं दोनों द्वारा गाए जाते थे। टक्कर, कांस्य प्लेटें और झांझ उनके संगीत वाद्ययंत्र हैं।" बंजारा नृत्य प्रसिद्ध है जिसमें पुरुष और महिलाएं दोनों नंगारा और गीतों की धुन पर नाचते हैं। आधुनिकता के प्रभाव के कारण इनकी सांस्कृतिक पहचान धीरे-धीरे खो गई हैं।

लम्बाडी आंध्र प्रदेश का एक विशेष प्रकार का नृत्य है। नृत्य के इस रूप में, मुख्य रूप से महिला नर्तकियों, ड्रमर के साथ मिलकर अपने भगवान को अच्छी फसल के लिए पूजा अर्पित करते हैं। नागार्जुनकोंडा के पास अनूपू गाँव में, लांबाड़ी नृत्य की उत्पत्ति हुई। यह नृत्य मुख्य रूप से महिलाओं द्वारा किया जाता है लैंबदी एक विशेष प्रकार का फोक डांस है जिसमें आदिवासी महिलाओं भाग लेती हैं। जो रंगीन परिधानों और गहनों से खुद को सजाती हैं। ये वास्तव में अर्ध-घुमंतू जनजातियां हैं जो धीरे-धीरे सभ्यता की ओर बढ़ रही हैं।

बंजारा साहित्य

परंपरागत रूप से, बंजारों ने कभी भी कोई लिखित रिकॉर्ड नहीं रखा और न ही अपनी लगातार यात्रा के कारण मौखिक इतिहास को सहेज पाए। बंजारा बोली में लिपि नहीं है इसलिए बंजारों के इतिहास और परंपरा को गीतों, अनुष्ठानों, लोककथाओं,

कहानियों, मिथकों, कहावतों और वाक्यांशों के रूप में समझा जा सकता है। हीरालाल का कहना है कि उनके इतिहास और गीतों को दिल से सीखा गया था और पीढ़ी से पीढ़ी तक प्रेषित किया गया था|[18] युवा पीढ़ी पर आधुनिक प्रभाव के कारण, अधिकांश मौखिक इतिहास और गीत खो गए हैं, इसलिए बंजारा के समृद्ध पारंपरिक इतिहास को संरक्षित करने के लिए स्थानीय लिपि का उपयोग किया जा रहा है।

उपसंहार

बंजारा भारत की प्राचीन घुमंतू जातियों में से एक हैं, जिनमें एक अजीबोगरीब बस्ती, इतिहास, संस्कृति, धार्मिक और सामाजिक प्रथाएं, त्योहार, भाषा, लोक विद्या, पहनावा, शासन व्यवस्था, मृत्यु की समझ, पाप और मोक्ष समाहित है। टांडा ने बंजारा लोगों को बाहरी लोगों से अलग अपनी पारंपरिक और सांस्कृतिक प्रथाओं को संरक्षित करने में मदद की। कई बार और विभिन्न कारणों से बंजारों ने एशिया माइनर और ग्रीस के माध्यम से यूरोप की ओर पलायन किया था। ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने उन्हें अपने खानाबदोश व्यापार, संस्कृति और सामाजिक जीवन से अपराधियों के रूप में ब्रांड बनाकर उखाड़ फेंका था। कई जनजातीय विशेषताओं, सांस्कृतिक और सामाजिक प्रथाओं में जबरदस्त बदलाव आया है। बंजारों की गरीबी ने उन्हें उन शहरों की ओर पलायन करने के लिए मजबूर कर दिया जहां वे आधुनिक संस्कृति, भाषा, जीवन शैली और जीवन प्रणाली के संपर्क में आए, जो उनके आदिवासी जीवन पर प्रभाव डालते हैं|

संदर्भ

1. गुप्ता रमणिका, "विमुक्त घुमंतू आदिवासियों का मुक्ति संघर्ष" कल्याण शिक्षा परिषद नई दिल्ली, 2015 |
2. Mothiraj Rathod, 'Ancient History of Gor Banjaras', http://www.banjaratimes.com/ 18022/55822.html.
3. Syed Siraj ul Hassan, Castes and Tribes of the Nizam's Dominions, Vol.1, Gurgoan, Vintage Books, 1990, p 17.
4. Subhadra Channa, Encyclopaedia of Indian Tribes and Castes, Vol. 2, Bangali- Bhavini (New Delhi: Cosmos Publications, (2004), 353.
5. Russell and Hiralal, eds., Tribes and Castes..., Publishers MJP Vol.,I, 171.
6. Hassan, Castes and Tribes in the Nizam...., Vol.1, 18.
7. Iyer, Mysore Tribes and Castes, Vol. II, 153.
8. Syed Siraj ul Hassan, Castes and Tribes..., 19.
9. Ibid to Chauhan gotra.
10. Iyer, Mysore Tribes and Castes, Vol. II, 153.
11. K. S. Singh, People of India-National Series Volume II: The Scheduled Castes, Revised Edition (Delhi: Oxford University Press, 1999), 123-124.
12 Iyer, The Mysore Tribes and Castes, Vol. II, 135.
13. Stephan Fuchs, The Aboriginal Tribes of India, Macmillan India,1977.

14. DuBois, Jean A A Description of the Character, Manners and Customs of the People of India.
15. Mothiraj, Rathod, 'History of Gor Banjaras'.
16. Iyer, Mysore Tribes and Castes, Vol. II., Publisher, DC 174.
17. Singh, K S, *People of India and Indian Anthropology*..., Vol. II, 125.
18. Russell and Hira Lal, Tribes and Castes..., Vol. II, Macmillan & Co. Ltd, 191.
19. कुमार एम' आदिवासी संस्कृति और राजनीति, विश्वभारती पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2009.

लाहौल स्पीति क्षेत्र के लोक गीत

छविंदर कुमार
शोधार्थी, विद्या वारिधि, हिंदी
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय
विश्वविद्यालय, धर्मशाला
चलित भाष - 9418512979,
व्हाट्सएप नंबर 98170-18700,
अणु डाक chhavindersharma39780@gmail.com

शोध सारांश

किसी भी क्षेत्र के लोक साहित्य से यदि रूबरू होना हो तो उस क्षेत्र के लोक साहित्य के तत्वों को जानना अति आवश्यक है। यह लोकगीत लोक संस्कृति की सुरीली आवाज है जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं वह असल में लोक संस्कृति ही है। लोक गीत हमारी संस्कृति को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। विशेषतः लोक गीत उस स्थान विशेष के साहित्य को अपने आप में इस तरह से समाहित किए होते हैं कि जैसे-जैसे हम लोक गीतों को जानने और समझने लगते है तो हमें इसके माध्यम से वहां की संस्कृति का भी ज्ञान हो जाता है। हिमाचल प्रदेश का जनजातीय जनपद लाहौल स्पीति अपनी पंचरंगी संस्कृति को सहेजे हुए हैं ।

आधुनिकीकरण और शहर की उस भयावह भीड़ से सुदूर यह जनपद हर दृष्टि से अनूठा है। यहां के लोक गीत ही इस क्षेत्र की संस्कृति को गहनता से प्रकाशित करते हैं । हालांकि लोक संस्कृति को लिपिबद्ध करना असंभव प्रतीत होता है। यह पीढ़ी दर पीढ़ी सहजता से अग्रसर होती रहती है और अपनी विशिष्ट पहचान बनाती है । लाहौल स्पीति के लोक गीतों में सामाजिक लोक गीत , धार्मिक लोक गीत , राष्ट्र प्रेम व ऐतिहासिक लोक गीतों का अपना विशेष महत्व है । इनके अलावा तमाम ऐसे भी लोक गीत है जिनका संबंध प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से यहां की समृद्ध संस्कृति विशेष से है।

हिमाचल प्रदेश मेलों एवं उत्सवों की पावन भूमि है । इन्हीं मेलों एवं उत्सवों के मूल से सांस्कृतिक विरासत का प्रादुर्भाव हुआ है। इस बहुयामी संस्कृति का सजग दर्पण लोक गीत ही है । लाहौल स्पीति की पवित्र माटी से जब गीतों की भिन्न-भिन्न ध्वनियां मुखरित होती है तो मानों सारा आंचल उसमें झूम उठता है । मेलों, त्योहारों, उत्सवों , खुशियों व देव उत्सवों के अवसर पर लाहौल स्पीति जनपद के हर देहात में लोक गीतों के गाने का प्रचलन है । गीत एक ऐसी विधा है जो मानव मन की गहराइयों को छूकर उसके मन के सुप्त तारों को झंकृत कर देती है । संगीत का यह माधुर्य लय और ताल के बेजोड़ संगम पर टिका होता है । संगीतों की सहृदयता प्रकृति के प्रतीकों के इर्द-गिर्द छिपी रहती है । लाहौल स्पीति के लोक साहित्य में लोक गीतों का विशेष महत्व है इन गीतों की अपनी एक लोकप्रियता है । लाहौल घाटी में एक कहावत बहुत ही प्रसिद्ध है ---- सेम दुग मने तोड्व सड्. सेमयड्. लूतोड्. वगा। "यानि दुःख में ईश्वर का मंत्र जाप करने से बेहतर है प्रसन्न होकर गीत गाना । आमतौर पर लाहौल स्पीति के लोग हर वक्त गुनगुनाते रहते हैं । इस कहावत से हम स्वयं ही अंदेशा लगा सकते

हैं कि यहां के लोग गीत विधा को कितना महत्व देते हैं । ख़ुशी का कोई भी मौका हो , उस अवसर को ऐसे नहीं गंवाते हैं । हर आयोजन नगाड़े की थाप और शहनाई, बांसुरी की स्वर लहरियों के बगैर संपूर्ण नहीं होता । कोई भी त्योहार हो, मेला हो या खेत खलिहान का काम हो ,हर जगह लोक गीत का समावेश रहता है । स्पीति घाटी से पहले लाहौल की बात करें तो यहां गुरे गीतों को गाने की अपनी विशेष परंपरा रही है । गुरे गीत वास्तव में लोक गाथाएं हैं जिनका गायन लोक गायक मंगलमय और सांस्कृतिक अवसरों पर तो करते ही है इसके साथ-साथ सामान्य गोष्ठियों में भी इनका गायन होता है । लाहौली विद्‌वान के० अंगरूपी जी का मत है गुरे शब्द भोट भाषा के ' मगुरन्मा ' का अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ किसी की प्रशंसा में गाया जाने वाला गीत होता है । लाहौल के साथ लगते चंबा जनपद में भी इन गीतों के गाये जाने का प्रचलन है जो कि लाहौल की समृद्‌ध संस्कृति के विविध पक्षों का चित्रण करते हैं । इन गीतों को श्रुति परंपरा से एक विशेष समुदाय के लोक गायकों द्‌वारा आज भी बड़े शौक से गाया जाता है। गुरे गीतों में लाहौल के धार्मिक रीति-रिवाजों की परछाई अधिकांशतः दृष्टिगोचर होती है। वैदिक तथा पौराणिक देवी-देवताओं के साथ-साथ क्षेत्रीय देवी-देवता भी इन गुरे गीतों में मुख्य पात्र होते हैं । इनमें भगवान भोलेनाथ , पांडु पुत्र , इसके अलावा धरती मां , भीम पत्नी हिडिंबा , घेपन देवता , इत्यादि का बखान इन गुरे गीतों में देखने को मिलता है । पट्‌टन घाटी का त्रिलोकीनाथ मंदिर शिव आराधना का जीवंत परिचायक है । कहते हैं कि भगवान शिव ने सृष्टि मां का निर्माण अपनी दिव्य शक्ति से किया था । जिसका प्रमाण प्रस्तुत गुरे गीत में मिलता है --

जला थला हे जला कुंभा मोई जीयो ।
ईशरो महादेवो क्या दोहरा कीती जीयो ।।
जला अपरू, महादेवो रिशीरी जीयो ।
तेता अपरू, कन्या कुमारी जीयो ।।
तेता अपरू, गुगुला तांबे जीयो ।
तेता अपरू, बैलाना बादी जीयो ।।
तेता अपरू, तांबे री धरती जीयो ।
तेता अपरू, संगली संसार जीयो ।।
ईशरो महादेवी क्या दोहरा कीती जीयो ।
सोना खाई रेरी मढासागा डाही जीयो ।।
दूरा जाईए री हाका लागा देणे जीयो ।
न कीती हुइयें न की अंगारे देने जीयो ।।
ईशरो महादेवी गोबूरा ढोई जीयो ।
गोबरा ढोईये दूणी जा गाही जीयो ।।
धूणी जागाई छार बनाई जीयो ।
धारा खाइये रा मणसागा डाही जीयो ।।
छारे री माणहू रा काना छाड़ी जीयो ।
दूरे जाईये हाका लगाणी देणे जीयो ।।
ईशरो महादेवी पृथ्वी रचाही जीयो ।

प्रस्तुत गीत में यह बताया गया है कि यह पृथ्वी जलमग्न थी । भगवान भोलेनाथ ने सृष्टि रचना की इच्छा जताई । सर्वप्रथम उन्होंने वनस्पति व पेड़-पौधे बनाए , उसके पश्चात पशु-पक्षी बनाए और अंततोगत्वा मनुष्य की रचना की । मनुष्य निर्माण करने के लिए उन्होंने बहुत कोशिश की , प्रयोग किया । सर्वप्रथम उन्होंने सोने के पुतले का निर्माण किया , लेकिन उससे कोई आवाज नहीं निकली। उसके पश्चात उन्होंने गोबर को जलाकर उसकी राख से

एक मूर्ति बनाईं जिसने देखते ही देखते हलचल करनी शुरू कर दी। इस तरह भगवान भोलेनाथ राख से मनुष्य की रचना करने में सफल रहे ।

इस प्रकार से एक अन्य गीत है जिसका संबंध शंकर महादेव परिवार से है । इसका वर्णन इस प्रकार से है

शिवा गौरी बडी झगूड़ा कीति जी हो
गौरी राणी रूशि कारी गेयी जो हो
रूशि कारी गेयी जी समुन्दरा कनारे जी हो
गौरी राणी वेसुता होई जी हो
गौरी राणी माणा विषा खाई थी हो
जट्टा धारी खबुरा होई जी हो
शिवा जट्टा धारी समुन्दरा कनारे जी हो
शिवा बोलुंदा क्या - क्या धोरा करूणा जी हो
ब्रह्म वीरा गरूड़ा शदिकारी आणी जी हो
गरूड़ा राजे सोने पंखा फेरी जी हो
सोने पंखा विषा काई आणी जी हो
ऐतेसाथै गौरी राणी होशा आई जी हो

प्रस्तुत गीत में शिव- पार्वती के परस्पर झगड़े को लेकर चर्चा चल रही है । पार्वती शिव से रूठ कर चली जाती है और रोज़-रोज के झगड़े से आहत वह विष खाने की सोचती है और निगल भी लेती है । शिव भगवान को मालूम हुआ कि पार्वती ने विष निगल लिया है तो वह विलंब ब्रह्म जी के पास जाते हैं और पार्वती की जान बचाने की गुहार लगाते हैं । ब्रह्म जी इसके लिए गरूड़ की प्रार्थना करते हैं और गरुड़ जी को भी तरस आ जाती है और वह अपने स्वर्ण पंखों से पार्वती को स्पर्श करते हैं और पार्वती के शरीर में फैला विष गरूड़ जी एक क्षण में ही उतार देते हैं और पार्वती की

जान बच जाती है । यह गीत आज भी लाहौल समाज में बहुत ही प्रसिद्ध है ।

लाहौल समाज में रामायण से संबंधित गीतों के गाये जाने का भी प्रचलन है जैसे :

रामा ओ लक्ष्मुमण भाई रे जोड़े
सीता राणी व्याही कारी आणी
रामा ओ लक्ष्मुमणा पासा खेलांदे
नौ लगा बागे सोना शीगांनु हरणी
सीते री नजुरा सोना शींगानु हरणी
सुमूला बूटी उमूला कीति
उमूला बूटी सुमूला कीति
आगे-आगे दौड़ी सोना शीगानु हरणी
तेते पीछे दौड़ी रामा ओ वीरा
रामा ओ वीरा वाणा ओ सुमेरा

अर्थात राम और लक्ष्मण सहोदर की जोड़ी बहुत ही सुंदर है। राम जी का विवाह सीता से हो जाता है । वनवास के दिनों में दोनों सहोदर आदमपुर नामक जगह पर पासा खेल रहे थे । उसी समय रावण वहां पर मनोहारी स्वर्ण मृग के भेष में प्रकट होता है और बाग में उछलना कूदना प्रारंभ कर दिया । यह मृग इतना मनमोहक था कि सीता राणी इस पर मोहित हो गई और अपने प्रियतम से उसे पकड़ने की जीद करने लगी । राम और लक्ष्मण दोनों उस मृग को पकड़ने के चक्कर में दूर निकल जाते हैं । कुछ दूर तक दौड़ने के उपरांत मृग अदृश्य हो जाता है । दोनों सोचते हैं कि यह मृग अब बहुत दूर चला गया होगा ,जितने में दोनों वापस आते हैं उस समय तक कपटी रावण सीता का अपहरण कर लेता

है । यह सब काम वह छल कपट से करता है और सीता हरण में सफल होता है।

इसके अलावा और भी अनेकों गीत है जो भगवान रामचन्द्र जी से संबंधित है । इनमें चौदह वर्षों के वनवास को जाते समय का रमणीय चित्रण किया गया है --

राजा रामा लंका जो बरादे अधिमुनि जो धामे-धामे
राजा रामा लंका जो बरादे नौ लाख तारे जो धामे-धामे
राजा रामा लंका जो बरादे सूरजा चन्दुरा जो धामे -धामे
राजा रामा लंका जो बरादे शंकू वीरा जो धामे-धामे
राजा रामा लंका जो बरादे धरती माता जो धामे-धामे

इस गीत में मुख्य भाव यह है कि भगवान राम का लंका पर चढ़ाई का समय आ ही गया है इसलिए वह इससे पहले शूरवीरों को आमंत्रित करना चाहते हैं । इनमें धरती , नौ लाख तारें , रवि , भानु इत्यादि दिव्य शक्तियों को आमंत्रित किया गया है चूंकि इतने लंबे अंतराल तक वन में रहना असंभव सा प्रतीत होता है। इसलिए प्रभू श्रीराम जी चाहते हैं कि जब तमाम दिव्य शक्तियों का साक्षात्कार हो जाएगा तो मुझमें इन समस्त शक्तियों का समावेश हो जाएगा । परिणामस्वरूप मुझमें सभी तरह के कष्टों को सहन करने की शक्ति होगी ।

भगवान त्रिलोकीनाथ जी से संबंधित लोकगीत भी लाहौल घाटी में बहुत प्रसिद्ध है । इसमें त्रिलोकीनाथ की मूर्ति से जुड़ी रहस्यमई कथा है। दंतकथाओं में कहा गया है कि यह मूर्ति मूलतः किसी की बनाई हुई नहीं है बल्कि स्वत: ही प्रकट हुई है । उसके पश्चात इस मूर्ति को त्रिलोकीनाथ में हिणसा गांव के टिंडणु नामक गडरिये ने स्थापित किया था । इस गड़रिए से संबंधित यह लोक गीत है ।

टिंडणु पुहाला हे हिणसेरी ग्रावे जी हो
भेड़ - बाकुरी बो निजी मूर्ति धारे जी हो

हिणसा गांव की गगनचुंबी पहाड़ियों पर टिंडणु गड़रिया अमूमन भेड़ बकरियों को चराने जाया करता था । वहां पर सात मूर्तियां प्रकट होकर भेड़ बकरियों का दूध पी जाती थी और गड़रिए को इस बात का पता नहीं चल पाता था । एक दिन उसने इस रहस्य को जानने की चेष्टा की और झाड़ी के पीछे छुप गया । उसने इनको प्रकट होते देख लिया और आनन फानन में एक को पकड़ लिया । देव रूप होने के कारण उसने इसे गांव में ही स्थापित कर दिया और गांव वालों की सहमति से अपना नाम त्रिलोकीनाथ रखा । कहते हैं कि इस गीत को कभी भी अधूरा नहीं गाया जाता है ।

एक अन्य रहस्यमय गीत धरती माता से संबंधित है । उनकी कोख से तीन पुत्रियों ने जन्म लिया । सबसे बड़ी पुत्री का विवाह भगवान नारायण से हुआ और मंझली का विवाह पांच पांडवों संग हुआ। सबसे कनिष्ठ पुत्री कुंवारी ही थी और वह प्रतिदिन बकरियों को चराने अरण्य जाया करती थी । एक दिन अचानक उसे राहु मिला, जो कि रवि और भानु का वैरी था । अवसर पाकर वह उस अबोध बालिका का अपहरण कर उसे भयावह घनघोर जंगल में ले गया । शाम को जब बालिका घर नहीं लौटी तो धरती माता उद्विग्न हो उठी। उन्होंने पुत्री को ढुंढने के लिए चारों तरफ अपने सिपाही भेज दिए परंतु कुछ पता नहीं चल सका । उसी समय रवि और भानु आखेट के लिए जंगल को निकले हुए थे तो मार्ग में भारी कोलाहल सुनकर उन्होंने कारण जाना तो मालूम हुआ कि धरती की कनिष्ठ सुपुत्री का हरण हुआ है । सीधे वे धरती मां के घर पहुंचे और मदद करने का आश्वासन दिया । दोनों पुत्री के बहाने आखेट खेलने जंगल चले गये । उन्हें जंगल में कोई आखेट प्राप्त नहीं हुआ

तो देखते ढूंढते उस भू-भाग के पूर्वी क्षेत्र में पहुंचे परंतु देवी प्रेरणा से यहां पर भी आखेट नहीं मिला । उसके पश्चात उत्तर की ओर गये लेकिन वहां पर भी निराशा ही हाथ लगी । सर जगह भटकने पर दोनों की भूख बढ़ रही थी । अंतोगत्वा हिम्मत करके वे बिंधवा अरण्य की ओर चले गये और वहां पर उन्हें शिकार मिल भी गया । शिकार करने के पश्चात उन्हें उसे पकाने के लिए चूल्हे की आवश्यकता थी । इसकी व्यवस्था हो जाने पर दोनों ने भरपेट भोजन किया तो प्यास लगी और जल ढूंढने लगे । कुछ समय भटकने के पश्चात पानी तो मिला परंतु यह जल पीने योग्य न था । उसके पश्चात और ढूंढने लगे तो संयोग से उन्हें ऊपरी नाले के छोर पर निर्मल जल मिल गया । जब वहां से वापस आए तो उन्होंने देखा कि उन दो नालों के मध्य वाले भू-भाग पर एक कन्या वृक्ष के नीचे मौन बैठी है । उन्होंने हिम्मत करके उससे बात करने की कोशिश की और कहा कि हे कन्या तुम कौन हो? आपके माता-पिता कौन है । इस पर प्रतिक्रिया देते हुए वह बोली- आप सीधे यहां से चले जाएं । रवि और भानु दोनों हठ कर पुनः पूछने लगे कि बताईए आपके माता-पिता कौन है? तरूणावस्था में दोनों थे ही और फिर उसी बात की पुनरावृत्ति करते हैं । इस पर आवेश में आकर कन्या ने कहा कि मैं विष्णु वराह जी (विष्णु का अवतार) और धरती की पुत्री हूं । यह अनुश्रवण कर दोनों आश्चर्यचकित हुए। दोनों ने कहा लज्जित होकर कहा कि आप तो हमारी गोत्र बहन है और हमने आपको बार-बार परेशान भी किया है । हे बहन ! आप इस दुष्ट राहु के घर पर क्या काम करती है तो वह बोली - नौ कमरों की सफाई और गोबर से लिपाई करती हूं। दूसरा प्रश्न दोनों ने किया कि आप खाने में क्या खाते हैं तो उसने कहा कि पत्थर को पीसकर उसका परांठा खाती हूं । बहन की यह दशा देखकर वे

उसे तत्काल मुक्त करने के बारे में सोचते हैं तो भानु ने अपनी जांघ को चीर लिया और अपनी जांघ के बीच छुपाकर उसे धरती मां के पास ला दिया ।

यहां के समाज में धरती माता का यह गीत भी खास लोकप्रिय है । इसकी कुछ पंक्तियां हैं

धरती माता त्रिये कूड़ी नामे जी ओ ।
ज्येष्ठा जेठा कुड़िये नमु - नारेणा व्यापी जी ओ
तेटी कणा -कुड़िये पंजा पांडूया ब्यापी जी ओ
तेटे कणा- कुड़िये लचा चारूणी गेयी जी ओ
राहु डोमे यो चोरी कारी नेयी जी ओ
सूरजा चंदुरा ये हेड़ेणु डेरा जी ओ

लाहौल क्षेत्र का अब तक कोई लिपिबद्ध इतिहास नहीं मिलता है ,केवल मौखिक ज्ञान पर ही आधारित है । इस क्षेत्र के इतिहास की घटनाओं को यदि जानना हो तो संबंधित लोकगीतों एवं लोक गाथाओं के माध्यम से ही जाना जा सकता है । लाहौल की पट्टन घाटी के झुण्डा निवासी कैता माया राम जी से संबंधित लोक गीत आज भी लोकप्रिय है और इस गीत को सुनकर हर किसी को रोना आ जाता है। माया राम एक आदर्श एवं सम्मानित व्यक्ति थे और गांव का हर कार्य उनकी देख-रेख में ही संपन्न होता था । गांव वासी भी उनका बहुत सम्मान करते थे , लेकिन संबंधित क्षेत्र के राजा और प्रशासन को यह बात खलती रहती थी । कुछ छिद्रा न्वेषी अधिकारियों ने कुल्लू राज दरबार में जाकर राजा प्रीतम सिंह के कान भर दिए ।

राजा प्रीतमाएं कागुता आई ओ
ऐसो कागुता, मैया रामा ताही ओ
एकी न ध्याड़ी, ढोबे द्वाड़े पहुंची और

दूजी ने ध्याड़ी, मुनाड़ी कोठी ओ
त्रिजी न ध्याड़ी, खोगसरा पहुंची ओ
पंजु न ध्याड़ी, सिसुए पहुंची ओ
छेओ न ध्याड़ी, गुन्धुलेरा कोठी ओ
सातू न धयाड़ी, तांदीरा कोठी ओ ।

अर्थात एक समय की बात है कुल्लू राजा का पत्र वाहक लाहौल पहुंचा । यह संदेश मायाराम के लिए था । उस समय लाहौल और कुल्लू के मध्य यातायात का कोई जरिया नहीं था तो वह संदेशवाहक पैदल ही आता है । प्रथम दिन वह ढोबे द्वार पहुंचता है और दूसरे रोज की प्रातः वहां से चलकर मनाली पहुंच गया । तीसरे रोज उसने रोहतांग दर्रे को पार किया । चौथे रोज वह खोगसर देहात पहुंचा । उससे अगले दिन यानी पांचवें दिन वह सीसू पहुंच गया , छठवें दिन गोंधला तथा सातवें दिन तांदी मुख्यालय पहुंच गया । तांदी में कुल्लू प्रशासन की तरफ से कुछ अधिकारी नियुक्त होते थे जो कानून व्यवस्था बनाए रखने और राजस्व एकत्र करने का काम करते थे । पत्र वाहक सभी से मिलकर , इनकी मंजूरी देकर झुंडा देहात पहुंच जाता है । गृहस्वामी माया राम उस समय आराम कर रहे थे । पत्र वाहक ने पत्र माया राम के हाथों में सौंप दिया तो मायाराम ने सर्वप्रथम आदर भाव से पत्र को माथे से लगाकर पढ़ना शुरू किया और तुरंत अश्व पर बैठकर हाकिम पंबूड़ा से सलाह लेने फुड़ा देहात की ओर चल पड़े ।

"कैता माया राम, कागुता बांची ओ
घोड़ी ता चाढ़ेया फूड़ा जोगू आई ओ
हकुमा पंबूड़ा पूछुणी लागी ओ
तौसेरी ध्याड़ी, दो गल्ला होई ओ

माया राम फुड़ा पहुंच गया, घोड़े से उतरे ही नहीं थे की हाकिम आदत के मजबूर थे तो हमेशा की तरह कह दिया कि मायाराम तुमने कौन सा अपराध कर दिया है जिस वजह से राजा नाराज हो गए हैं । अब तुम्हारे विरूद्ध कुल्लू दरवार में मुकदमा चलेगा और वो भी गर्मियों में । आप अभी से तैयारी कर लीजिए । माया राम को इनसे कोई मदद नहीं मिल पाई तो व्याकुल होकर वहां से गोरमा देहात कान्हा हाकिम की शरण में चल पड़े ।

घोड़ी ता चाढेया गोयमा ग्राएं आई ओ

कान्हा हकुमाए कागुता बांची ओ ।

चिन्तातुर मायाराम ने हाकिम कान्हा से सहयोग मांगा ।

कान्हा ने पत्र पढ़ा

तौंसरी ध्याड़ी, पिता- पाणिरे डारे ओ

तौंसरी ध्याड़ी, दो गल्ला होणी ओ

हे मायाराम इस चिट्ठी के मुताबिक तुम पर राज द्रोह का मुकदमा दर्ज हो चुका है और गर्मी के दिनों में जब कुल्लू में पित (बरसात) का खतरा बड़ जाता है ,उन दिनों तुम पर कुल्लू राज दरबार में मुकदमा चलेगा । यह हुक्कमनामा जारी हो चुका है अतः अब मैं आपकी मदद करने में अक्षम हूं । अतः मायाराम यहां से भी असहयोग प्राप्त कर उदास हो कर घर चल पड़े ।

माया राम, घरे जोगू आई ओ

कला दौती ध्याड़ी शंशा-रे जातरे ओ

लोको दुनिया, जातुरू जो आई ओ

अगले दिन शांशा देहात में एक उत्सव था और बहुत से लोग उत्सव में भाग लेने जा रहे थे । दुःखी मन से न चाहते हुए भी अपना दिल बहलाने के लिए माया राम भी उत्सव में शामिल हुए लेकिन कुछ ही देर बाद वापस आ गये । माया राम ने आजीवन

लोगों की सेवा की, उनका अपना एक स्वाभिमानी व्यक्तित्व था । अब उन्हें अहसास हो गया कि अब कुछ नहीं होने वाला है और अपमानित जीवन जीने से अच्छा है मर जाना । ऐसा सोचकर माया राम ने अपना गला घोंट कर जीवन लीला को अदृश्य कर दिया और निष्प्राण हो गये । राज दरबार अब उनका बाल बांका भी नहीं कर सकता था क्योंकि अब वो निष्प्राण हो चुके थे । इस प्रकार माया राम आदर्श के लिए शहीद होकर स्वर्ग को प्राप्त हुए । उनकि बलिदान व्यर्थ नहीं गया । गायकों ने उनके आदर्श मय स्वाभीमानी व्यक्तित्व को सदा के लिए अमर कर दिया । आज भी यहां के रसिक गवैये कैता माया राम की अमर गाथा को जब लय में गाने लगते हैं तो श्रोताओं की आंखों से श्रद्धाश्रु के निर्झर प्रवाहित होने लगते हैं ।

एक अन्य लोकगीत है जिसका संबंध गौशाल नगर प्रमुख राणा धुमा-धुमा से है । कहते हैं कि अकस्मात राणा धुमा-धूमा को गठिया रोग हो गया, उससे इनकी जांघ दुखने लगी और बहुत कष्ट हुआ । नगर के दो युवकों किशुना और रामुचंद्रा वैद को बुलाने के लिए लाहौल भेजे गए और उन्हें कहा गया कि गौंधला ठाकुर के वयस्क वैद्य चिकित्सक नो-नो-जो के घर जाइए और वहां से उन्हें आमंत्रित कीजिए । ऐसे फरमान जारी होने पर दोनों चल पड़े और गौंधला ठाकुर के घर पहुंच गये और वैद को राणा धुमा-धूमा के घर ले आए । घर पहुंचकर उनकी सर्वप्रथम अतिथि के रूप में सेवा की गई और तदोपरांत उनसे राणा की पीड़ा के बारे में बताया गया । राणा ने वैद से विनती की से वैद मेरी नाड़ी देख लीजिए । मैं जांघ की पीड़ा से परेशान हो चुका हूं ।

नाड़ी न हेरी, बेणी ओगुता देती
बेणी ओगु ता, लागी आणा गई

नो-नो ने राणा की नाड़ी जांची और दवाई दी । दवाई खाने के उपरांत दर्द कुछ कम होने लगा ।

वैदाना नो-नो, घरे जोगु त्यारी
किशुना-रामुचंदा सांगे आणा मेयी
आधुना बाते ओ, फेरी कारी आए
सूले गाचछू नो-नो, सांता जूगूती
फिरी कारी आए शिबटिंग ग्रावें

राणा के कुछ स्वस्थ होने के पश्चात वैद नो-नो अब घर वापसी की तैयारी करने लगे । वैद सही सलामत घर पहुंच सके उन्हें छोड़ने के लिए किशुना और रामुचंद्रा सहोदरों को साथ भेजा गया । लेकिन दोनों सहोदर आधे रास्ते से लौट आए और बड़ी विनम्रता से वैद जी से कहा कि हे नो-नो जी ! मार्ग कुछ अवरूद्ध हो रहा है अतः आप धीरे धीरे घर चले जाना । वैद्य को विदा कर दोनों वापसी में शिबटिंग देहात जो मध्य मार्ग में पड़ता था , वहां पहुंच गए क्योंकि शिबटिंग में उनकी बुआ का घर था ।

शिबटिंग ग्रावें ओ, बूबीरे घारे
बूबी न रूपी, बड़ी आदुरा राखी

बुआ का नाम रूपिणी था और उन्होंने अपने भतीजों की खूब सेवा की ।

सारा - सूरेरी, खुला फेरी देती

उसने उन्हें अपनी रीति रिवाज के अनुसार छांग (कच्ची शराब) पिलाई ।

निंबुड़ाना सारूगा, धोंरी ने फेरी
किशुना-रामुचंदा घरे जोगु त्यारे
बूबी न रूपी, ठालुणी लागी

बुआ को मालूम था कि मौसम प्रतिकूल है और उन्हें जान बूझकर अधिक मदिरा पिलाई ताकि ये घर जाने की जिद न करें । लेकिन दोनों ने नशे में बुआ की बात को अस्वीकार कर दिया ।

किशुना - रामचंदा, मानुणे री नाये राती आधू राती, बाता बीगूड़ी गए

दोनों सहोदर अपनी बुआ के घर से घर की तरफ चल पड़े, उन्होंने नशे में घर शीघ्र पहुंचने की रट लगा रखी थी । मार्ग अत्यधिक संकरा था और चलने में उन्हें बाधा उत्पन्न हो रही थी । दुर्भाग्यवश वे रात में कहीं और जगह ही भटक गये और पंचतत्व को प्राप्त कर गये ।उनके असामयिक निधन से पूरे देहात में अंधेरा पसर गया । चंद्रा और भागा के संगम पर इनका अंतिम संस्कार किया गया । इस घटनाक्रम से आहत होकर राणा ने भी सब कुछ त्याग कर आत्म उत्सर्ग कर दिया । राणा से संबंधित यह लोक गीत भी बहुत ही प्रसिद्ध है और इसे अनेक अवसरों पर गाया जाता है।

लाहौल स्पीति जनपद में लोक गीतों का संबंध सभी रसों से है। यहां पर अनेक ऋतुओं का आगमन लोक के हृदय को आंदोलित एवं आह्लादित करता रहता है और इसलिए विभिन्न ऋतुओं से संबद्ध गीतों का सृजन होता रहा है । यहां की धर्म परायण जनता विविध व्रतों और त्योहारों को जीवन का अंग मानती है और अवसरानुकूल लोक गीतों का सृजन होता रहा है । हमारा समाज अनेकों जातियों एवं संप्रदायों में विभाजित है अतः हर जाति विशेष के अपने-अपने लोकगीत विकसित होते रहते हैं। लाहौल स्पीति में जनजातियों के गीतों की अपनी विशिष्ट है। इनमें विश्वास, आस्था, श्रद्धा भाव देखने को मिलते हैं । श्रमगीतों का भी दैनिक जीवन में विशेष महत्व है क्योंकि ये श्रम को सुखद एवं आनंदपूर्ण बनाते हैं ।

किसान गुड़ाई - रोपाई करते वक्त या हल चलाते हुए , चरवाहे ढोर चराते हुए गीत गाकर थकावट दूर करते हैं। पथिक गाते गाते अपनी लंबी राह को नाप जाते हैं । यहां के लोक गीतों में स्थानीयता का पुट देखने को मिलता है । यहां के लोगों का रहन सहन, रीति रिवाज, आचार व्यवहार इनमें प्रतिबिंबित होता है । लोक संस्कृति अपनी प्रचुरता के साथ इन लोक गीतों में प्रतिबिंबित होती है । धार्मिक लोक गीतों का संबंध भाग्यवाद और कर्मवाद से होता है । इनमें देवी- देवताओं, व्रत- त्योहारों, जोगियों तथा चमत्कारी महापुरुषों, सज्जनों का उल्लेख होता है । यहां पर दुर्गा, शिव, राम, बौद्ध धर्म, अनेक गोंपाओं व स्थानीय देवी- देवताओं से संबंधित लोकगीत प्रचलित है । इसके अलावा यहां के लोक गीतों में देशभक्ति, प्रेम प्रसंगों, बाल जीवन, ऐतिहासिक, प्रकृति संबंधी लोकगीत भी बहुत ही लोकप्रिय है । निष्कर्ष में कहें तो लाहौल स्पीति का समाज सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य अत्यंत रोचक है । यहां के लोक गीतों में इस क्षेत्र की संपूर्ण संस्कृति की जानकारी हमें मिलती है । हर कोई इन गीतों को सुनकर मंत्रमुग्ध हो जाता है । इस क्षेत्र पर अनेकों शासकों ने राज किया , लेकिन यह हमारे देश की, प्रदेश की और इस क्षेत्र की वो दिव्य संस्कृति ही है जिसका ये अहित करने में विफल रहे । निश्चय ही यह क्षेत्र प्रदेश में हर दृष्टि में अनूठा है ।

संदर्भ

1. तुलसी रमण, लाहौल (हिमालय का अंतरंग), प्रज्ञान प्रकाशन, दुर्गा कालोनी ढली, प्रकाशन वर्ष ,2016 ।

2. तुलसी रमण, लाहौल स्पीति जीवन और संस्कृति, प्रकाशक, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी शिमला, प्रथम संस्करण, 2011 ।
3. हरनोट, संत राम, यात्रा, मिनर्वा बुक हाउस, प्रथम संस्करण,1994।
4. सांकृत्यायन, राहुल, किन्नर देश में, किताब महल, सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद, 2015 ।
5. सोमसी पत्रिका, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी ।

द्‌वितीय भाषा शिक्षण और प्रौद्‌योगिकी

डॉ. दीपक पाण्डेय

सहायक निदेशक

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

पश्चिमी खंड-7,रामकृष्ण पुरम

नई दिल्ली 110066

ईमेल dkp410@gmail.com

भाषा मानव की सबसे बडी जीवन संगिनी है । वह मानव के साथ किसी न किसी रूप में सदा अपनी भूमिका निभाती चलती है । हवा के बाद भाषा मानव-जीवन के लिए सर्वाधिक उपयोगी मानी जा सकती है । भाषा संप्रेषण का ऐसा माध्यम है किसके माध्यम से लोग अपनी बातें दूसरे तक पहुंचाते है, विचारों का आदान प्रदान करते है तथा आपसी समझ को विकसित करते हैं । चितंन प्रक्रिया से प्रत्यक्षत: संबंधित होने के कारण भाषा, चिंतन के परिणामों और ज्ञानात्मक सक्रियता की उपलब्धियों को एकत्र करती है उन्हें शाब्दिक आधार प्रदान करती है, शब्दों को वाक्यों में पिरोती है, संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदनों को अभिव्यक्ति की गरिमा प्रदान करती है। अर्थात् व्यक्ति का संपूर्ण चिंतन अनुभूति, कारोबार आदि भाषा के माध्यम से ही परिचालित होते हैं । भर्तहरि ने कहा कि-

'इति कर्त्तव्यता लोके सर्वा शब्द व्यपाश्रया'

तथा

न सो स्ति प्रात्ययो लोके य: शब्दानुगमादृते ।

अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते ।।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने भाषा को परिभाषित करते हुए लिखा है- "भाषा उच्चारण अवयव से उच्चरित मूलत: प्राय: यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा किसी भाषा समाज के लोग आपस में विचारों का आदान प्रदान करते हैं ।"

प्रयोग और व्यवहार के आधार पर भाषा के एकाधिक रूप प्रचलित हैं जिनमें बोली, उपबोली, विभाषा, भाषा, मानक भाषा, अमानक भाषा, मातृभाषा, संपर्कभाषा, लक्ष्यभाषा, स्रोतभाषा, राजभाषा, राष्ट्रभाषा, अन्तराष्ट्रीय भाषा, द्वितीय भाषा, कार्यालयीन भाषा, प्रयोजनमूलक भाषा आदि उल्लेखनीय हैं जब भाषा के अध्ययन अध्यापन अर्थात् शैक्षिक प्रयोजन की बात चलती है तब भाषा शिक्षण की दृष्टि से मुख्यत: दो रूप सामने आते हैं -

1. मातृभाषा शिक्षण
2. द्वितीय अथवा अन्य भाषा शिक्षण

भाषा का मुख्य आधार उसका उच्चारित रूप होता है न कि लिखित । अत: भाषा शिक्षण की प्रक्रिया में बोलने से पहले सुनना, पढ़ने से पहले बोलना और लिखने से पहले पढ़ना आता है । यह भाषा व्यवहार का प्राकृतिक नियम है

मातृभाषा अधिगम से तात्पर्य किसी बालक द्वारा परिवेश से सीखी गई स्वाभाविक भाषा से है । मातृभाषा शिक्षण के अंतर्गत निर्देशात्मक, विवरणात्मक और सर्जनात्मक पक्षों को ध्यान में रखा जाता है । निर्देशात्मक पक्ष में भाषा के स्थायीत्व और नियमों का

शिक्षण होता है जिसके द्वारा भाषा के मानक और अमानक प्रयोग के द्वारा भाषा की शुद्धता और अशुद्धता से परिचित कराया जाता है । विवरणात्मक पक्ष के अंतर्गत जहाँ भाषा के प्रयोजनपरक रूपों की ओर ध्यान दिलाया जाता है वहीं सर्जनात्मक पक्ष के अंतर्गत बालक की सर्जनात्मक शक्ति का विकास किया जाता है ।

द्वितीय भाषा के अंतर्गत उन भाषाओं को समाहित किया जाता है जिन्हें बालक सायास सीखता है अर्थात् जहाँ मातृभाषा स्वाभाविक रूप से अर्जित हो जाती हैं वहीं द्वितीय भाषा अभ्यास द्वारा गृहीत की जाती है । भाषाविदों ने द्वितीय भाषा और अन्य भाषा शिक्षण के संदर्भ में भिन्न-भिन्न मान्यताएं निर्धारित की हैं परंतु यहाँ पर द्वितीय भाषा से आशय उस भाषा से है जिसे विशेष प्रयास द्वारा अर्जित किया जाता है । जैसे कोई व्यक्ति जिसकी मातृभाषा हिंदी है वह अंग्रेजी, फ्रेंच, तमिल, तेलुगु आदि भाषाएं सीखता है तो ये भाषाएं उसके लिए द्वितीय भाषा अधिगम के रूप में मानी जाएंगी । द्वितीय भाषा को परिभाषित करते हुए रोड इलिस ने लिखा है- "द्वितीय भाषा अधिगम उस अचेतन और चेतन व्यवस्था को कहते हैं जिसके द्वारा मातृभाषा के अतिरिक्त कोई अन्य भाषा स्वाभाविक रूप से सीखी या सिखाई जाती है ।" आज देश-विदेश में हिंदी भाषा का द्वितीय भाषा के रूप में अध्ययन-अध्यापन बड़े पैमाने पर किया जा रहा है ।

वर्तमान समय सूचना और प्रौद्योगिकी का युग है । संसार का हर क्षेत्र इस सूचना और प्रौद्योगिकी से प्रभावित है । इसी क्रम में शिक्षा क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है । शैक्षिक जगत में सूचना प्रौद्योगिकी ने ज्ञान-विज्ञान की सभी संपदाओं को एक-दूसरे के निकट ला खड़ा किया है । शैक्षिक जगत में मुद्रण की नवीनतम

प्रविधियों, दृश्य-श्रव्य के संचार माध्यमों जैसे रेडियो, टेपरिकार्डर, वीडियो रिकार्डर, ओवर हैड प्रोजेक्टर, टेलीविजन, कंप्यूटर, इंटरनेट आदि संसाधनों की बहुलता ने द्वितीय भाषा शिक्षण को सहज, सरल और सर्वसुलभ बना दिया है । ये सभी संसाधन द्वितीय भाषा शिक्षण के क्षेत्र में अपनी महत्ता प्रतिपादित कर चुके हैं, लेकिन कंप्यूटर ने द्वितीय भाषा शिक्षण में सर्वाधिक क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं । कंप्यूटर अपने से पूर्व विकसित प्रौद्योगिकी संसाधनों के कार्यों को आसानी से पूरा करने के साथ-साथ अध्यापक की भूमिका को भी प्रभावी ढंग से निभा रहा है ।

द्वितीय भाषा शिक्षण में रेडियो जहाँ विद्यार्थी को भाषा के उच्चरित रूपों की जानकारी उपलब्ध कराता है वहीं टेपरिकार्डर उच्चरित रूप को बारंबार सुनने की सुविधा प्रदान करता है और उच्चरित रूप को सीखकर उसका पुन: उच्चारण अभ्यास के माध्यम से मूल उच्चारण से साम्यता को परखने की सुविधा प्रदान करता है। वीडियो रिकार्डर के माध्यम से भाषा के उच्चारण, भाषायी-स्वरूप एवं उसके सांस्कृतिक पक्ष को उसके दृश्य एवं श्रव्य रूप के माध्यम से द्वितीय भाषा के शिक्षार्थी को नवीनतम जानकारी उपलब्ध कराई जाती है। इस संसाधन से आगे भाषा-प्रयोगशाला द्वितीय भाषा के विद्यार्थियों के भाषायी कौशल को विकसित करने और उसे समृद्ध बनाने में अत्यधिक उपयोगी है । यहाँ विद्यार्थी को सरलतम ढंग से भाषायी अवयवों के अभ्यास और मूल्यांकन की सुविधाएँ मिलती हैं जिससे वह स्वाध्याय द्वारा अपनी गलतियों का परिष्कार करके द्वितीय भाषा के मानक स्वरूप का प्रयोग करने में सक्षम हो सकता है । कंप्यूटर ने तो द्वितीय भाषा शिक्षण में क्रांतिकारी संसाधन के रूप में पहचान बना ली है । कंप्यूटर की क्षमताएँ सर्वव्यापक हैं । यह पाठ्यपुस्तक, टेपरिकार्डर, वीडियो रिकार्डर, भाषा प्रयोगशाला,

श्यामपट्ट किसी भी रूप में कार्य कर सकता है । इसकी आंकडों (शब्द, चित्र, फिल्म आदि) को धारण करने, पुन: प्रदर्शित करने व तेजी से उनका प्रयोग करने की क्षमताएं अपरंपार हैं । कंप्यूटर में द्वितीय भाषा शिक्षण से संबंधित पाठ्य सामग्री, सहायक सामग्री, कोश आदि को संकलित एवं संग्रहित करना तथा उन सबका आवश्यकतानुसार उपयोग सहज एवं सुलभ हो गया है । सूचना प्रौद्योगिकी के नवीनतम संसाधन इंटरनेट ने तो पूरी दुनिया को एक छत के नीचे ला दिया है । इंटरनेट के माध्यम से द्वितीय भाषा शिक्षण को अत्यंत सरल एवं सहज रूप से आत्मसात करने का जरिया बना दिया है । द्वितीय भाषा से संबंधित विषयों पर यू-ट्यूब जैसे कार्यक्रम तैयार कर भाषायी जटिलताओं को दूर करना एक सरलतम तकनीक का ही नमूना है जिसने भाषागत कठिनाइयों को सुलझाना आसान बना दिया है । इंटरनेट के माध्यम से कोई विद्यार्थी किसी भी जगह रहकर भाषा विशेषज्ञों से संपर्क स्थापित कर भाषायी कठिनाईयों का निराकरण कर सकता है।इंटरनेट पर उपलब्ध भाषायी संसाधनों की सहायता से वह भाषायी कौशल को प्राप्त करने के लक्ष्य को आसानी से प्राप्त कर सकता है ।

वर्तमान में अनेक भाषायी संस्थान द्वितीय भाषा शिक्षण से संबंधित कार्यक्रम वेबसाइट के माध्यम से सबके सामने आसानी से सुलभ हैं । जिससे पाठ्य-सामग्री की उपलब्धता और सुविधानुसार उसका लाभ उठाकर भाषा शिक्षार्थी अपने लक्ष्य को साध सकता है । हिंदी के संदर्भ में द्वितीय भाषा शिक्षण की ऑनलाइन भूमिका में केंद्रीय हिंदी निदेशालय, वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग, केंद्रीय हिंदी संस्थान, केंद्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, भारतीय भाषा संस्थान मैसूर, सी-डेक, टी डी आई एल, गूगल,माइक्रोसाफ्ट आदि महत्वपूर्ण

प्रतिनिधित्व के लिए तैयार हैं । इनके साथ-साथ व्यक्तिगत एवं संस्थागत स्तरों पर द्‌वितीय भाषा शिक्षण की दिशा में सार्थक प्रयास किए जा रहे हैं। इन सभी संसाधनों के प्रयोग से द्‌वितीय भाषा शिक्षण में सर्वव्यापकता, सर्वसुलभता आती जा रही है । इस प्रकार द्‌वितीय भाषा शिक्षण में प्रौद्‌योगिकी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है ।

महात्मा गांधी का राष्ट्रभाषा-दर्शन

प्रो. हरीशकुमार शर्मा
प्रोफेसर- हिंदी विभाग,
राजीव गांधी विश्वविद्यालय,
रोनो हिल्स, दोइमुख, ईटानगर,
अरुणाचल प्रदेश, पिन- 791112,
ई-मेल hksgpn@gmail.com
मोबाइल: 9436053279

महात्मा गांधी का हिंदी-प्रेम सर्वविदित ही है। उनका यह हिंदी-प्रेम वस्तुतः भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में था। वे हिंदी के ऐसे प्रबल पक्षधर थे कि उन्होंने स्वराज और हिंदी को एक करके देखा था। हिंदी के बिना वह भारत की एक आजाद राष्ट्र के रूप में कल्पना अधूरी मानते थे। उन्होंने हिंदी के प्रश्न को स्वराज्य का प्रश्न बना लिया था और यहां तक कहा था कि हिंदी के बिना स्वराज निरर्थक है।

स्वराज और स्वालंबन, राष्ट्रीय जीवन से जुड़े राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के ये दो महत्त्वपूर्ण सूत्र थे जिनको लेकर वे आजादी की लड़ाई में सक्रिय थे। स्वराज और स्वालंबन की उनकी इस महत्त्वाकांक्षा में स्वदेशी और स्वभाषा की बड़ी भूमिका थी। स्वराज को मात्र हासिल कर लेना भर नहीं, स्वदेशी पद्धति से राष्ट्र को

सशक्त और आत्मनिर्भर बनाना भी उनके अभियान का हिस्सा था। अंग्रेज भारत पर राज कर रहे थे। उनके राज से मुक्ति पाकर स्वराज तभी भारत में अपने वास्तविक रूप में प्रतिफलित हो सकता था, जबकि वह स्वदेशी पद्धति एवं तकनीक को अपनाकर आता और इस स्वदेशी मॉडल का स्वराज पाने की ख्वाहिश बिना स्वभाषाओं को अपनाए और महत्त्व दिए नहीं पूरी हो सकती थी। गांधी जी इस बात को अच्छी तरह से समझते थे, इसलिये वे इस पर इतना जोर देते थे। भले कुछ लोगों के लिए उस समय भी भाषा का प्रश्न उतना महत्त्वपूर्ण नहीं रहा हो और आज तो बहुत लोगों के लिये यह और भी अप्रासंगिक हो गया है, पर गांधी जी के लिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण था, इसे उन्होंने बार-बार समझाने की कोशिश भी की थी।

भारत के राजनेताओं में गांधी जी ने वास्तविक स्वराज को भारत में लाने में भारतीय भाषाओं एवं राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के महत्त्व को जितनी संजीदगी के साथ महसूस किया था और इसका प्रबल समर्थन किया था उतना किसी दूसरे ने नहीं किया। हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित कराने को तो जैसे उन्होंने अपने जीवन का मिशन बना लिया था और तदनुरूप विराट अभियान चलाया था। इसलिए उन्हें जहां कहीं भी मौका मिला, उन्होंने राष्ट्रभाषा हिंदी के पक्ष में पुरजोर तरीके से अपनी बात रखी। आजादी की लड़ाई में उतरने के साथ-ही-साथ उन्होंने इस बात को अच्छी तरह से समझ लिया था कि इस लड़ाई को जीतने तथा बाद में इसके वांछित परिणाम पाने के लिए भारतीय भाषाओं को प्रतिष्ठा दिलाना कितना आवश्यक है और भारत को एकसूत्र में बांधने, उसकी एकजुटता, अखंडता तथा स्वाभिमान को बनाए और बचाए रखने तथा

उसकी सर्वांगीण उन्नति का पथ प्रशस्त करने के लिए एक राष्ट्रभाषा का होना कितना आवश्यक है।

वे इस बात को लेकर भी निरन्तर सजग थे कि भारत की आजादी उसमें निवास करने वाले किस वर्ग के लिए आवश्यक है। यह वर्ग था भारत की उस बहुसंख्यक सामान्य जनता का जो अभावग्रस्त, शोषित, पीड़ित, दलित और निरक्षर थी। साधन-संपन्न उच्च वर्ग को तो अंग्रेजी राज से भी कोई विशेष परेशानी न थी, वह तो और मजे में ही था। इसलिए उसमें से एक बड़ा तबका तो अंग्रेजी राज का समर्थक ही था। गांधी जी ने देश भर में घूम-घूम कर दरिद्रनारायण से सीधे साक्षात्कार किया था और भारत के उस सामान्य जन के दुख-दर्द का अनुभव किया था; जो उनकी एक आवाज पर भीड़ बनकर लाठी-डण्डा, गोली खाने के लिए बाहर निकल पड़ता था। उन्होंने उसकी उन अपेक्षा-आकांक्षाओं को भी भली-भांति महसूस किया था जो उसने आजादी, आजाद भारत और उसके नेतृत्वकर्ता महात्मा गांधी से लगा रखी थीं। असली आजादी की जरूरत इसी भूखे-नंगे, दरिद्र, अशिक्षित और निरक्षर वर्ग को थी, जो अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा बनाये रहकर पूरी नहीं हो सकती थी, न हुई। इसलिए उन्होंने स्पष्ट तौर पर यह कहा था कि- ''अगर स्वराज अंग्रेजी बोलने वाले भारतीयों का और उन्हीं के लिए होने वाला है तो बेशक अंग्रेजी ही राष्ट्रभाषा होगी। लेकिन अगर स्वराज करोड़ों भूखों मरने वालों, करोड़ों निरक्षर भाई-बहिनों और दलितों व अन्त्यजों का हो और इन सबके लिये होने वाला हो, तो हिंदी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।''1

महात्मा गांधी हिंदी की जिस रूप में या जिस कारण से इतनी प्रतिष्ठा चाहते थे, वह इसलिए कि हिंदी वे किसी एक प्रान्त या अनेक प्रान्तों की भाषा के रूप में न देखकर सम्पूर्ण देश की

भाषा के रूप में देख रहे थे। वे चाहते थे कि एक संपूर्ण और सम्प्रभु राष्ट्र के रूप में आजाद भारत की एक अपनी राष्ट्रभाषा हो, जो उसके निवासियों के भीतर गौरव और स्वाभिमान का भाव भर सके। देश में प्रचलित भिन्न-भिन्न भाषा और संस्कृतियों में समन्वय स्थापित कर सके। एक क्षेत्र के नागरिक का दूसरे सुदूरवर्ती क्षेत्र के नागरिक से सम्पर्क जोड़ सके और देशवासियों में पारस्परिक संबंधो का स्नेह-सूत्र बन सके। देश की स्मृति, संस्कृति, इतिहास और गौरव को अक्षुण्ण रख सके। उन्हें राष्ट्र की चिन्ता थी। राष्ट्रीय एकता और अखण्डता की चिंता थी। देश की जनता हीनत्व भाव से उबरे और उसमें स्वाभिमान का भाव भरे, इसकी चिन्ता थी। देश अपनी भाषा में बोले और अपने तरीके से अपना विकास करे, इसकी चिंता थी। इसके लिये वे बहुभाषी देश भारत की एक राष्ट्रभाषा का होना आवश्यक मानते थे और इस हेतु उन्होंने हिंदी को उपयुक्त पाया था। इस कारण उन्हें हिंदी की चिन्ता थी। राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को उपयुक्त पाने की वजह उसकी भाषिक श्रेष्ठता या एकाधिक प्रांतो की भाषा होना ही नहीं था, अपितु देश के हर कोने में शताब्दियों से चला आ रहा उसका थोड़ा या बहुत प्रचलन इसका कारण था।

गांधी जी का हिंदी-प्रेम निस्वार्थ था, राष्ट्रहित में था। राष्ट्रभाषा-सम्बन्धी उनकी चिन्ता देश की बहुसंख्यक आबादी के लिए थी। इसलिए वे देश को देशभाषाओं के माध्यम से शिक्षित करने और स्वदेशी मॉडल पर आधारित देश का विकास करने के पक्ष में थे। उन्होंने हिंदी के भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने का स्वप्न देखा था और वे इसे हकीकत में बदलते देखना चाहते थे। पर, दुर्भाग्य से वे इसे हकीकत में बदलवाने के लिये जीवित नहीं रह पाए। यदि आजाद भारत में जिंदगी के कुछ वर्ष

उन्हें मिले होते तो शायद आज के भारत की तस्वीर कुछ और होती और राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का विकास भी कुछ और ही रूप में हुआ होता, क्योंकि उनके लिए इस बहाने का कोई मतलब नहीं था कि भारतीय भाषायें सक्षम नहीं हैं। वस्तुतः यह भी उन्हीं अंग्रेजों और अंग्रेजी मानसिकता वाले लोगों की एक सुनियोजित चाल थी। यह वर्ग तो यह भी नहीं मानता था कि भारत के लोग भारत का शासन संभालने के काबिल हैं। फिर भी आखिर भारत के लोगों ने भारत का शासन चलाकर दिखाया ही! महात्मा गांधी इस सोच का खंडन करते थे और ऐसी हीनत्व-वृत्ति की बातें करने वालों को विभिन्न मंचों से उन्होंने लताड़ा था। 29 मार्च सन् 1918 को इन्दौर के टाउनहाल में हुए हिंदी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन में सभापति के रूप में बोलते हुए उन्होंने कहा था कि "हम पर और हमारी प्रजा के ऊपर एक बड़ा आक्षेप यह है कि हमारी भाषा में तेज नहीं है। जिनमें विज्ञान नहीं है, उनमें तेज नहीं है। जब हममें तेज आयेगा, तभी हमारी प्रजा में और भाषा में तेज आएगा। विदेशी भाषा द्वारा आप जो स्वातंत्रय चाहते हैं, वह नहीं मिल सकता, क्योंकि उसमें हम योग्य नहीं हैं।"

इससे पहले सन् 1916 में ही बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उद्घाटन समारोह में दिए गए अपने व्याख्यान द्वारा वे हलचल मचा चुके थे। यहां उन्होंने अंग्रेजी में चलने वाली कार्यवाही की तीखी आलोचना की थी। इसी अवसर पर अंग्रेजी मानसिकता वालों की काफी लानत-मलानत करते हुए उन्होंने कहा था- "हमारी भाषा पर हमारा ही प्रतिबन्ध है और इसलिए यदि आप मुझसे कहें कि हमारी भाषाओं में उत्तम विचार अभिव्यक्त किये ही नहीं जा सकते तब तो हमारा संसार से उठ जाना ही अच्छा है। क्या कोई व्यक्ति स्वप्न में भी यह सोच सकता है कि अंग्रेजी भविष्य में किसी भी दिन भारत

की राष्ट्रभाषा हो सकती है।''2 सन् 1928 में गुजरात में दिए गए अपने एक भाषण में भी बापू ने कहा- ''हम उस (अंग्रेजी) भाषा का कामचलाऊ ज्ञान प्रदान कर सकते हैं। लेकिन हम मातृभाषा की उपेक्षा नहीं कर सकते। वह तो राष्ट्रीय आत्महत्या होगी...हमें उसे समृद्ध करना ही होगा और इस योग्य बनाना होगा कि वह सभी प्रकार के विचारों तथा भावों को अभिव्यक्त कर सके।''

हिंदी न उनकी मातृभाषा थी, न प्रांतीय भाषा और न वे प्रारंभ से ही उसमें पारंगत थे; बल्कि विशेष पारंगत तो वे उस अंग्रेजी में थे जिसमें उन्होंने विदेश जाकर अपनी वैरिस्टर की डिग्री हासिल की थी और जिसके बूते अफ्रीका में बरसों तक वकालत की थी। फिर भी आजादी के बाद बी.बी.सी. के संवाददाता को उन्होंने अंग्रेजी में सन्देश देने से मना कर दिया और अधिक आग्रह करने पर यहां तक कह दिया कि 'दुनिया से कह दो कि गांधी अंग्रेजी नहीं जानता।' किन अरमानों और भावी राष्ट्र की किस कल्पना को लेकर उन्होंने यह बात कही होगी, इसे समझना किसी के भी लिये कोई बहुत कठिन काम नहीं है। पर, आजादी के बाद क्या हुआ? उसी अंग्रेजी के मोहजाल में हम फंसते गए। आज भारत में यह स्थिति है कि प्रबुद्ध वर्ग की किसी सभा-सोसाइटी में हिंदी की ही नहीं, हिंदी में बात तक करते डर लगता है। जरा आपने उसके पक्ष में बात करनी शुरू की कि लोगों की बेचैनी बढ़नी शुरू हुई। हिंदी की बात करने मात्र से ऐसे लोगों को लगने लगता है कि 'उनकी' अंग्रेजी का विरोध हो रहा है। जबकि स्थिति ऐसी बिल्कुल नहीं है। यह भी लागों को भ्रमित करने के लिए जान-बुझकर किया जाता है और ऐसे अभिप्राय निर्मित कर सुनियोजित ढंग से इसका मिथ्या प्रचार किया जाता है।

वास्तविकता तो यह है कि हिंदी के पक्ष में खड़े होने का मतलब न तो अंग्रेजी का विरोध है और न किसी अन्य विदेशी भाषा का तथा किसी भारतीय भाषा के विरोध की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। अंग्रेजी का विरोध वहीं तक है जहां तक वह भारतीय भाषाओं का हक छीनकर राष्ट्रभाषा या राजभाषा के रूप में भारतीयों की अनिवार्यता बना दी जाती है, उन पर बोझ की तरह लाद दी जाती है। ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति तथा अंतरराष्ट्रीय संबंधो के लिए उसकी उपयोगिता पर कभी किसी ने प्रश्नचिह्न नहीं लगाया। महात्मा गांधी भी उसकी इस रूप में उपयोगिता को स्वीकार करते थे। सन् 1918 के इंदौर अधिवेशन में ही उन्होंने कहा था कि ''कहना आवश्यक नहीं कि मैं अंग्रेजी भाषा से द्वेष नहीं करता हूं। अंग्रेजी साहित्य-भण्डार से मैंने भी बहुत रत्नों का उपयोग किया है। अंग्रेजी भाषा की मार्फत हमें विज्ञान आदि का खूब ज्ञान लेना है। अंग्रेजी का ज्ञान भारतवासियों के लिए बहुत आवश्यक है। लेकिन इस भाषा को उसका उचित स्थान देना एक बात है, उसकी जड़ पूजा करना दूसरी बात है।''

जो लोग भाषा के प्रश्न को महत्त्वपूर्ण नहीं मानते, वे कहते हैं कि क्या फर्क पड़ता है? हिंदी न सही, अंग्रेजी सही! बहुभाषी देश भारत में पारस्परिक संवाद कायम करने एवं राजकाज चलाने को एक भाषा ही तो चाहिए। फिर वह चाहे हिंदी हो या अंग्रेजी! लेकिन फर्क पड़ता है और यह फर्क पड़ता है इसलिये, कि अंग्रेजी भारत की आमफहम भाषा नहीं है, बहुत थोड़े से लोगों की भाषा है। इस कारण यह देश के एक छोटे से प्रबुद्ध वर्ग की संपर्क-भाषा भले ही बन जाए, देश की बहुसंख्यक जनता की भाषा नहीं बन सकती। पंजाब का निवासी बंगाल में गंगासागर जाता है या उत्तर प्रदेश का नागरिक दक्षिण में रामेश्वरम जाता है या फिर दक्षिण के आमजन तीर्थयात्रा

हेतु बनारस, प्रयाग आदि जगहों पर जाते हैं तो कौन सी भाषा उनके काम आती है? क्या वह भाषा अंग्रेजी होती है? निसंदेह वह भाषा हिंदी ही है, भले उसका रूप-स्वरूप कैसा भी हो। यह जन-से-जन को जोड़ने वाली भाषा ही नहीं; मन-से-मन को जोड़ने वाली भाषा है। अंग्रेजी हाथ-से-हाथ मिलवाने भर के काम आ सकती है, जबकि हिंदी दिल-से-दिल मिलाने के काम आने वाली भाषा है, जैसा कि प्रकाश मनु के साथ साक्षात्कार में जर्मनवासी हिंदी के प्रसिद्ध विद्वान डा. लोठार लुत्से कहते हैं- '..अंग्रेजी दिमाग की जुबान है, हिंदी दिल की..एक्शन की।'3 महात्मा गांधी भी ऐसा ही मानते थे। सन् 1917 में कांग्रेस के कलकत्ता (कोलकाता) अधिवेशन में उन्होंने कहा था- '...मैं ऐसा कोई कारण नहीं समझता कि हम अपने देशवासियों के साथ अपनी भाषा में बात न करें। वास्तव में अपने लोगों के दिलों तक तो हम अपनी भाषा के द्वारा ही पहुंच सकते हैं।'

गांधी जी ने जिस प्रश्न को आज से पूरे सौ साल पहले परतन्त्र भारत में उठाया था आज भी वह प्रश्न जस-का-तस विचारणीय है, अपितु वह पहले से और भी अधिक मौजूं हो गया है। सन् 1916 के काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाले अपने व्याख्यान में ही उन्होंने कहा था- "किंतु मान लीजिए हमने पिछले पचास वर्षों में अपनी-अपनी भाषाओं में शिक्षा पायी होती; तो आज हम किस स्थिति में होते? तो आज भारत स्वतंत्र होता; तब हमारे पढ़े-लिखे लोग अपने ही देश में विदेशियों की तरह अजनबी न होते बल्कि देश के हृदय को छूने वाली वाणी बोलते; वे गरीब-से-गरीब लोगों के बीच काम करते और पचास वर्षों की उनकी उपलब्धि पूरे देश की विरासत होती।"

राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगीत की भांति ही गांधी जी के लिए राष्ट्रभाषा भी राष्ट्रीय भाव की प्रतीक थी और राष्ट्रीयता के निर्माण

का साधन भी। और वे यह खूब अच्छी तरह से महसूस करते थे कि सम्पूर्ण राष्ट्र के निवासियों में एकात्मभाव भरने का जो काम हिंदी कर सकती है वह काम अंग्रेजी या अन्य कोई विदेशी भाषा नहीं कर सकती। वे यह भी अच्छी तरह जानते थे कि गुलामी से भी बढ़कर होता है गुलामी का भाव। जब तक भारतीयों के भीतर से यह गुलामी का भाव नही निकलेगा, तब तक वे पूरी तरह आत्मनिर्भर और स्वाभिमानी नहीं हो सकते। वे भारत के लिए अंग्रेजी को जहर मिला दूध और हिंदी को शुद्ध दूध बताते थे। जहर मिला दूध यानि भारतीय भाषाओं को नष्ट करने वाली भाषा तथा शुद्ध दूध यानि उन्हें पुष्ट करने वाली भाषा। 1918 के इंदौर अधिवेशन में उन्होंने कहा था- ''पहली माता से हमें जो दूध मिल रहा है, उसमें जहर और पानी मिला हुआ है, और दूसरी माता से शुद्ध दूध मिल सकता है। बिना इस शुद्ध दूध के मिले हमारी उन्नति होना असंभव है। पर जो अन्धा है, वह देख नहीं सकता। गुलाम यह नहीं जानता कि अपनी बेड़ियाँ किस तरह तोड़े। पचास वर्षों से हम अंग्रेजी के मोह में फंसे हैं। हमारी प्रज्ञा अज्ञान में डूब रही है।..''

इसलिए उन्होंने बार-बार और बड़े दृढ़ शब्दों में अंग्रेजी को हटाकर उसके स्थान पर हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने की बात कही। हिंदी साहित्य सम्मेलन के 20 अप्रैल सन् 1935 को इंदौर में हुए 24वें अधिवेशन में उन्होंने कहा था कि ''भाषा पर इतना जोर इसलिए देता हूं कि राष्ट्रीय एकता प्राप्त करने का यह एक बड़ा जबरदस्त साधन है और जितना दृढ़ इसका आधार होगा, उतनी ही प्रशस्त हमारी एकता होगी।'' इसके लिए उन्होंने जो भाषा उपयुक्त पाई, वह भाषा हिंदी ही थी। उन्होंने इसी अवसर पर कहा ''हिन्दुस्तान को अगर सचमुच एक राष्ट्र बनाना है, तो चाहे कोई माने या न माने- राष्ट्रभाषा तो हिंदी ही बन सकती है, क्योंकि जो

स्थान हिंदी को प्राप्त है, वह किसी दूसरी भाषा को नहीं मिल सकता।'' सन् 1918 के इंदौर अधिवेशन में तो उन्होंने यहां तक कह दिया था कि ''हमें ऐसा उद्योग करना चाहिए कि एक वर्ष में राजकीय सभाओं में, कांग्रेस में, प्रान्तीय भाषाओं में, अन्य सभा-समाज और सम्मेलनों में अंग्रेजी का एक भी शब्द सुनाई न पड़े। हम अंग्रेजी का व्यवहार बिल्कुल त्याग दें। अंग्रेजी सर्वव्यापक भाषा है, पर यदि अंग्रेज सर्वव्यापक न रहेंगे तो अंग्रेजी भी सर्वव्यापक न रहेगी। हमें अब अपनी मातृभाषा की और उपेक्षा करके उसकी हत्या नहीं करनी चाहिए। जैसे अंग्रेज अपनी मादरी जबान अंग्रेजी में ही बोलते और सर्वथा उसे ही व्यवहार में लाते हैं, वैसे ही मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनने का गौरव प्रदान करें। हिंदी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।''

महात्मा गांधी की भाषा-संबंधी एक स्पष्ट नीति थी और उस नीति में हिंदी, अंग्रेजी सहित सभी भारतीय भाषाओं की अपनी-अपनी जगह विशेष भूमिका थी। उनका मानना था कि ''प्रत्येक प्रान्त में उस प्रान्त की भाषा, सारे देश के पारस्परिक व्यवहार के लिये हिंदी और अंतरराष्ट्रीय उपयोग के लिए अंग्रेजी का व्यवहार हो।''4 राष्ट्रभाषा हिदी के साथ-साथ भारत की अन्य राष्ट्रीय भाषाओं को लेकर भी उनकी सोच एकदम साफ थी। राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के प्रतिष्ठित हो जाने का अभिप्राय भारत की अन्यान्य प्रान्तीय भाषाओं का महत्त्व कमतर हो जाना कतई नहीं था। उनकी दृष्टि में अपने-अपने प्रान्तों में उनका वही महत्त्व और स्थान था जो राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी का था। एक अवसर पर उन्होंने कहा था कि ''महान प्रांतीय भाषाओं को उनके स्थान से च्युत करने की कोई बात ही नहीं है क्योंकि राष्ट्रीय भाषा की इमारत प्रांतीय भाषाओं की नींव

पर ही खड़ी की जानी है। दोनों का लक्ष्य एक-दूसरे की जगह लेना नहीं, बल्कि एक-दूसरे की कमी पूरा करना है।''

उनके स्वराज में अंग्रेजी को भी स्थान था; पर उसकी उपयोगिता के मद्देनजर ही। आज के युग में वैश्विक सन्दर्भों में अंग्रेजी के महत्त्व के प्रति कोई एकदम से आँख नहीं मूंद सकता है। गांधी जी भी अंग्रेजी की इस उपयोगिता को खूब समझते थे और इस कारण से राष्ट्रीय जीवन में वे उसके महत्त्व को एकदम नकारते नहीं थे, पर वे उसको राष्ट्रभाषा बनाकर राष्ट्रवासियों के सिर पर अनिवार्यतः थोपे जाने के खिलाफ थे। 2 फरवरी के 'यंग इंडिया' में उन्होंने लिखा- ''अंग्रेजी अंतरराष्ट्रीय व्यापार की भाषा है, वह संबंधों की, कूटनीति की भाषा है, उसके साहित्य का भण्डार बड़ा ही सम्पन्न है। इसके द्वारा हमें पश्चिमी विचारों और सभ्यता की जानकारी प्राप्त होती है। इसलिए हममें से थोड़े से लोगों के लिये अंग्रेजी का ज्ञान जरूरी है। ये लोग राष्ट्रीय व्यापार और अंतरराष्ट्रीय संबंधों को चला सकते हैं और देश को पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान और साहित्य एवं विचारों की श्रेष्ठतम उपलब्धियों का ज्ञान करा सकते हैं। यही अंग्रेजी का उचित उपयोग होगा। मगर आज तो उसने हमारे मन-मन्दिर में सबसे ऊंचा स्थान बना रखा है और मातृभाषा को उसके स्थान से च्युत कर दिया है।''

इस तरह भारत में अंग्रेजी के चलन को लेकर गांधी जी के मन में दो-तीन बातें एकदम साफ थीं। पहली तो यही कि अंग्रेजी की जगह हिंदी देश की राष्ट्रभाषा बने। दूसरी यह कि कुछ सक्षम लोग अंग्रेजी ही नहीं पढें, दुनिया की और भी महत्त्वपूर्ण भाषाएँ पढ़ें और उनमें उपलब्ध ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त कर अपनी भाषाओं के माध्यम से देश में उसका प्रचार-प्रसार कर देश को उससे लाभान्वित करें। अंग्रेजी की शिक्षा के हिमायती वे विद्यालय स्तर पर नहीं, उच्च

शिक्षा के स्तर पर थे। वे यह नहीं चाहते थे कि लोग अंग्रेजी पढ़कर अपनी भाषाओं को भूल जाएँ या उनके प्रति हीन भाव रखें। उनका कहना था- "युवक-युवतियां अंग्रेजी और दुनिया की सारी भाषाएँ खूब पढ़ें, लेकिन उनसे मैं आशा करूँगा कि वे अपने ज्ञान का प्रसार भारत को और सारे संसार को उसी तरह प्रदान करेंगे, जैसे बोस, राय और स्वयं रविंद्रनाथ ने प्रदान किया है। मगर मैं हरगिज यह नहीं चाहूंगा कि कोई भी हिंदुस्तानी अपनी मातृभाषा को भूल जाए या उसकी उपेक्षा करे या उसे देखकर शरमाएँ अथवा यह महसूस करे कि अपनी मातृभाषा के जरिए वह ऊंचे-से-ऊंचा चिंतन नहीं कर सकता।"5

इस तरह से हम देख सकते हैं कि महात्मा गांधी हिंदी के सच्चे हितैषी थे। वे वस्तुतः भारत, भारतीयता और भारतीय जन के हितैषी थे। इन तीनों के हित के लिए आवश्यक था कि भारत की अपनी भाषाओं को प्रतिष्ठा मिले जिनमें भारत सोचे, भारतीयता अपनी पहचान बनाए और भारतीय जन शासन-प्रशासन में अपनी भागीदारी महसूस करे। समग्र भारत में एकात्मता लाने के लिए तथा सभी भारतीय भाषाओं में समन्वय स्थापित करने के लिए एक भारतीय भाषा को राष्ट्र द्वारा राष्ट्रभाषा के रूप में अंगीकार किया जाना परम आवश्यक था। इस हेतु भारत के नेताओं ने हिंदी को सर्वाधिक उपयुक्त पाकर उसे इस कार्य हेतु चुना था। महात्मा गांधी ने इस जरूरत को काफी शिद्दत से महसूस किया था और इसीलिए उन्होंने उसके पक्ष में जोरदार आवाज उठाई थी। इसलिए उनका हिंदी-हित वस्तुतः राष्ट्रभाषा के रूप में राष्ट्रहित से ही जुड़ा था।

सन्दर्भ

1. नवजीवन, 21 जून, 1931।

2. राजभाषा प्रगति और प्रयाण; सम्पादक इकबाल अहमद, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली; सन् 2000; पृ 177।

3. आजकल; मई, 2015; पृ. 18।

4. सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड 60, पृ. 491।

5. राजभाषा प्रगति और प्रयाण; पृ. 54-55।

मोक्षदायिनी नर्मदा

प्रो. खेमसिंह डहेरिया
कुलपति
अटल बिहारी वाजपेयी
हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

साहित्य में नर्मदा नदी के पूर्वी या पहाड़ी भाग को रेवा (शाब्दिक अर्थ-उछलने-कूदने वाली) और पश्चिमी या मैदानी भाग को नर्मदा (शाब्दिक अर्थ-नर्म या सुख देने वाली) कहा गया है। नर्मदा के तटवर्ती प्रदेश को भी कभी-कभी नर्मदा नाम से ही निर्दिष्ट किया जाता है। नर्मदा की चर्चा महाभारत एवं कतिपय पुराणों में हुई है। मत्स्य पुराण, पद्म पुराण, कूर्म पुराण ने नर्मदा की महत्ता एवं उसके तीर्थों का वर्णन किया है। मत्स्य पुराण एवं पद्म पुराण में उल्लेख है कि अमरकण्टक जहां से नर्मदा निकलती है, वहां से उस स्थान जहां नर्मदा सागर में मिलती है, 10 करोड़ तीर्थ हैं। अग्नि पुराण एवं कूर्म पुराण के मत से क्रमशः 60 करोड़ एवं 60 सहस्र तीर्थ हैं। नारदीय पुराण के अनुसार नर्मदा के दोनों तटों पर 400 मुख्य तीर्थ हैं, किंतु अमरकण्टक से लेकर साढ़े तीन करोड़ हैं। यह पश्चिम की ओर बहती है और तीनों लोकों के सभी तीर्थ यहाँ (नर्मदा में) स्नान करने को आते हैं। नर्मदा केवल दर्शन-मात्र से पापी को पवित्र कर देती है। सरस्वती (तीन दिनों में) तीन स्नानों

से, यमुना सात दिनों के स्नानों से और गंगा केवल एक स्नान से। नर्मदा को रूद्र के शरीर से निकली हुई कहा गया है, जो इस बात का कवित्वमय प्रकटीकरण मात्र है कि यह अमरकण्टक से निकली है। जो महेश्वर एवं उनकी पत्नी का निवास-स्थल कहा जाता है। नर्मदा में मिलने वाली कतिपय नदियाँ हैं-कपिला नदी, विशल्या, एरण्डी नदी, इक्षु-नदी, कावेरी नदी।

नर्मदा भारत के मध्यभाग में पूरब से पश्चिम की ओर बहने वाली मध्यप्रदेश से गुजरात राज्य में बहने वाली एक प्रमुख नदी है, जो गंगा के समान पूजनीय है। नर्मदा सर्वत्र पुण्यमयी नदी बताई गई है तथा इसके उद्भव से लेकर संगम तक दस करोड़ तीर्थ है।

पुण्या कनखले गंगा कुरुक्षेत्रे सरस्वती।
ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा।।
नर्मदा संगम यावद् यावच्चामरकण्टकम्।
तत्रान्तरे महाराज तीर्थ कोटयो दश स्थिताः।।

महाकाल पर्वत के अमरकण्टक शिखर से नर्मदा की उत्पत्ति हुई है। इसका उद्गम विंध्याचल की मैकाल पहाड़ी शृंखला में अमरकंटक नामक स्थान में है। मैकाल से निकलने के कारण नर्मदा को मैकाल कन्या भी कहते हैं। स्कंद पुराण में इस नदी का वर्णन रेवा खंड के अंतर्गत किया गया है। अमरकंटक की पहाड़ियों से निकलकर छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात से होकर नर्मदा करीब 1312 कि.मी. का प्रवाह पथ तय कर भरौंच के आगे खंभात की खाड़ी में मिल जाती है। इस नदी के किनारे बसा शहर जबलपुर उल्लेखनीय है। इस नदी के मुहाने पर डेल्टा नहीं है। नर्मदा भारत की सात प्रमुख नदियों में से एक है तथा प्रदेश में सबसे प्रमुख एवं वृहद् नदी तंत्र है। नर्मदा नदी मध्यप्रदेश की 'जीवन रेखा'

है तथा पवित्रता की दृष्टि से इसका विशेष महत्व है। नर्मदा नदी, जिला अनूपपुर के अमरकण्टक (220 41' छ तथा 81048' म्, समुद्र तल से 3000 फीट ऊँचाई) नामक स्थान से मंदिरों के समूहों के बीच एक कुंड से उद्गम होती है। नर्मदा नदी की 41 सहायक नदियां हैं (39 मध्यप्रदेश तथा 02 गुजरात)। प्रमुख सहायक नदियों में शक्कर, दूधी, तवा, बारना, हथनी, तेन्दुनी, कोलार, हिरण, चौरल, अजनाल आदि हैं। नर्मदा कछार का कुल क्षेत्रफल 98,800 वर्ग कि.मी. है, जिसमें 85,860 वर्ग कि.मी. मध्यप्रदेश में, 1540 वर्ग कि.मी. महाराष्ट्र तथा 11400 वर्ग कि.मी. गुजरात में है। नर्मदा कछार में मध्यप्रदेश के 25 जिले पूर्ण अथवा आंशिक रूप से सम्मिलित हैं तथा 18 बड़े शहर स्थित हैं, जिनमें नदी तट पर स्थित मण्डला, जबलपुर, नरसिंहपुर, होशंगाबाद, बड़वाहा, महेश्वर, ओंकारेश्वर, धागनोद तथा बड़वानी प्रमुख हैं। नर्मदा मध्यप्रदेश में 1077 कि.मी., म.प्र. एवं महाराष्ट्र की सीमाओं से बहते हुए 32 कि.मी., महाराष्ट्र एवं गुजरात की सीमाओं से बहते हुए 42 कि.मी. एवं गुजरात में 161 कि.मी. बहती हैं। कुल लंबाई 1320 कि.मी. है। नर्मदा कछार वन्य प्राणी संरक्षण की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। तीन राष्ट्रीय कान्हा टाइगर रिजर्व -मण्डला, बालाघाट, सतपुड़ा टाइगर रिजर्व-होशंगाबाद, मण्डला फॉसिल्स उद्यान-मण्डला एवं 8 वन्य प्राणी अभ्यारण फेन-मण्डला, नौरादेही-नरसिंहपुर, बोरी-होशंगाबाद, पचमढ़ी-होशंगाबाद, सिंघोरी-रायसेन, रातापानी-रायसेन, सिवनी-देवास एवं सीहोर एवं सरदारपुर-धार हैं। दो बायोस्फियर रिजर्व पचमढ़ी-होशंगाबाद, बैतूल एवं छिंदवाड़ा एवं अचानक मार्ग-अमरकंटक, म.प्र.-अनूपपुर एवं डिण्डौरी, छत्तीसगढ़-बिलासुपर हैं।

नर्मदा की उत्पत्ति

श्री नर्मदा जी की उत्पत्ति की विभिन्न कथाएँ वेदों, पुराणों, किंवदन्तियों एवं जनश्रुति कहानियों में देखी या सुनी जा सकती है। प्रथम दो कथाएँ स्कन्द पुराण के रेवा खण्ड से ली गयी है। कुछ कथाएँ किंवदन्ती एवं जनश्रुतियों पर आधारित हैं।

1. राजा पुरुरवा की तपस्या से श्री नर्मदा की उत्पत्ति - राजा पुरुरवा ने भगवान शिवशंकर की कई वर्षों तक घोर तपस्या की, तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान शिवशंकर ने प्रत्यक्ष दर्शन दिया और बोले - हे! राजन् मैं तुम्हारी तपस्या से अत्यंत प्रसन्न हूँ, मांगो क्या वर माँगते हो। राजा पुरुरवा ने प्रणाम कर कहा- हे! भगवान् आप समस्त लोक के हित हेतु नर्मदा को पृथ्वी पर अवतरित कीजिए। आज संपूर्ण जगत् निराधार सा प्रतीत हो रहा है। आज न तो देवताओं को ही तृप्ति मिल पा रही है और न ही पितरों को और न मनुष्यों को। भगवान ने राजा के वचनों को सुनकर कहा- पुरुरवा तुम अन्य कोई वर मांगो वो मैं तुम्हें अवश्य दूँगा, परंतु श्री नर्मदा का विचार न करो। पुरुरवा ने कहा - भगवान मैं अपने प्राण त्यागने के बाद भी कोई अन्य वर न मागंूगा। राजा की कठोर तपस्या का उद्देश्य लोकहित जानकर भगवान शिवशंकर ने नर्मदा को पृथ्वी पर अवतरित होने की आज्ञा दी। श्री नर्मदा ने कहा-हे भगवन्! मैं बिना आधार के पृथ्वी पर नहीं उतर सकती। श्री नर्मदा के वचनों को सुनकर भगवान ने आठ पर्वतों को बुलाया तथा उनसे पूछा किसमें श्री नर्मदा को धारण करने की क्षमता है। विंध्य पर्वत ने कहा- आपके प्रसाद से मेरे पुत्र पर्यंक (मैकल) में श्री नर्मदा को धारण करने की क्षमता है। तत्पश्चात् शिवशंकर की आज्ञा पाकर पर्यंक गिरि के शिखर पर चरण रखकर श्री नर्मदा विकराल रूप धारण कर पृथ्वी पर उतरीं, जिससे संपूर्ण जगत् जल में ही प्रलयग्रस्त हो गया। तब देवताओं ने श्री नर्मदा की प्रार्थना की और कहा- हे! देवि मर्यादा

धारण करें। किसी नियत सीमा में स्थिर रहें तथा लोक कल्याणी बनें। श्री नर्मदा ने देवताओं की प्रार्थना सुनकर अपने आकार को संकुचित किया एवं मर्यादित होकर सतत् रूप से बहने लगी। श्री नर्मदा ने पुरुरवा से कहा- वत्स! तुम अपने हाथों से मेरे जल का स्पर्श करो। पुरुरवा ने श्री नर्मदा की आज्ञा पाकर जल का स्पर्श एवं आचमन करते हुए पितरों को श्री नर्मदा जल से तर्पण किया। श्री नर्मदा जल से तर्पण करने के पश्चात् राजा के पितर उस परम धाम को गए, जिस परमधाम के लिए देवता सदैव ललायित रहते हैं। संपूर्ण जगत् श्री नर्मदा अवतरण के साथ ही पवित्र हो गया। 'पर्यंक पर्वत' के शिखर पर विद्‌यमान रहने के कारण श्री नर्मदा 'मैकलसुता' कहलाई।

2. राजा हिरण्यतेजा की तपस्या से श्री नर्मदा का पृथ्वी पर अवतरण- राजा हिरण्यतेजा ने शिवजी की तपस्या की, ताकि नर्मदा जी पृथ्वी पर आये और उनके पितरों का उद्‌धार करें। तब शिवजी ने प्रसन्न होकर नर्मदा जी को पृथ्वी पर आने की आज्ञा दी। सभी पर्वत नर्मदा जी को धारण करने में असमर्थ थे, तब उदयाचल पर्वत ने कहा हे महेश्वर! आपकी कृपा से मैं श्री नर्मदा को धारण करने में समर्थ हूँ। तदान्तर उदयाचल पर्वत की चोटी पर चरण देकर श्री नर्मदा आकाश मार्ग से पृथ्वी पर आयीं और हिरण्यतेजा के पितरों का उद्‌धार किया।

3. भगवान शिव के कण्ठ से श्री नर्मदा की उत्पत्ति - समुद्र मंथन के समय शिवजी ने विषपान किया, विष के प्रभाव से शिवजी के शरीर में अत्यंत तीव्र ऊष्मा का आभास हुआ। शीतलता एवं शांति की खोज में भगवान मैकल पर्वत पर आयें, वहां शीतलता एवं शांति देखकर भगवान ध्यान में लीन हो गये, विष के प्रभाव से शिवजी का कण्ठ नीला पड़ गया। अतः शिवजी ''नीलकण्ठ'' कहलाये। ऊष्मा

के प्रभाव से शिवजी के कण्ठ से श्वेद की धारा बहने लगी, उसी श्वेद से श्री नर्मदा कन्या रूप में प्रकट हुई, जिस स्थान पर शिवजी ध्यान में लीन थे एवं श्री नर्मदा का उद्‌भव हुआ, वह स्थान 'अमरकण्टक' कहलाया। इसी कारण नर्मदा जी को अमरकण्ठेश्वरी कहा जाता है। नर्मदा जी ने शिवजी की कठोर तपस्या की और अमरता का वरदान पाया, साथ ही जल के दर्शन मात्र से लोगों के संपूर्ण पापों के नाश होने का वरदान पाया। मैकल पर्वत से प्रकट होने के कारण नर्मदा जी मैकलसुता कहलायी।

4. रेवा नायक की कथा - एक व्यापारी 'रेवा' नायक और उसकी पुत्री मैकल पर्वत पर जंगली जड़ी-बूटी एकत्र कर बेचने का काम करता था। मैकल पर्वत पर ही एक बांस के समूह से निकलने वाले झरने के समीप बैठकर वह भोजन पकाया करता था। अपनी पुत्री को पानी लाने के लिए रेवा ने कहा, तब पुत्री पानी लेने गयी और वापस नहीं आयी, फिर आकाशवाणी हुई कि हे रेवा तू रो मत मैं नर्मदा तुम्हारी पुत्री के रूप में तुम्हारे यहां जन्म लिया था, बांस के समूह से निकलने वाला जल ही मेरा उद्‌गम स्थान है, यहां तुम मंदिर का निर्माण करो, तब रेवा ने कहा, धन कहाँ से आयेगा, आकाशवाणी ने कहा तुम्हारे पास जो जंगली संपदा है, वह सभी बहुमूल्य रत्नों में बदल गयी है, तब रेवा ने मंदिर का निर्माण कराया। इसी कारण नर्मदा का एक नाम रेवा है। ऋषि-मुनियों की प्रार्थना पर भगवान शिव यहाँ पर नर्मदेश्वर महादेव के रूप में स्थित हुए।[1]

स्कन्द पुराण समस्त पुराणों में सबसे बड़ा है। यह सात खण्डों में विभक्त है। इसमें 89900 श्लोक बतलाये गए हैं। ये सात खण्ड -माहेश्वर-खण्ड, वैष्णव खण्ड, ब्रहमखण्ड, काशीखण्ड, रेवाखण्ड, तापीखण्ड और प्रभासखण्ड हैं। 'स्कन्दपुराण' में 'रेवाखण्ड' में 'नर्मदा

जी’ की महिमा-उत्पत्ति का वर्णन है और इस प्राच्य-पुराण में ‘काशीखण्ड’ के पूर्वार्द्ध में ही ‘नर्मदा’ का उल्लेख हुआ है-

‘एक समय देवर्षि नारद नर्मदा के जल में स्नान और श्री ओंकारनाथ जी का भली-भांति पूजन करके जब आगे गए, तब उन्हें वह विंध्य पर्वत दिखायी दिया, जो संसार-ताप का संहार करने वाली नर्मदा नदी के जल से सुशोभित होता है।[2]

इसी ‘काशीखण्ड’ में विंध्य पर्वतमाला का उल्लेख हुआ है। रेवाखण्ड में नर्मदा जी के मर्त्यलोक में आगमन का वर्णन है। नर्मदा का पहला अवतरण अभिकल्प के सत्ययुग में हुआ था। इसका अवतार दक्षसावर्णि मन्वन्तर में हुआ और तीसरा अवतार राजा पुरुरवा के द्वारा वैष्णव मन्वन्तर में संपन्न हुआ है।[3]

वेदव्यास कृत महाभारत में ‘अनुशासन पर्व’ में नर्मदा के वैभव पर प्रकाश डाला गया है-

तंनर्मदा देवनदी पुण्यशीत जलाशिवा

इस प्रकार ‘वन पर्व’ में भी लिखा है-

वैदूर्य पर्वतं चैव नर्मदां च महानदीम्।[4]

कूर्म पुराण में -

‘नर्मदा लोकविख्याता तीर्थानामुत्तमानदी।’[5]

पद्य पुराण में -

‘मुनिमिः संस्तुता ध्येषां नर्मदा प्रवरानदी।’[6]

इसी प्रकार मत्स्य पुराण में ‘नर्मदायां च राजेन्द्र पुरणो यच्छुतं मय न।

यत्र तत्र नरः सात्वा अश्वमेछुफलं लभेत्।’

नर्मदा में स्नान करना अश्वमेघ यज्ञ करने के फल के समान है। बाणभट्ट की अनुपम कृति ‘हर्षचरितम्’ में रेवा के प्रवाह का चित्रण है। ‘शोणभद्र एक नद है या पुंवाची जलप्रवाह है, जिसे

आज सोन नदी के नाम से जाना जाता है। महाभारत में शोण और नर्मदा दोनों की उत्पत्ति मैकल पर्वत श्रेणी के वंशकुल्म या बांसों के कुंजों से बताई गई है।'[7] आचार्य विद्यासागर जी ने भी अपनी कृति में नर्मदा के वैभव का वर्णन किया है।

श्रीमद्भागवत् में रेवा का उल्लेख इस संदर्भ में हुआ है कि इंद्र और वृत्रासुर का युद्ध नर्मदा के तट पर हुआ है। शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहते हैं -

'ततः सुराणाम सुरैरणः परमदारूणः।
त्रेतामुखे नर्मदायामभवत् प्रथमेयुगे।' [8]

श्रीमद्भागवत् में मान्धाता के पुत्र पुरुकुत्स का नर्मदा के साथ विवाह का उल्लेख है। पुरुकुत्स का नर्मदा के तट पर तपस्या करना और नागों द्वारा अपनी बहिन (नर्मदा) से पुरुकुत्स का परिणय करा दिया और नर्मदा पाताल लोक में चली गईं। शुकदेव जी कहते हैं-

'नर्मदा भ्रातृमिर्दत्ता पुरुकुत्साय योरगैः।
तथा रसातलं नीतो भुजगेन्द्र प्रयुक्त्या।।'[9]

'ब्रह्मपुराण' में -

'नर्मदा परम् तीर्थम् तथा नर्मदा च महापुण्या।'[10]

'मत्स्य पुराण' में -

'नर्मदायाँ च राजेन्द्र पुरणो यच्छुतं मय न।
यत्र तत्र नरः सात्वा अश्वमेछुफलं लभेत्।'

(नर्मदा में स्नान करना अश्वमेघ यज्ञ करने के फल के समान है)

'शिवमहापुराण' में -

ऊर्ध्वं पृच्छं कृत्वा शीघ्रं गौनर्मदा प्रति
आगत्य नन्दि कस्यास्य समीचे नर्मदा-जले।।[11]
(पापों को दूर कर मुक्ति प्रदाता है नर्मदा)

'कल्किपुराण' में -

ताः स्त्रियोऽपि तमालोकय संस्पृथ्यचरणाम्बुजं।

पुनः पुरूत्वं समापन्ना रेवा स्नाना-तदाज्ञया।[12]

'कल्किपुराण' में सिंहल (वृहद्रथ) की कन्या को देखने से जो राजा स्त्री बन गये थे वे नर्मदा के जल में स्नान कर अपने पूर्व रूप में आ गये थे।

बाणभट्ट की अनुपम रचना 'हर्षचरितम्' में रेवा के प्रवाह का चित्रण इन शब्दों में व्यक्त हुआ है -

'स्वच्छ-शिशिर-सुरम वारिपूर्ण भगवतः पितामहस्यं अपत्यं हिरण्य

बाहुनामानं महानदं यंजनाः शोण इति कथयन्ति।[13]

मैकल को ही शोण और नर्मदा का उद्‌गम स्थान माना है। विंध्य पर्वत की उपत्यकाओं में विचरण कर सजीव चित्र उपस्थित करने में बाण का अनुपम स्थान है। अयोध्या प्रसाद द्‌विवेदी ने लिखा है-

'शोण भद्र एक नद है या पुंवाची जल प्रवाह है, जिसे आज सोन नदी के नाम से जाना जाता है। महाभारत में शोण और नर्मदा दोनों की उत्पत्ति मैकल पर्वत श्रेणी के वंशकुल्म या बांसों के कंुजो से बताई गई है।'[14]

'वायुपुराण' में -

'कावेरी कृष्ण वेदीर्णां नर्मदां यमुनां' का उल्लेख हुआ है।

श्री नर्मदा का जल दर्शन मात्र से ही पवित्र कर देता है। पूरे भारत वर्ष में केवल श्री नर्मदा ही एकमात्र सरिता है, जिनकी परिक्रमा की जाती है। श्री नर्मदा जल में स्थित एक-एक कण 'शंकर' है। नर्मदा जल में विसर्जित अस्थियाँ कालान्तर में पाषाण रूप धारण कर लेती है। ये पाषाण श्री नर्मदा जल में रहने के कारण शिव पिण्डी रूप में पूजित होते हैं।

बहुत से लोग केवल माँ नर्मदा की संपूर्ण परिक्रमा से ही परिचित है। किंतु संपूर्ण परिक्रमा के अलावा एक और परिक्रमा होती है, जो कि अमरकण्टक पर्वत पर की जाती है। जिसे पंचकोशी परिक्रमा कहते हैं। यह परिक्रमा लगभग पांच कोश की होती है। इस परिक्रमा की समयावधि लगभग पाँच दिन है एवं इस परिक्रमा को करने की विशेष तीन तिथियाँ हैं- पहली तिथि कार्तिक मास में एकादशी शुक्ल पक्ष से पूर्णिमा तक, दूसरी तिथि माघ मास में शुक्ल पक्ष नवमी में शुक्ल पक्ष चतुर्दशी तक, तीसरी तिथि वैशाख मास में शुक्ल पक्ष द्वितीया से शुक्ल पक्ष सप्तमी तक।

श्री नर्मदा जी की परिक्रमा दो प्रकार से की जाती है, प्रथम रूद्र परिक्रमा कहलाता है एवं द्वितीय को जिल्हेरी परिक्रमा कहते हैं। रूद्र परिक्रमा के अंतर्गत परिक्रमावासियों को जिस स्थान से अर्थात् दक्षिण तट से आरंभ करें, उन्हें पहले समुद्र पार कर फिर 'उत्तर तट होकर' अमरकण्टक जावें। वहाँ से पुनः तट बदलकर दक्षिण तट से पूर्व स्थान पर जहां से परिक्रमा आरंभ की थी, वहीं परिक्रमा समापन करनी चाहिए। रूद्र परिक्रमा में लगभग 03 साल, 03 महीने एवं 13 दिन लगते हैं। जिल्हेरी परिक्रमा कठिन है। इस परिक्रमा में परिक्रमावासियों को दुगना चलना पड़ता है। इस परिक्रमा में अमरकण्टक आकर माई की बगिया नामक स्थान पर श्री नर्मदा जी की पूजा-कढ़ाही कर उत्तर तट से परिक्रमा आरंभ कर देनी चाहिए एवं समुद्र तट पर पहुंचकर पुनः उत्तर तट पर ही चलते हुए अमरकण्टक आना पड़ता है। इस परिक्रमा को समुद्र पार नहीं करना चाहिए। अमरकण्टक पहुंचने पर पुनः माई की बगिया में पूजा-कढ़ाही करने के बाद तट बदलकर दक्षिण तट से परिक्रमा आरंभ करनी चाहिए एवं समुद्र तट पर पहुंचकर पुनः उसी मार्ग से वापस अमरकण्टक आना चाहिए। इस प्रकार जिल्हेरी परिक्रमा पूर्ण होती

है। इस परिक्रमा में लगभग सात वर्षों का समय लगता है। परिक्रमा समाप्त करने के पश्चात् श्री नर्मदा कुण्ड से श्री नर्मदा जल लेकर ओंकारेश्वर जी मंे चढ़ाना चाहिए। [15]

श्री नर्मदा परिक्रमा (दक्षिण तट मार्ग-पैदल) - दक्षिण तट मार्ग की परिक्रमा का क्रम इस प्रकार है-अमरकण्टक, नर्मदा कुंड, कपिला संगम, बांधा, आरंडी संगम, कपिल धारा, पंच धारा, पकरी सोंढ़ा, बेल घाट, किरगी, भीमकुंड-पंचधारा, सिवनी संगम, पत्थर कुचा, गारका भट्टा, मेढ़िया खार, चंदन घाट, चरकुटिया, लक्ष्मण मंड़वा, डिंडोरी, इमलय, रामपुरी, कचरा टौला, कनड़ संगम, सकरी टोला, छीर पानी, कन्हारी, सारसडोली, ठैलाघाट, बिसवानी, डोकर घाट, मुंडी गांव-शक्ति घाट, देवगांव, कबीर चबूतरा, करमंडल, करंजिया, अमलडीहा, रूषा, गोरखपुर, मोहतरी, गाड़ासरई, बोंदर गांव, सुनियामार, खरगहना, कूड़ा, कुकरामठ, बिंछिया रोड, डिंडोरी, रामपुरी, सक्का, राई गांव, हर्रा टोला, गीधलौंडी, चाबी, खाल्हे डिठौरी, मोहगांव, देवगांव, बिलगांव, रामनगर, मधुपुरी-घोड़ा घाट, सुकतरा, सीतारपटन, नारा, पद्मी चौराहा, सूरजकुंड, महाराजपुर, सहस्रधारा, घाघा, पाटन, केदारपुर, गोकला, पहाड़ी, घंसौर, गोरखपुर, देवरी, सालीबाड़ा, गागनदा, बरगी कालोनी, निगरी, मान गाँव, ग्वारीघाट (गौरी घाट), तिलवारा घाट, घंसौर, त्रिशूलघाट, लम्हेटीघाट, डुंडवारा, धुआंधार, भेड़ाघाट, ललपुर-संतसेवा आश्रम अन्नक्षेत्र, बगरई, रामघाट-रामकुंड, धरती कछार, भीकमपुर, झांसीघाट, बेलखेड़ी, करेली, बह्मकुंड, सिद्धेश्वर, बुधघाट, सांकल, पिपरिया, गरारूघाट, चिनकी घाट, पिपरहा, सगुन घाट-शेर संगम, सप्तधारा, छोटी बरमान घाट, अंडिया घाट, लिंगा घाट, पीठोरा घाट, कोठिया घाट, बिछुआ घाट, थरैरी, भटेरा, रींछावर, शोकलपुर, उसराया, सोनादहार-पिपरपानी, खरेटी, डेमावर, सिरसिटी घाट-दूधी संगम, खैरा, सांडिया,

सिवनी, माछा, भटगांव, रेवा वनखेड़ी, इसरपोर, पामली, रामनगर-पांडुद्वीप, सांगाखेड़ा खुर्द, बछवाड़ा, गनेरा, गौ घाट, बीकौर, बड़ी आली, टोकसर, गौमुख घाट, कांकरिया, रावेरखेड़ी, बकावां, मर्दाना, भटयाण (तेली), गोधारी घाट (सात पीपली), लेपाघाट, वेदा संगम, बड़गांव, शालिवाहन, नावड़ा टोडी, सहस्रधारा, ठालखेड़ा, खलघाट, चींचली, कठोरा (ग्यारह लिंगी), नर्मदे हर बाबा आश्रम, नंदगाँव, मारू की चींचली, नलवाई, लोहारा, मोहीपुरा, दत्तबाड़ा, छोटा वर्धा, दही बेहड़ा, पिप्पलुद, कसरावद, राजघाट, बड़वानी, बाबनगजा जैन तीर्थ, राजपुर, उपला, पलसुद, निवाली, डोंड़वाड़ा, पानसेमल, राधाकृष्ण धाम, खेतिया, रायखेड़, शहादा, प्रकाशा, आमलोड, तलौंदा, वाण्याविहार, अक्कलकुआँ, खापर, सागबारा, गंगापुर, डेडियापाड़ा, कबीर आश्रम, मोवी, जितनगर, राजपीपला, गोराकालोनी, हरिधाम, वसंतपुरा, ईन्द्रवरणा, नानी रावल, फूलवाड़ी, रामपुरा, धनदेश्वर, मांगटोल, गुवार, सहराव, तुंबड़ी, बांदरिया, कुम्भेश्वर, हनुमंतेश्वर-मोरली संगम, नीलकंठधाम, पोईचा, नरखड़ी, रुंड़गांव, शुकदेव, पाटणा, ओरी, कोटेश्वर, सीसोदरा, कान्दरोज, वराछा, असा, पंचमुखी हनुमान, गिरनारी गुफा, पाणेथा, ईन्दोर-वासणा, वेलु गांव, भावपुरा, सरसाड़-गौघाट, शाश्वत मारूतिधाम, बढ़वाणा, मणिनागेश्वर, रूंड़ गांव, भालोद, अविधा, कराड़, लिम्बोदरा, जगदीश मढ़ी, मोटा सांझा, उचेड़िया, गुमानदेव, गुपाली, मुलद-मांड़वा, नौगवां-नवागाम, सामोर, अंदाडा-गडखोल, झरकुंड, अंकलेश्वर, बुलबुला कुंड, सजोद, माटी ऐड़, मोड़िया, शेरा, उतराज, हांसोट, वासनोली, हनुमान टेकरी, कोटेश्वर, कतपोर, विमलेश्वर। कतपोर से नाव में बैठने के पूर्व समुद्र स्नान का मंत्र पढ़ते हैं।

श्री नर्मदा परिक्रमा (उत्तर मार्ग-पैदल) - उत्तर तट मार्ग से श्री नर्मदा परिक्रमा का पैदल मार्ग इस प्रकार है:- मीठी तलाई रेवा-

सागर संगम, जगरवा गांव, हरि का धाम, लुवारा गांव, लखी गांव, दहेज, अंभेठा, सुवा गांव, कोलियाद, पैंगणी, कलादरा, केस रोल, अमलेश्वर, एकसाल, मनाड, मेहगांव, समनी-कासवा, भाड़भूत, टींबी, दशान, पेरवाड़ा, कुकरवाड़ा, त्रिगुणातीत ध्यान आश्रम, भरूच, मक्तमपुर, झाड़ेश्वर, तवरा, कड़ोद, शुक्ल तीर्थ, मंगलेश्वर, दत्तमढ़ी, निकोरा, अंगारेश्वर, धर्मशाला (धर्मशिला), झणोर, नांद (वड़ोदरा जिला), सोमज-देलवाड़ा, ओझ, मोटी कोरल, सायर, नारेश्वर, कहोणा, फŸोपुर, कोठिया, रणापुर, दिवेर, मांडवा, मालसर, कंटोई, शिबोर, नर्मदा आश्रम, कंजेठा, अम्बाली, अनसूइया माता, जनकेश्वर, संकर्षण, कोटेश्वर, बरकाल, मोलेथा, दरियापुरा, मृत्युंजय आश्रम, बद्रिकाश्रम, नन्देरिया, गंगनाथ, भीमपुरा, यमहास, चांदोद, करनाली, बरवाड़ा, मोरिया, नलगांव, चुड़ेश्वर, तिलकबाड़ा, मणिनागेश्वर, वासणा, रेंगण, सांजरोली, अक्तेश्वर, गरूड़ेश्वर, गभाणा, केवड़िया-नवागाम, उंड़वा, बोरियाद, वगाच, भाखा, कानबेड़ा, कवांट, कड़ी पानी, हांफेश्वर, लींबड़ी, वखतगढ़, अढ़ा, उमरठ, टेमला, कवड़ा, डही, धर्मराय, पिपरीपुरा, कोटेश्वर, गेहलगांव, चिखलदा, मलवाड़ा, बोधवाड़ा, गांगलोद, अकलबाड़ा, सेमरदा, शरीफपुरा, पेरखड़, बड़ा वर्धा (बड़दा), ऋद्धेश्वर घाट, शुक्लेश्वर, हतनावर, खुजागांव, पगारा, पीपल्यागुट, काली बावड़ी, मांडवगढ़-मांडु, रेवाकुंड, हीरापुर, बणझारी, बगवानिया, कंुडी, धामनोद, खलघाट, कनबाड़ा, जलकोटी, महेश्वर, ज्वालेश्वर, लाडवी, मंडलेश्वर, गंगाझीरा, पथराड़, बेगांव, पितामली, धारेश्वर, सेमलदा, विमलेश्वर, रामगढ़-रामपाल घाट, कटघरा, महेताखेड़ी, खेड़ी घाट (नाव घाट), चारूकेश्वर, च्यवनाश्रम-मोदरी, कोठावा, कुंडी, बड़ेल, मेंहदी खेड़ा, हिरानिया, पिपरी, सीतावन, रतनपुर बावड़ी खेड़ा, सेमली, प्रेमगढ़ (नया) भटखेड़ा, बकामा खेड़ी, डंढ़ा, नन्दाणा, पोखर, ढांसर (धासड़), कीटी गांव, धर्मपुरी, नामनपुर,

फतेहगढ़, तमखाना, राजीरगांव, डाबढ़ा-मंडलेश्वर, नेमावर, मेलघाट, गौनी संगम, बीजल गांव, पिपलनेरिया, छीपानेर (सिहोर जिला), सात देव, सीलकंठ, नीलकंठ, डीमावर, बावरी घाट, नेहलाई, टेऊ गांव, मर्दानपुरा, आंवरीघाट, तालपुर, होलीपुरा, बुधनी, गुलझारी घाट, रामनगर, बांद्राभान, शाहगंज-चींचली, हतनोरा, सरदार नगर, नारायणपुर, नांदनेर, कुसुमखेड़ा, भारकच्छ, गड़रवास, सनखेड़ा, मोतलसर, बगलवाड़ा, सतरावन, डूमर, मांगरोल, वरहा, केतुधान, मौनीबाई का आश्रम, धरमपुरी, बोरास, चौरास, केलकच, अनघोरा, पतयघाट, शुक्लपुर, टीमरावन, हीरापुर, करौंदी, बेलथारी, झीरी, रूकवाड़ा, चाँपरपाठा, बरमानघाट, सटतधारा, छोटी धुआंधार, गुरसी, रामपुरा, केरपानी, पीठेरा, डोंगर गांव, धूमगढ़, हीरापुर, जोगीपुरा, बह्मकुंड, झलोन, सुनाचर, सर्राघाट-घरौवाघाट, चरगवाघाट, गोराघाट, झांसीघाट, बेल पठार, झोझीघाट, सीतलपुर, जलेरीघाट, सिद्धघाट, पिपरिया, भेड़ाघाट, गोपालपुरा, लम्हेटाघाट, त्रिशूलभेद, रामनगर, तिलवारा, ग्वारी घाट (गौरीघाट), जलहरि (जलेरी) घाट, भवानी घाट, खिरैनी घाट, गौर संगम, बरेला, रिछाई, मोईली नाला, बीजा डांडी, धनवाई, कुड़ामैली, देवरी, चिरी, चिरई डोंगरी, बबैया, गाजीपुर, सहस्रधारा, देवदरा, मंडला, छपरी, बकछरा दोना, लिंगाघाट, बिलगड़ा, डुप्टा संगम, चकदेही, फड़की संगम, सिवनी, कुटरई, फुलवई, सारंगपुर, कछारीघाट, टाकिन घाट, राखी गांव, मालपुर, विक्रमपुर, नूनखान, शाहपुर, जोगी टेकरिया, देवरा, धुर्रा, रामघाट, दूधीगाँव, घुघरी, टेढ़ी संगम, कंचनपुर, शिवालाघाट, ठाड़पाथर, शिवनी संगम, देवरी, दम्हेड़ी, बिलासपुर, भीमकुंडी, खाटी, हर्रईटोला, फर्रीसेमर, दमगढ़, कपिलधारा, रामकृष्ण कुटीर, अमरकण्टक (श्री नर्मदा उद्गम)।

श्री नर्मदा परिक्रमा दक्षिण तट मार्ग (वाहन द्वारा) - अमरकण्टक (श्री नर्मदा उद्गम कुण्ड), करंजिया, गोरखपुर, गाड़ासरई, डिण्डौरी (कुर्करामठ), मोहगांव, रामनगर, पद्मिनी चौराहा, महाराजपुर, धन्सौर, लखनादौन, मुगवानी, नरसिंहपुर, बरमान घाट, पिपरिया, होशंगाबाद, हरदा (हंडिया-मां नर्मदा जी का नाभि स्थान), हरसूद, खण्डवा (मोरटक्का-ओंकारेश्वर) वापस मोरटक्का, खरगोन, जुलवानिया, सेन्धवा, खेतिया, शहादा, तालौंदा, प्रकाशा, सागवाड़ा, डेडियापाड़ा, राजपीपला, मणिनागेश्वर, सगडिया (गुमनाम देव हनुमान जी), अंकलेश्वर, हांसोट (बुलबुला कुण्ड), कोटेश्वर (कटपोर), बिमलेश्वर। ग्राम कटपोरा से नाव द्वारा अरब सागर पार कर मीठी तलाई पहुंचते हैं।

श्री नर्मदा परिक्रमा उत्तर तट मार्ग (वाहन द्वारा) - मीठी तलाई, अमखेड़ा, भरूच, कंजड़, दभोई (चांडीह), छोटा उदयपुर (हापेश्वर तीर्थ), अलीराजपुर, कुक्षी, मनावर, खलघाट, धामनोद (महेश्वर), नेमावर, महू, इंदौर, उज्जैन (महाकाल), देवास, भोपाल, औबेदुल्लागंज, बरेली, तेंदूखेड़ा, तिलवारा घाट, जबलपुर (भेड़ाघाट, ग्वालियर, जिलहरीघाट), शहपुरा, जोगी टिकरिया, दमहेड़ी, लीला, हर्रा टोला, सांधा तिराहा (राजेन्द्रग्राम), अमरकण्टक (श्री नर्मदा उद्गम कुण्ड)।16

परिक्रमावासियों के सामान्य नियम - प्रतिदिन नर्मदा नदी में स्नान करें, जलपान भी रेवा जल का ही करें। प्रदक्षिणा में दान ग्रहण न करें। श्रद्धापूर्वक कोई भोजन कराये तो कर लें, व्यर्थ वाद-विवाद, परायी निन्दा, चुगली न करें। वाणी का संयम बनाये रखें, सदा सत्यवादी रहें। कायिक तप भी सदा अपनाये रहें-वेद, द्विज, गुरु, प्राज्ञ पूजन, शौच, अहिंसा व शारीरिक तप। परिक्रमावासियों को प्रतिदिन गीता, रामायण आदि का पाठ करना उचित है, परिक्रमा

आरंभ करने के पूर्व नर्मदा जी में संकल्प करें। माई की कढ़ाई (हलुआ जैसा प्रसाद) बनाकर कन्याओं, साधुओं, ब्राह्मणों तथा अतिथि अभ्यागतों को यथाशक्ति भोजन कराएं। दक्षिण तट की परिक्रमा नर्मदा तट से 05 मील से अधिक दूर और उत्तर तट की परिक्रमा 7.5 मील से अधिक दूर से नहीं करना चाहिए। कभी भी नर्मदा जी को पार न करें। वर्षा के मौसम में परिक्रमा न करें, बहुत अधिक सामग्री साथ लेकर न चलें। बाल न कटवाएं, नाखून भी बार-बार न काटें, वानप्रस्थ का वृत्त लें। ब्रह्मचर्य का पूरा पालन करें। साबुन का प्रयोग न करें, शुद्ध मिट्टी का सदा प्रयोग करें। परिक्रमा अमरकण्टक से प्रारंभ कर अमरकण्टक में ही समाप्त होनी चाहिए। परिक्रमा पूरी होने पर शंकर भगवान का अभिषेक कर जल चढ़ाना चाहिए। आशीर्वाद ग्रहण कर संकल्प से मुक्त हो जायंे, अंत में नर्मदा जी की विनती करनी चाहिए।

संदर्भ

1. अमरकण्टक दर्शन- संजय श्रीवास, प्रकाशक-श्री माँ नर्मदा साहित्य सदन, अमरकण्टक, जिला-अनूपपुर, जुलाई 2015, पृ. 58.
2. श्री स्कन्द महापुराण, काशीखण्ड पूर्वार्द्ध, पृ. 542, संक्षिप्त-स्कन्दपुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर.
3. संक्षिप्त स्कन्द पुराण, रेवाखण्ड, पृ. 751.
4. महाभारत, वनपर्व, श्लोक -15.
5. कूर्म पुराण 2/38/1
6. शिव महापुराण 4/6/18
7. ‘हर्षचरित गाथा’ अष्टम्उच्छ्वास विन्ध्यवन वर्णन, पृ. 271.
8. श्रीमद्भागवत् षष्ठ स्कंध, दशम अध्याय, श्लोक 16.
9. श्रीमद्भागवत् सप्तमोऽध्याय नवम् स्कंध, श्लोक -2, पृ. 29.

10. तीर्थ प्रकरण-109.
11. शिव महापुराण 4/6/18.
12. कल्कि पुराण 2/3/18.
13. हर्षचरित, बाणभट्ट, पृ. 46.
14. संस्कृति-स्रोतस्विनी नर्मदा, डॉ. अयोध्या प्रसाद द्विवेदी, पृ. 26.
15. अमरकण्टक दर्शन, संजय श्रीवास, श्री माँ नर्मदा, साहित्य सदन, अमरकण्टक, जुलाई 2015, पृ. 127.
16. अमरकण्टक दर्शन, संजय श्रीवास, श्री माँ नर्मदा साहित्य सदन, अमरकण्टक, जुलाई 2015, पृ. 162.

21वीं सदी के कथा-साहित्य में दलित - चेतना

डॉ॰ लवलीन कौर
सहायक आचार्या, हिंदी विभाग
कॉलेज गर्ल्स सेक्शन
लुधियाना (पंजाब)

ऋग्वेद तथा अन्य संस्कृत ग्रंथों ने केवल चार वर्णों का उल्लेख किया लेकिन कालांतर में एक वर्ण के भीतर भी कई कई जातियाँ बनने लगीं। इसी का परिणाम है कि भारत में हज़ारों जातियाँ और उपजातियाँ है। इतने छोटे छोटे विभाजनों के बाद भी भारतीय समाज मोटे तौर पर दो वर्गो में विभाजित हुआ-स्पृश्य और अस्पृश्य। स्पृश्य वर्चस्वशाली थे जबकि अस्पृश्य हर स्तर पर शोषित। अस्पृश्यों पर स्पश्यों के अनुकूल नियम लागू थे जिनका उल्लंघन दण्डनीय अपराध था। ये सारे नियम अस्पृश्यों की अस्मिता के विरुद्ध थे। इन नियमों को न मानने पर अस्पृश्यों के लिए अत्यंत कठोर और अमानवीय यातनाओं का प्रावधान था। भेदभाव से ग्रस्त भारतीय समाज में अस्पृश्यों को कभी स्वीकृति नहीं मिली। "हाँ, यह जरुर है कि अंग्रेजी शासन के विरुद्ध भारत के स्वाधीनता आंदोलन के समय तथा भारत - विभाजन के समय हिन्दुओं की जनसंख्या अधिक प्रमाणित करने के लिए उन्हे हिन्दू ही बताया गया था। 1901 में भारत की तीसरी जनगणना के समय

उच्चजातीय हिन्दुओं ने जनगणना में जाति के उल्लेख का विरोध किया।"1 अस्पृश्यों के अधिकारों के लिए डॉ॰ अम्बेदकर आजीवन संघर्ष करते रहे तथा अनुसूचित जातियों और जनजातियों के अधिकारों और उनकी अस्मिता की लड़ाई लड़ते रहे। उनके अधिकारों, उनके प्रति समानता के व्यवहार तथा उनके सर्वांगीण विकास हेतु आरक्षण के लिए भारतीय संविधान में विशेष प्रावधान भी किए गए लेकिन स्थिति में बदलाव देखने को नहीं मिलता। जिन अस्पृश्य जातियों को संविधान में अनुसूचित जातियाँ कहा गया, आज उन्हें ही सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक संदर्भों में 'दलित' कहा जाता है। 'दलित' का अर्थ और महत्व स्पष्ट करते हुए डॉ॰ रामचन्द्र लिखते हैं - " 'दलित' अस्मिताबोधक शब्द है। यह संबोधन उत्पीड़न और शोषण का बोध भी कराता है। शोषक वर्ग के कृत्यों को याद दिलाते रहने वाला क्रांतिकारी भाव भी इस शब्द में निहित है। इसमें चेतना की अनुगूंज भी है। 'दलित' शब्द सहानुभूति के बजाय दायित्वबोध का एहसास कराता है।"2

'दलित' शब्द का अर्थ नकारात्मक भले प्रतीत हो लेकिन दलित संस्कृतिकर्मियों ने इसे सकारात्मक अर्थ में स्वीकार किया है। जिस नाम पर हमेशा शोषण होता रहा हो उसी नाम को वे अपना हथियार बना रहे हैं। इस तरह 'दलित' शब्द शोषण के विरुद्ध आक्रोश, प्रतिकार और संघर्ष का प्रतीक है। 'दलित' का शाब्दिक अर्थ स्पष्ट करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं, "दलित शब्द का अर्थ है - जिसका दलन और दमन हुआ हो, दबाया गया है, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनष्ट, मर्दित, पस्त-हिम्मत, हतोत्साहित, वंचित इत्यादि।"3 ओमप्रकाश वाल्मीकि ने यहाँ 'दलित' शब्द की सारी अर्थ संभावनाओं को समेट लिया है, हालांकि यह

केवल शाब्दिक अर्थ है। सवर्ण हिंदी साहित्यकार इन्हीं शब्दार्थों के आधार पर हर जाति - वर्ग के शोषित - पीड़ित व्यक्ति को दलित कहते हैं जबकि दलित अस्मिता के संदर्भ में इसका अर्थ भिन्न है। केवल भारती लिखते हैं - ''वास्तव में 'दलित' वही व्यक्ति हो सकता है, जो सामाजिक तथा आर्थिक दोनों दृष्टियों से दीन हीन है। इससे भिन्न अर्थों में दलित शब्द को लेना 'दलित' शब्द का ही विकृतिकरण करना है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया, जिसे कठोर कर्म करने के लिए बाध्य किया गया, जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया और जिस पर सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, वही और सिर्फ वही दलित है।''4

'दलित' शब्द के अनावश्यक अर्थ विस्तार और फलतः दलित अस्मिता के आशय में भटकाव को कंवल भारती द्वारा नियंत्रित करने के प्रयास है उनका यह कथन, ताकि 'दलित अस्मिता' आंदोलन अपने सही सन्दर्भों से जुड़ा रहे। ओमप्रकाश वाल्मीकि इसमें स्त्री, मज़दूर तथा जनजातियों को भी शामिल करते हैं - ''दलित शब्द व्यापक अर्थबोध की अभिव्यंजना देता है। भारतीय समाज में जिसे अस्पृश्य माना गया वह व्यक्ति ही दलित है। दुर्गम पहाड़ों, वनों के बीच जीवनयापन करने के लिए बाध्य जनजातियाँ और आदिवासी इस दायरे में आती है। बहुत कम श्रम - मूल्य पर चौबीसों घंटे काम करने वाले श्रमिक, बँधुआ मजदूर दलित की श्रेणी में आते हैं।''5 'दलित' शब्द के सीमांकन को लेकर चल रही बहस के बीच ही कालांतर में 'स्त्री अस्मिता' तथा 'आदिवासी अस्मिता' नामक नई अवधारणाओं ने इस विवाद का अन्त कर दिया। भारतीय संविधान में उल्लेख्ति अनुसूचित जातियाँ ही दलित जातियाँ है। सदियों से शोषित - पीड़ित और जाति वादी असमानता का शिकार

दलित समुदाय अपनी अस्मिता के लिए गौतम बुद्ध, ज्योतिबाफुले, बाबा साहब डॉ॰ भीमराव अम्बेदकर आदि महापुरुषों से प्रेरणा लेकर संघर्ष करता रहा है। भारत के इतिहास में यह पहली बार हुआ है कि अखिल भारतीय स्तर पर इतना बड़ा एक रुप सामाजिक सांस्कुतिक आंदोलन जारी है और व्यापक स्तर पर इसे स्वीकृति भी मिल रही है। दलित साहित्य इसी अस्मिता आन्दोलन का एक हिस्सा है। सवर्ण समाज द्वारा किये जा रहे शोषण दमन, अन्याय अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष और समता - स्वतंत्रता - बंधुता पर आधारित समाज स्थापित करने के लिए दलित साहित्य की रचना की जा रही है, जबकि इस पर लगातार जातिवादी होने के आरोप लगते रहे हैं - "दलित साहित्य का जातिवादी दर्शन समस्त भारतीय रचनाकारों के जातिवाद विरोधी दर्शन से अलग है - न केवल अलग है बल्कि विपरीत दिशा में पूँछ उठाकर भागता है, यह चिंता का विषय है।"6 यह विडंबना ही है कि जाति के आधार पर हज़ारों सालों से चल रहे भेद - भाव और शोषण को तो ये आलोचक अनदेखा कर देते हैं, लेकिन उससे मुक्ति पाने के लिए किये जा रहे सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक प्रयासों को जातिवादी सिद्ध कर देते हैं।

दलित अस्मिता की प्रतिष्ठापना और सामाजिक समरसता के लिए कटिबद्ध दलित साहित्य को आलोचक विध्वंसक और अलगाववादी करार देते हैं जबकि इसके अध्ययन से ये आरोप निराधार साबित होते हैं। दरअसल ऐसे आलोचक तथाकथित मुख्यधारा के साहित्य को समरसतावादी सिद्ध करने का प्रयास कर दलित साहित्य को खारिज करते हैं। मुंशी प्रेमचंद की प्रगतिशीलता के संदर्भ में प्रायः उनके उपन्यास 'रंगभूमि' और उसके नायक चमार सूरदास का उदाहरण दिया जाता है। इस आधार पर मुंशी प्रेमचंद को दलित चेतना का साहित्यकार सिद्ध किया जाता है तथा दलित

अस्मिता विषयक समस्त लेखन को जातिवादी कहा जाता है। इस संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं - ''रंगभूमि का नायक 'सूरदास' गाँधीवादी विचारों का प्रतिबिंब है, न कि अंबेडकर चेतना का। इस अंतर को समझना जानना जरुरी है, तभी किसी सही निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। दलित चेतना के मूल में डॉ॰ अम्बेडकर विचार दर्शन है, जो गाँधी के सुधारवादी दृष्टिकोण से भिन्न है।''7

सबसे पहले तो सवर्ण विद्वानों ने दलित साहित्य को स्वीकृति नहीं दी, लेकिन इसकी व्यापक लोकप्रियता के सामने विवश होकर उन्हें स्वीकृति देनी पड़ी तो तथाकथित मुख्यधारा के साहित्यकारों - प्रेमचंद, नागार्जुन, अमृतलाल नागर को दलित चेतना-संपन्न साहित्यकार साबित करने का प्रयास किया जाने लगा। दलित विद्वानों ने 'दलित चेतना' से संपन्न किसी भी रचना को दलित साहित्य का हिस्सा तो स्वीकार कर लिया लेकिन 'स्वानुभूति' और 'सहानुभूति' का मुद्धा बना रहा। सहानुभूतिपरक दलित साहित्य वह है जो दलितों के विषय में गैर दलितों द्वारा लिखा गया हो, जबकि स्वानुभूतिपरक दलित साहित्य वह है जो स्वंय कोई दलित साहित्यकार अपनी स्वानुभूति के आधार पर लिखता है, फलतः यही वास्तविक दलित साहित्य माना जाता है। प्रो॰ मैनेजर पाण्डेय भी अनुभूति की प्रामाणिकता पर बल देते हैं:- ''मेरा मत है कि सहृदयता, करुणा और सहानुभूति के सहारे गैर - दलित लेखक भी दलितों के बारे में अच्छा साहित्य लिख सकते हैं और लिखा भी है। लेकिन सच्चा दलित वही है जो दलितों द्वारा अपने बारे में या सवर्ण समुदाय के बारे में लिखा जाता है, क्योंकि ऐसा साहित्य सहानुभूति से नहीं बल्कि स्वानुभूति से उपजा होता है।''8

दलित अस्मिता की सैद्धांतिकी में स्त्री व पुरुष का कोई भेद तो नहीं लेकिन व्यवहारिक स्तर पर दलित स्त्रियाँ प्रायः छूट ही जाती है। इसका एक कारण तो यह है कि वे पुरुषों की अपेक्षा कई गुना अधिक शोषण का शिकार है, दूसरे यह कि उनमें शिक्षा का अभाव ज्यादा है। तीसरा यह कि दलित समाज में भी वर्चस्व पुरुषों का ही है। इस संदर्भ में कौसल्या बैसंत्री लिखती है - ‘‘पुरुष प्रधान समाज औरतों का खुलापन बरदाश्त नहीं करता। पति तो इस ताक में रहता है कि पत्नी पर अपने पक्ष को उजागर करने के लिए चरित्रहीनता का ठप्पा लगा दे।’’9

दलित साहित्य बहुजन समाज की पीड़ा और दुःख-दर्दों को नहीं दिखाता बल्कि सामाजिक - अन्याय और शोषण के विरुद्ध उनके आक्रोष और विद्रोह को भी अभिव्यक्त करके उसमें दलित चेतना का विस्तार करता है। डॉ॰ माताप्रसाद मिश्र कहते हैं, ‘‘दलित साहित्य में जहाँ सामाजिक दर्द है, जातिवाद की पीड़ा है, शोषण तथा उत्पीड़न की कसक है, वहीं जाति उत्पीड़न तथा शोषण के कारणों की तलाश है। इसमें भाग्यवाद को अस्वीकार करने की भावना भी है। दलित साहित्य, छंद विधान भी तोड़ता है और जनभाषा का हिमायती भी है।’’10

रजत रानी ‘मीनू’ के अनुसार, ‘‘दलित साहित्य, दलित जीवन के यथार्थ को यथावत् सामने लाता है। दलित साहित्य के पक्ष में यह कहना गलत नहीं होगा कि अनुभूति की प्रामाणिकता, इस साहित्य में अपेक्षाकृत अधिक है क्योंकि दलित लेखक, घटना - परिघटनाओं का स्वयं साक्षी है। गैर दलितों के विपुल साहित्य भण्डार में दलितों पर नगण्य सामग्री है, वह भी काल्पनिक-अप्रामाणिक ज्यादा है। अनुभूति और प्रामाणिकता तो स्वयं दलित द्वारा सृजित साहित्य में ही सम्भव है। जनवादी साहित्य इत्यादि

वर्गीकरण से दलित - साहित्य को बाहर नहीं किया जा सकता क्योंकि यह भी भारतीय साहित्य का एक प्रकार है। अमेरिका का 'नीग्रो [Black] साहित्य', अफ्रीका का 'अश्वेत साहित्य', भारतीय परिवेश में दलित साहित्य है इसकी उर्जा का स्त्रोत दलित जातियों का जीवन क्षेत्र है।"11

स्पष्टत: दलित साहित्य, वह साहित्य है जो सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक क्षेत्रों में पिछड़े हुए उत्पीड़ित, अपमानित, शोषित जनों की पीड़ा को व्यक्त करता है। दलित साहित्य का केन्द्र बिन्दु दुःख है जिसे जाति एवं जन्म के कारण यह उपेक्षित समुदाय शोषण, उत्पीड़न और दमन की सामाजिक सांस्कृतिक प्रक्रियाओं के कारण भोगता है। हिंदी के अधिकांशतः दलित लेखकों ने अपने रचनात्मक लेखन में जन्म एवं जाति के कारण हो रहे शोषण, दमन और उत्पीड़न को केन्द्रीय आधार बनाते हुए दलित समाज के इन्हीं दुःखों से मुक्ति की परिकल्पना की है, चाहे वह ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' जैसी आत्मकथात्मक कृतियाँ हो अथवा मोहनदास नैमिशराय की 'अपने अपने पिंजरे' हो अथवा सूरजपाल चौहान कृत 'तिरस्कार' हो या शयौराज सिंह बेचैन की 'बेवक्त गुजर गया' आदि। इन लेखकों ने दलित समाज के उत्पीड़न का सब से बड़ा कारण वर्ण एवं जाति केन्द्रित भारतीय सामाजिक व्यवस्था को ही माना है जिस के कारण उन्हें सामाजिक जीवन की मुख्यधारा में हाशिये की जिन्दगी व्यतीत करनी पड़ती है।

दलित ही चमड़े के जूते बनाते हैं। मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने अपने पिंजरे' से यह स्पष्ट है - "हमारी बस्ती भी शहर की अन्य बस्तियों की तरह थी। बस्ती का नाम चमार गेट था, फिर चमार दरवाजा हुआ। बस्ती में हमारी जाति के लगभग अस्सी

घर थे। वे सभी मेहनत मजदूरी करते थे। कुछ जूतियाँ बनाते थे, कुछ चप्पलें और कुछ पल्लेदारी करते थे।''12

यहाँ चमड़े के कार्य से अभिप्राय मृत पशुओं के कारेबार से है। सामाजिक यथार्थ यह है कि जीवित पशु तो बलि के लिए मंदिर आ सकता है। परन्तु चमड़े की कोई वस्तु या भंगी जैसे पेशे अथवा कार्य से जुड़ा व्यक्ति पारंपरिक समाज में उत्कृष्ट और पवित्र समझे जाने वाले स्थल मंदिर या गुरुकुल और यहाँ तक कि अन्य जातियों के घरों के अन्दर प्रवेश भी नहीं करता है।

इसी प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि गैर - दलित, ब्राह्मण लड़की से प्रेम प्रक्रिया को अपनी रचना 'जूठन' में व्यक्त करते हैं। ''मिसेज कुलकर्णी ने गुसलखाने में गर्म पानी से नहलाया था मुझे लगातार एक अज्ञात भय सता रहा था कि यदि इन्हें इसी वक्त पता चल जाए कि मेरा जन्म एक अछूत जाति 'चूहड़ा' मेे हुआ है जो अंजाम क्या होगा ?..........सविता का मेरी ओर झुकते जाना मुझे भयभीत कर रहा था।''13

यहाँ स्पष्ट है कि इस भय का केंद्रीय कारण अस्पृश्यता है। दलित का किस तरह से शोषण होता है, यह डॉ॰ सूरजपाल चौहान की कहानी 'कर्ज' से स्पष्ट होता है। ''अशोक के कहने में भी गर्माहट उभर आई थी - 'कर्ज देकर पाँच गुना वसूल भी करते हैं ?

इस बार महाजन भभका था..........

'पाँच गुना देते हैं तो वह कर्ज लेते क्यों हैं.........?'

वह तपाक से बोला था।

'तुम लोग इन भोले भालों को धर्म का सबक पढ़ाकर कर्ज लेने के लिए मजबूर करते हो। उन्हे तैंतीस करोड़ देवताओं के चक्कर में डालकर उनका शोषण करते हो।''14

इसी तरह विपिन ने भी बिवाइयाँ में साफ साफ लिखा है कि "ये सच है कि चमार का बेटा चमार ही हो सकता है, लेकिन चमार ही चप्पल सिए उसे मैं नहीं मानता।"15

दलितों की बस्तियों का अलग होना, उनका वही कार्य जो पुश्तों से चला आ रहा है। उनका विरोध और भारतीय समाज एवं संस्कृति की उत्कृष्टता और पवित्रता के प्रतीक कुएँ, तालाब, नदी के घाट और गुरुकुल आदि केंद्रीय स्थलों की संरचनाओं का विरोध करता है तथा एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहता है जहाँ एक समाज को दूसरे समाज से अथवा एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से पवित्र तथा उत्कृष्ट संकेतों के आधार पर अस्पृश्य घोषित न किया जाए।

एक तरफ दलित का शोषण है तो दूसरी तरफ आज का पढ़ा- लिखा सभ्य समाज भी है जो इस बात को नहीं देखता। जयप्रकाश कर्दम की 'नो बार' से यह स्पष्ट होता है - "नहीं, न उन्होंने कभी पूछा और न कभी ऐसा मौका आया कि मैं उन्हें बतलाता दरअसल जाति-पाति और भेदभाव का यह रोग अनपढ़ लोगों में ही है। पढ़ा-लिखा समाज कहाँ जाति को मानता है। पढ़े-लिखे और शिक्षित समाज में व्यक्ति को जाति से नहीं, उसकी शिक्षा, योग्यता और उसकी आर्थिक स्थिति के आधार पर जाना और माना जाता है और जब सवर्ण लोग स्वयं जाति के भेदभाव से उपर उठकर हमारे साथ घुल मिल रहे हैं तो हमारे समाज द्वारा अपनी ओर से जाति का जिक्र करने का कोई औचित्य नहीं है।"16 इस भेदभाव को ज्ञान द्वारा समाप्त किया जा सकता है। इस बात को जयप्रकाश कर्दम 'छप्पर' में स्वीकार करते हुए कहते हैं - "मेरा प्रयास है कि समाज से यह अज्ञान और पिछड़ापन दूर हो तथा

निराशा और अंधकार के साए में जी रहे समाज में आशा और विश्वास पैदा हो।''17

एस.आर.हरनोर की 'दारोश' तथा अन्य कहानियाँ, शत्रुघ्न कुमार की 'हिस्से की रोटी', सुशीला टाकभौरे की 'नाट्यकृति', 'नंगा सत्य' आदि कृतियों को देखने से स्पष्ट होता है कि क्यों हिंदी साहित्य अथवा कहानी की परम्परा में दलित लेखक अपनी जातीय संस्कृति, सामाजिक संघर्ष एवं पहचान तथा विडंबनापूर्ण जिंदगी को रचना की विषयवस्तु बनाते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि के एक साक्षात्कार की पंक्तियां द्रष्टव्य है - ''दलित यदि गैर - दलित के पास आता है तो वह एक गुलाम की तरह आता है। गैर दलित जब दलित के पास जाता है तो मालिक की तरह उसका जातीय अहं, श्रेष्ठता का भाव उसके साथ होता है। उस के जातीय संस्कार उसके साथ होते हैं। सबकी बहुलता में वह दलित जीवन को नहीं देख पाता है।''18

ज्ञान के बिना दलित समाज की मुक्ति संभव नहीं है और ज्ञान का यह अभियान कहीं न कहीं बुद्ध के सूतपीटक के उस प्रसिद्ध कथन का भी हिस्सा है जो जन्म के बदले सामाजिक जीवन में कमी की महन्ता को स्थापित करता है -

''न जच्चा वसलोहोति, न जच्चा होती ब्राह्मणों।
कम्मुना वसलोहोति, कम्मुना होती ब्राह्मणों।।''19

अर्थात् जन्म से न कोई शुद्ध होता है, न कोई ब्राह्मण। कर्म से ही कोई शुद्ध होता है और कर्म से ही ब्राह्मण। इसीलिए जो भी सामाजिक विकास की प्रक्रिया में उत्कृष्ट कार्य करेगा, वह उत्कृष्टता का प्रतीक होगा और पवित्र उन समस्त संकेतों को माना जाएगा जो किसी भी समाज के विकास में सकारात्मक भूमिका निभाएँगा।

वस्तुतः दलित समाज ने भारतीय सामाजिक जीवन की मुख्यधारा के अन्दर एक लम्बी लड़ाई लड़ी है। वे बार बार गिरे हैं, फिर उठे हैं। उन्होंने अपनी तथा अपने समाज की समस्याओं को लेकर संघर्ष किया है। दलित साहित्य में नए लेखकों की जो कतार आई है तथा पुराने लेखकों ने जो नई पुस्तकें लिखी है उन्हें देख कर लगता है कि दलित साहित्य में सामाजिक संघर्ष पहचान की प्रक्रिया तीव्र हुई है तथा इस से लेखकों की रचनात्मक उर्जा को बल मिला है।

दलित अस्मितावादी लेखन पर प्रायः अल्पजीवी होने का आरोप लगता है। यह आरोप व्यर्थ है। दलित साहित्य न तो कला रुप को स्थापित करने के लिए रचा जा रहा है, न उन्हें बनाए रखने के लिए, बल्कि इस का उद्देश्य है दलित अस्मिता के सशक्तिकरण में योगदान करना। जिस दिन दलित अस्मितावादी आंदोलन का उद्देश्य पूरा हो जाएगा वास्तव में उस दिन इस विमर्श को एक नयी पहचान प्राप्त हो जाएगी। हिन्दी साहित्य के कई आंदोलन लम्बे समय से अप्रासंगिक हो चुके है लेकिन उनका पठ्न पाठन, अध्ययन - अध्यापन आज भी जारी है। ऐतिहासिक दृष्टि से वे महत्वपूर्ण हैं। अतः दलित अस्मितामूलक साहित्य के भविष्य को लेकर चिंता अनावश्यक नहीं है।

दलित-साहित्य भोगे हुए यथार्थ का धधकता हुआ प्रामाणिक दस्तावेज है। वह अनुभव की आँच पर तपकर निकला हुआ सत्य है। दलित साहित्य में दलितों के तमाम कष्टों, यातनाओं, उपेक्षाओं, प्रताड़नाओं के भोगे हुए यथार्थ के आधार पर प्रामाणिक एवं मार्मिक अभिव्यक्ति मिली है। दलितों का मानना है कि उनका उत्थान केवल संघर्ष के द्वारा होगा। कहीं कहीं दलित साहित्य दलित राजनीति से प्रभावित जान पड़ता है। फलस्वरुप असंतोष एवं आक्रोश की परिणति

अजातिवादी क्रोध, प्रतिहिंसा और घृणा के रुप में भी सामने आयी है जो निश्चित रुप से चिन्तनीय है किन्तु अब देखा जा रहा है कि दलित साहित्य भी सहजता की ओर बढ़ रहा है। दलित कथाकारों ने दलित समुदाय की पीड़ा और आक्रोश का बेबाक चित्रण किया है। 'हत्यारे' कहानी में दलितों में व्याप्त अंधविश्वास को बखूबी रेखांकित किया गया है। अस्मितावाद से शुरु कर सार्वभौम मनुष्यता तक पहूँचना उनका गन्तव्य है। 'सलाम', 'खानाबदोश', 'बह्मस्त्र' कहानियों में द्विज पात्र दलितों का साथ देना चाहते हैं लेकिन आधी दूर चलकर ठहर जाते हैं। अभी उन्हें वैचारिक व भावात्मक रुप से पुख्ता होने में समय लगेगा। 'घुसपैठिया' कहानी में लेखक ने मेडिकल कॉलेज में दलित छात्र की दशा को रेखांकित किया है जहाँ वह शोषण के कारण आत्महत्या कर लेता है, जिसे लेखक हत्या के रुप में देखता है। इनकी कहानियों में दलित पात्रों में हीनता बोध गहराई से पैठा हुआ है, वे कई बार जाति छुपाकर जीवनयापन करते हैं। 'मै ब्राह्मण नहीं हूँ' का मोहनलाल शर्मा अपनी जाति छुपाकर रह रहा है। उसके बेटे की शादी गुलजारी लाल शर्मा की बेटी से तय हो चुकी है। जब उसकी बहन आकर भेद खोल देती है कि वह शर्मा नहीं मिरासी है तो उसमें हीनता की भावना का पुनः समावेश हो जाता है। 'कूड़ाघर' कहानी में अजब सिंह का परिवार किराये के मकान से इसलिए बेदखल कर दिया जाता है क्योंकि मकान मालिक को उसकी जाति का पता चल जाता है। 'प्रमोशन' कहानी में मजदूर संगठनों के बीच पसरे जातिवाद का खुलासा किया है। सुरेश स्वीपर से मजदूर बन जाता है। वह 'लाल झण्डा यूनियन' का मेम्बर बनकर उसकी गतिविधियों में जोर शोर से शामिल होता है। वह कामरेड सम्बोधन से रोमांचित होता है। मजदूर मजदूर भाई के नारे का अर्थ उसे तब समझ मे आता है जब उसके हाथ से बँटने वाले दूध को

कोई लेने नहीं पहुँचता है। लोगों की नज़र में वह आज भी स्वीपर है। यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि दलितों में भी परस्पर ऊँच - नीच की भावना व्याप्त है। अन्य दलित भंगी को अस्पृश्य मानते हैं, यह विडम्बना है।

2 1वीं सदी के मुख्य दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि यह समझते हैं कि प्रतिशोध लेने वाला अपने पूर्ववर्ती जैसा हो जाता है। जातिवादी व्यवहार के बदले अगर जातिवादी व्यवहार किया जाता है तो उसका क्रम कैसे टूटेगा ? 'मुम्बई काण्ड' नामक कहानी में वाल्मीकि जी ने यही मुद्दा उठाया है। ''मुम्बई शहर का एक जागरुक कार्यकर्त्ता डॉ॰ अम्बेडकर की मूर्ति को अपमानित करने फिर अम्बेडकर समर्थकों पर गोली चलाये जाने से अत्यंत व्यथित है वह बदला लेना चाहता है ओर विचार करता है कि गाँधी जी की मूर्ति को जूतों की माला पहनायें। वह इसको अंजाम देने रात्रि में अकेले जाता है रात्रि के सन्नाटे में उसे गाँधी जी की मूर्ति मासूमियत से भरी दिखाई पड़ती है वह रुक जाता है तभी उस में अपमान व प्रतिशोध की भावना तीव्र हो जाती है अखबारों की सुर्खियों व समाचारों में दिखाये गये रक्तरंजित चेहरे दिखाई देने लगते हैं। वह घृणा से मूर्ति को देखता है। मूर्ति के चेहरे पर उसे उपेक्षा भाव दिखाई देने लगा है। लेकिन कहानी का अंत यही नहीं होता। सुमेर का द्वंद देर तक चलता रहता है उसकी परिणति इस कौंध में होती है कि मुम्बई में किसी ने मेरे विश्वास पर चोट की और मैं यहाँ किसी की आस्था पर चोट करने जा रहा हूँ। ....नहीं मैं एक गुनाह का बदला दूसरे गुनाह से नहीं लूँगा।''2 0

'छतरी' कहानी में चौधरी का कथन दलित बालक के प्रति सोच को उजागर करता है - ''बेकार की बात मत करो। इसे किसी काम धन्धे में लगा ....दो रोटी कमायेगा।...........पढ़ लिखकर

क्या करेगा न घर का रहेगा न घाट का।''21 प्रहलाद चन्द दास की कहानी ''एकै मटिया एक कुम्हारा'' जाति अभिमानी ब्राह्मणों के पाखण्ड का कच्चा चिट्ठा खोलती है। साथ ही जाति व्यवस्था की त्रासदी से गुजरते परिवार की मनः स्थिति पर प्रकाश डालती है। कहानी का मुख्य पात्र धर्मान्तरण करना चाहता है क्योंकि वह शेड्यूल्ड कास्ट बच्चा पैदा करना नहीं चाहता है।

वस्तुतः जातिगत कट्टरतावाद खतरनाक है चाहे वह ब्राह्मणवाद हो या दलितवाद। दलित साहित्यकारों का उद्देश्य जाति व्यवस्था को उच्छेद कर समतामूलक समाज की स्थापना होना चाहिए। लेकिन जहाँ वे अपनी जाति को मजबूत बनाकर प्रतिशोध के स्तर पर खड़े होते हैं, वहाँ समता की स्थापना अकल्पनीय है। उदय प्रकाश के उपन्यास 'पीली छतरी वाली लड़की' में जाति को उभारने से होने वाली समस्याओं की ओर इशारा किया गया है। कहानी का नायक जो दलित है अपनी ब्राह्मण प्रेमिका अंजली जोशी से विवाह करना चाहता है। यहाँ जाति के स्तर पर प्रेम हावी हो जाता है। वस्तुतः जातिगत समस्या का हल जाति को उकसाने में नहीं आपसी प्रेम में है।

21वीं सदी के दलित कथाकारों में दलित चेतना से सम्बद्ध कहानियों तथा उपन्यासों में सत्य प्रकाश का 'जस तस भई सवेर', मोहनदास नैमिशराय कृत 'मुक्तिपर्व', इन्द्र बसावड़ा कृत 'घर की राह', दयानन्द बटरोही कृत 'सुरंग', सुशील टाकभौर का 'टूटता वहम', सूरजपाल चौहान कृत 'हैरी कब आयेगा', ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत 'पुनर्वास' तथा कुसुम वियोगी कृत 'चार इंच की कलम' इत्यादि बहुचर्चित कृतियां है। आज दलित साहित्य ने साहित्य के केन्द्रीय आख्यान के रुप में वर्ण विरोधी आख्यान को स्थापित करने का प्रयत्न किया है जिससे दलित अस्मिता को

सफलतापूर्वक रेखांकित किया जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि दलित साहित्यकार अपनी मौलिकता पर जोर देते हुए अपने मूलाधार से जुड़े रहें।

निःसन्देह देश में जातिवाद की समस्या भयावह है। आज दलित साहित्य में जड़ रुढ़ जातिवादी सामाजिक संरचना को बदलने की शक्ति निहित है। सदियों से शोषण का शिकार दलित वर्ग संघर्षरत है कि वह भी स्वतंत्रता, समानता व सम्मान को प्राप्त कर सके जबकि प्रकृति ने किसी के साथ भेदभाव नहीं किया तो समाज में भेदभाव क्यों ? आज दलित साहित्य सहजता की ओर बढ़ रहा है। समाज में शोषित वर्ग की समस्याओं को सामने लाने वाले दलित साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है। 21वीं सदी के कथा साहित्य में दलित कथाकारों ने दलितों की व्यथा, उत्पीड़नता तथा कारुणिक अवस्था का व्याख्यान तो किया ही है, साथ ही दलितों में एक चेतनता जागृत करने का प्रयास भी किया है जिस से उन्हे अपने भीतर चेतनता एवं सजगता का बोध हुआ। कहा जा सकता है कि 21वीं सदी के कथा साहित्य में युगों से पद दलित, पीड़ित, व्यथित, दलित समाज की अन्तरव्यथा और आक्रोश की भावना अभिव्यक्त हुई है। परिणामस्वरुप साहित्य में नये नये मूल्यों का चित्रण हुआ है। यह हिन्दी साहित्य के लिए भी एक अच्छा संकेत है क्योंकि पारंपरिक पाठ से अब हिंदी का पाठक वर्ग ऊब रहा है तथा दलित पाठ अपनी विषयवस्तु और नए स्वरुप के कारण पाठकों को आकर्षित कर रहा है।

संदर्भ

1. बाबा साहेब डॉ॰ अम्बेडकर: सम्पूर्ण वाड्.मय, खण्ड 9, (अस्पृश्यता अथवा भारत में बहिष्कृत बस्तियों के प्राणी), डॉ॰

अम्बेडकर प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, पाँचवां संस्करण: अप्रैल 2013, पृ. 22-23।
2. डॉ॰ रामचन्द्र: दलित लेखन के अन्तर्विरोध, संपादकः डॉ॰ रामकली सर्राफ, शिल्पायन, दिल्ली, सं. 2012, पृ. 187।
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि: दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2001, पृ.13। 4. कंवल भारती: दलित साहित्य की अवधारणा, बोधिसत्व प्रकाशन, रामपुर, उ॰प्र॰, प्र. सं. जनवरी - 2006, पृ. 15।
5. ओमप्रकाश वाल्मीकि: दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2001, पृ. 14।
6. कृष्णदत्त पालीवाल: दलित साहित्य: बुनियादी सरोकार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ. 68।
7. ओमप्रकाश वाल्मीकि: मुख्यधारा और दलित साहित्य, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 27-28।
8. मैनेजर पाण्डेय: चिन्तन की परम्परा और दलित साहित्य, साहित्य सदन, गाजियाबाद, सं. 2010, पृ. 105।
9. कौसल्या बैसंत्री: दोहरा अभिशाप, परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1999, पृ. 08।
10. माता प्रसाद मिश्र: शिखर की ओर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2010, पृ. 288।
11. रजत रानी 'मीनू': नवे दशक की हिन्दी दलित कविता, साहित्य सदन, गाजियाबाद, सं. 2011, पृ. 04।
12. मोहनदास नैमिशराय: अपने अपने पिंजरे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2007, पृ. 17।
13. ओमप्रकाश वाल्मीकि: जूठन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2001, पृ. 115।

14. डॉ॰ सूरजपाल चौहान: हिन्दी के दलित कथाकारों की पहली कहानी, भावना प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2003, पृ. 31।
15. वही, पृ. 35।
16. जयप्रकाश कर्दम: नो बार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2004, पृ. 70।
17. जयप्रकाश कर्दम: छप्पर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2006, पृ. 78।
18. रजत रानी 'मीनू': नवे दशक की हिन्दी दलित कविता, साहित्य सदन, गाजियाबाद, सं. 2011, पृ. 13।
19. डॉ॰ एन सिंह: दलित साहित्य के प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ. 46।
20. ओमप्रकाश वाल्मीकि: मुम्बई काण्ड, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2010, पृ. 15।
21. ओमप्रकाश वाल्मीकि: छतरी, भावना प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2013, पृ. 15।

हिंदी में हाइकु : शक्ति और संभावना

डॉ.मनोज पाण्डेय
विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग
रा. तु.म. नागपुर विश्वविद्यालय
अमरावती मार्ग, नागपुर-440033
मो. 9595239781

हाइकु जापानी साहित्य की एक प्रमुख काव्य विधा है। सत्रहवीं शताब्दी में जापान में प्रारंभ हुई यह विधा अपने शिल्प और सौंदर्य के कारण बड़ी जल्दी ही दुनिया के साहित्य- पटल पर समादृत हो गयी। लघु रुप के चलते इसकी विशिष्ट पहचान है।महज कुछ वर्णों में अभिव्यक्त दुनिया के सबसे महत्वपूर्ण काव्य- शिल्प में इसकी प्रतिष्ठा है। ऐसा माना जाता है कि जापानी साहित्य के सबसे प्राचीन ग्रंथ 'कोजिकि' में इस शिल्प का प्रयोग हुआ है। जापानी कविता के प्रतिनिधि रूपों चोखा, ताका और सेदोका में कोजिकि परंपरा का निर्वाह मिलता है। इसमें ताका जो 5-7-5-7-7 यानि 31 वर्णों की कविता है, संभवतः इसी के प्रारंभिक 5-7-5 वर्णों को लेकर कविता का जो स्वतंत्र रूप विकसित हुआ, वह हाइकु के नाम से जाना गया।इसको प्रतिष्ठित करने का श्रेय कवि मात्सुओ बाशो को जाता है। उन्हीं से इसकी शुरुआत मानी जाती है। कालांतर

में यह इतना प्रचलित हुआ कि जापानी साहित्य की सीमाओं को लांघकर विश्व साहित्य की एक लोकप्रिय विधा बन गया।

कलेवर में हाइकु छोटा दिखता है, पर इसकी तीक्ष्णता बहुत अधिक होती है। कहा जाता है कि यह अनुभूति के चरम क्षण की कविता है। जब कवि, बोध और चिंतन की चरमावस्था में होता है तभी इसका प्रस्फुटन होता है। बहुत ही कम शब्दों में किन्तु अपने - आपमें एक पूरा चिंतन लिए हुए यह आकार लेता है। वास्तव में कवि के शब्द-चयन और प्रयोग की असली पहचान हाइकु लेखन में ही होती है। सैद्धांतिक रूप से विधागत अनुशासन का पालन करते हुए महज कुछ वर्णों में जीवन और कवित्व के निचोड़ को अभिव्यक्त कर देना हाइकु की कसौटी है। शब्द- ब्रह्म की शक्ति का वास्तविक एहसास भी मुझे लगता है कविता की इसी विधा में संभव है। और विशेष उल्लेख्य यह है कि 5-7-5 के इस वर्णानुबंध में एक ऐसी संगति होती है कि तीनों पंक्तियां अपने में पूर्ण स्वतंत्र होने के बावजूद समग्र प्रभाव की सृष्टि करती हैं। अर्थात प्रभावान्विति में तीनों की योगकारी भूमिका होती है। इसमें शर्त होती है कि प्रथम वर्ण से लेकर आखिरी वर्ण तक की संगति ऐसी होनी चाहिए कि उनमें अन्तर्निहित संबंध स्पष्ट हो। यहां भाव और भाषा का ऐक्य शब्द ही नहीं, वर्ण के स्तर पर भी अत्यावश्यक होता है। पूरे सत्रह वर्णों को मिलाकर ही पूर्ण रस-परिपाक की स्थिति बने अर्थात कवि के भाव का पूर्ण बिम्ब बने, यह बेहद जरूरी होता है। यदि इसमें कहीं असंगति हुई तो हाइकु अपनी प्राणवत्ता खो देगा।

यह भी कि हाइकु लिखने के पूर्व उसकी रचना- प्रविधि का सम्यक् बोध जरूरी है। इसके लिए कवित्व के साथ-साथ गहन अभ्यास होना चाहिए। कवि का विषयबोध और संवेदनक्षम होना जितना आवश्यक है उतना ही जरूरी है भाषिक-विधान की पहचान

और हाइकु का प्रविधि- बोध।इसकी शिल्पगत विशिष्टता की जितनी गहरी समझ और पकड़ कवि को होगी, उसकी अभिव्यक्ति उतनी ही सफल और अर्थवान होगी। जो कविगण एक पंक्ति को 5-7-5 की तीन वर्ण- पंक्तियों में तोड़कर हाइकु रचने का भ्रम पालते हैं, उनका प्रयास बालिश ही कहा जाएगा।अच्छे हाइकुकार को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यह तुकांत रचना नहीं है। स्वाभाविक रूप से तुकांतता आती है तो श्रेष्ठ है किन्तु बरबस तुकांतता लाने की कोशिश अनावश्यक है, क्योंकि तुकांतता हाइकु रचना की अनिवार्य शर्त नहीं है।

हाइकु विशेषज्ञ विद्वान प्रो. सत्यभूषण वर्मा ने हाइकु को क्षण विशेष की अनुभूति की कलात्मक अभिव्यक्ति बताते हुए कहा है " आकार की लघुता हाइकु का गुण भी है और इसकी सीमा भी। अनुभूति के क्षण की अवधि एक निमिष, एक पल अथवा एक प्रश्वास भी हो सकता है। अतः अभिव्यक्ति की सीमा उतने ही शब्दों तक है जो उस क्षण को उतार पाने के लिए आवश्यक है। हाइकु में एक भी शब्द व्यर्थ नहीं होना चाहिए। हाइकु का प्रत्येक शब्द अपने क्रम में विशिष्ट अर्थ का द्योतक होकर एक समन्वित प्रभाव की सृष्टि में समर्थ होता है। किसी शब्द को उसके स्थान से च्युत कर अन्यत्र रख देने से भावबोध नष्ट हो जाएगा। हाइकु का प्रत्येक शब्द एक साक्षात् अनुभव है। कविता के अंतिम शब्द तक पहुंचते ही एक पूर्ण बिम्ब संजीव हो उठता है।"   इस तरह हाइकु में प्रत्येक शब्द का,वर्ण का विशिष्ट महत्व है।प्रत्येक वर्ण -शब्द अपने क्रम में एक विशिष्ट अर्थ का बोधक होता है। सीमित शब्दों में पूर्ण बिम्ब की सृष्टि अर्थात अर्थोद्बोधन की पूर्ण सामर्थ्य ही हाइकु की विशेषता है। इसीलिए कहते हैं कि ये कविताएं पाठकों के मन में पूर्णता प्राप्त करती हैं।

यद्यपि कम शब्दों में कहने के और भी कई फार्म (रुप) कविता में प्रचलित रहे हैं जैसे कैप्सुल कविता, क्षणिका आदि, किन्तु हाइकु का शिल्पगत पैरामीटर इनसे भिन्न है। यहां वर्णानुशासन का अतिक्रमण किसी भी रुप में मान्य नहीं है। 5-7-5 वर्ण की तीन पंक्तियां, फिर तीनों पंक्तियों का पूर्ण स्वतंत्र होना और प्रत्येक पंक्ति का एक अर्थवान वाक्य होना, हाइकु की अनिवार्य शर्त है। यही कविता के अन्य रूपों से इसे अलग बनाता है। कुल जमा 17 वर्णों और अधिकतम10 शब्दों में अभिव्यक्ति का यह पैटर्न अपनी संरचनात्मकता ही नहीं,अर्थवत्ता में भी विशिष्ट होता है। डॉ. मिथिलेश अवस्थी ठीक कहते हैं ' उदात्त प्रयोजन और तीव्र सम्प्रेषणीयता का चरित्र इस विधा की मौलिकता है। अनुभूति की व्यापकता और अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता के बीच शब्द- शिल्प का कौशल इसकी आवश्यक शर्त है।'

सिद्धांततः हाइकु के सत्रह वर्णों में दिशाबोध, मार्गक्रमण और निष्कर्ष पिरोया होता है। 5-7-5 के क्रम में प्रथम पंक्ति अर्थात 5 वर्णों में विषय का दिशाबोध, द्वितीय पंक्ति अर्थात 7 वर्णों में मार्गक्रमण यानि विषय का विस्तार और अंतिम पंक्ति अर्थात 5 वर्णों में निष्कर्ष का संकेत निहित होता है। तीनों पंक्तियां समन्वित रूप से काव्य-बिम्ब उपस्थित करती हैं, जो कि किसी भी कविता की पहली और अनिवार्य शर्त होती है। इस तरह हाइकु अपने अंतिम शब्द पर जाकर ही चरम पर पहुंचता है। साथ ही, यदि हाइकु का समापन पूर्ण विराम की जगह विस्मयादिबोधक चिह्न से कर दिया जाए तो इसका प्रभाव और भी घनीभूत हो उठता है।

जो कविगण इसके लघु विन्यास के कारण जल्दबाजी में याकि कवित्व- मोह के चलते कुछ भी ऊल- जलूल लिखने की गलती करते हैं, वे वास्तव में इस कविता के हितैषी नहीं होते। उन्हें

यह बोध होना चाहिए कि जो काव्य - रुप जितना लघु दिखता है, वहां उतने ही अधिक धैर्य और अनुशासन की अपेक्षा होती है। कम शब्दों की अभिव्यक्ति के कारण यह आसान नहीं, एक जटिल रूप भी कहा जा सकता है।

जहां तक विषय की बात है, यों तो हाइकु को प्रकृतिपरक विधा कहा गया है। प्रकृति से इसका गहरा नाता रहा है, किन्तु ऐसा नहीं है कि इसमें केवल प्रकृति की सुषुमा ही अभिव्यक्त होती है। हाइकु साहित्य की अन्यान्य विधाओं की तरह जीवन के सभी पक्षों को रेखांकित करते हैं। जीवन वैविध्य से जुड़े ऐसे क्षणिक अनुभव जिन्हें प्राय: विस्मृत कर दिया जाता है, उन्हें हाइकुकार तरतीब से सॅंजोता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि यह क्षणजीवी विधा है, प्रत्युत पल-प्रतिपल को जीवंत और संप्रेष्य बनाने की बेचैनी इसको प्राणवंत बनाती है।इस तरह कह सकते हैं कि रचनाधर्मिता की 'माइक्रो' परख और पकड़ इस कविता की खूबी है। यह भी कहने की गरज नहीं कि खंड-खंड होते जा रहे जीवन के पलों को सहेजने का वक्त इंसान के पास जिस कदर निरंतर कम होता जा रहा है, उसी अनुपात में उसकी संवेदना का आयतन भी सिकुड़ता जा रहा है, यहां तक कि उसके संवाद की परिधि भी। ऐसे में हाइकु जैसी विधा बहुत प्रासंगिक है।

मोटे तौर पर हाइकु की निम्न विशेषताएं कही जाती हैं-

हाइकु अनुभूति के चरम क्षण की कविता है। इसमें अनुभूति के क्षण की महत्ता का बखान है, विश्लेषण नहीं। लघुता हाइकु का गुण भी है और सीमा भी। इसमें प्रत्येक शब्द विशिष्ट होता है, उन्हें इधर-उधर नहीं किया जा सकता।

उदात्त प्रयोजन और संप्रेषणीयता इसकी अनिवार्य शर्त है। शब्दों की मितव्ययिता और भाव की उदात्तता इसकी मौलिकता है। जिज्ञासा और चमत्कार इसका मूल प्रतिपाद्य होता है

हिन्दी में इसकी शुरुआत कविकुल शिरोमणि श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर से मानी जाती है। जिन्होंने पहली बार 1916 में बाशो की दो कविताओं का अनुवाद प्रस्तुत किया और इसे दुनिया की सबसे छोटी कविता कहा।आगे चलकर यह हिन्दी कविता की लोकप्रिय पहचान बनती गयी। डॉ. सत्यभूषण वर्मा, डॉ. भगवत शरण अग्रवाल,कमलेश भट्ट कमल, डॉ. जगदीश व्योम, डॉ. रामनारायण पटेल, डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव, डॉ. गोपाल बाबू शर्मा, डॉ. मिथिलेश अवस्थी, डॉ. सुरेन्द्र वर्मा, डॉ. शैल रस्तोगी, डॉ. सुधा गुप्ता,पारस दासोत, रामनिवास पंथी, डॉ. विद्या बिंदु सिंह, महेश सोनी, अंशु सिंह, ओमप्रकाश यती, नवलकिशोर बहुगुणा, शम्भूशरण द्विवेदी, रामनिवास मानव आदि हिन्दी की हाइकु यात्रा को समृद्ध करने वाले सशक्त हस्ताक्षर हैं।

यहां हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने वाली कुछ हाइकु कविताओं की चर्चा अभीष्ट है। डॉ. जगदीश व्योम एक चर्चित हाइकुकार हैं। उन्होंने हाइकु के शिल्पानुशासन का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया है। देखें - 'छिडेगा जो युद्ध/ रोएगी मानवता/ हंसेंगे गिद्ध।' यहां मानव- जाति के विनाश के कारण पर तो व्यंग्य है ही, उसकी मूर्खता पर भी करारा प्रहार है। मानवता के रोने और गिद्धों के हंसने का प्रतीक कितना सटीक है। मनुजता के विध्वंस के लिए खुद मानव ही जिम्मेदार है, वही अपनों का संहार करता है किन्तु उसकी इस हिंसा- वृत्ति में गिद्धों का हित छिपा हुआ है, इससे उन्हें भोजन मिलेगा, इसलिए स्वाभाविक है वे हंसेंगे। वास्तव में यहां गिद्धों का हंसना मानव- जाति की आत्महंता हिंसक-वृत्ति पर

कटाक्ष है। इसी तरह अंशु सिंह का यह हाइकु ' रावण जला / पाप फैलता गया/ धूएं के साथ।' मानव- समाज पर करारा व्यंग्य है। सच्चाई के लिए बुराई के प्रतीक रावण को हर साल जलाने की प्रथा है, किन्तु होता इसके विपरीत है। हर साल रावण जलाया जा रहा है लेकिन पाप कम नहीं हो रहा है बल्कि उसके धूएं के साथ दिनों-दिन बढ़ता ही जा रहा है। इस तरह सद्प्रवृत्तियों की बजाय दुष्प्रवृत्तियां ही समाज में घर करती जा रही हैं।

प्रकृति कविता की सबसे मनोहारी भूमि है। प्रकृति के प्रांगण में ही जीवन का स्पंदन होता है। प्रकृति की हर छटा कवियों को विशेष आकर्षित करती रही है। यह हाइकु काव्य का भी प्रिय विषय रही है। हाइकु प्रकृति को माध्यम बनाकर मनुष्य की भावनाओं को बड़ी संजीदगी के साथ प्रकट करता है। मिथिलेश अवस्थी प्रकृति के जरिए मानवीय अनुभूतियों को वाणी देते हैं। दो हाइकु देखें - 'आई बरखा/ हुई तृप्त धरती/ नया जीवन' तथा 'मेघा बरसे/ धरा मन पुलके/ गति आरंभ।' यहां 'नये जीवन' और 'गति आरंभ' दोनों बड़े अर्थगर्भित प्रयोग हैं। कवि प्रकृति की अंगड़ाई को , उसके परिवर्तन को, बरखा बहार आने को जीवन- प्रवाह का अनिवार्य तत्व बताते हुए धरती की तृप्ति में जीवन की नवता का स्वप्न देखता है। दरअसल इसी में जीवन-विकास की गति भी समाहित है। बरखा में ही वह शक्ति है जो नवांकुरण का कारक भी है और जीवन के उत्साह और उल्लास का जरिया भी। हम जानते हैं कि बिना बारिश के जीवन की क्या दशा होती है, ज़िन्दगी रेत बन जाती है। मेघ हरियाली के वाहक होते हैं, उनके आने से जनजीवन ही नहीं, धरती भी प्रफुल्लित हो उठती है। किसान मेघ के इंतजार में टकटकी लगाए बैठे रहते हैं क्योंकि मेघ के बरसने पर ही जीवन-प्रवाह का आरंभ होता है।

इसी तरह डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव अपने हाइकु में प्रकृति का सुंदर दृश्य उपस्थित करते हैं। ' खिले कमल/ जलाशय ने खोले/ सहस्र नेत्र!' यहां अंतिम शब्द 'सहस्र नेत्र' का प्रयोग बड़ा रोचक है। कवि की कल्पना अद्भुत है। जलाशय में कमल के खिलने को किस तरह उसने नेत्र के रूपक में बांधा है। जलाशय में खिले हजारों कमल ऐसे दिख रहे हैं मानों जलाशय ने अपनी हजार आंखें खोल दीं हैं और वह अप्रतिम रूप से सुंदर लग रहा है। ऐसे ही डॉ. गोपाल बाबू शर्मा प्रकृति की मनोदशा का सुंदर वर्णन करते हैं। वे लिखते हैं 'तपती छांव/ पनघट उदास/ कहां वे गांव।' यहां ग्रामीण प्रकृति के बहाने ग्राम्य -संस्कृति को स्मरण किया गया है। सचमुच अब वे गांव नहीं रह गए जहां पनघट पर हर्षोल्लास के क्षण होते थे,तपती धूप में छांव सुकुन देती थी, अनजाने- अपरिचित भी पाहुना हुआ करते थे। लगता है हमारे गांवों को कोई बुरी नजर लग गई है, गांवों से वह लगाव, अपनत्व गायब हो गया है जो हमारी संस्कृति का प्राण हुआ करता था, इसकी जगह अब गांवों में विरानगी पसरी हुई है, गांव उदास हो गये हैं, वहां आपस में ऐसा अबोला पसरा हुआ है मानो एक- दूसरे के शत्रु हों। उदासी की इन स्थितियों में जगदीश व्योम का यह हाइकु संबल प्रदान करता है-' क्यों तू उदास/ दूब अभी है जिंदा/ पिक टूटेगा।' यहां दूब लोक जीवन का प्रतीक है, आशा और उम्मीद की किरण है। अकाल के समय, मनुष्य की दुष्प्रवृत्तियों के हावी होने के समय भी दूब जैसी आशा की किरण कहीं दबी- छिपी बची रहती है जो मनुजता के नये इतिहास का संकेत देती है।

पारिवारिक स्मृतियों को उकेरता महेश सोती का हाइकु भी हिन्दी का एक श्रेष्ठ हाइकु है। ' अस्थियां बहा/ चले तो अम्मा बोली/ दो पल बैठो!' मां की अस्थियां विसर्जित करके बेटा जब

चलने लगा तो मां की ममता किस तरह पुकार उठी कि दो पल और ठहरो। यह दो पल ठहरना मां के ममत्व को तो रेखांकित कर ही रहा है , उसकी बेबसी भी बयां कर रहा कि कुछ पल और बेटे का साथ मिले। इसी तरह ओमप्रकाश यती का हाइकु रिश्तों की कसक को उजागर कर रहा है। 'मैं न पहुंचा/ मिट्टी हो गए पिता/ राह देखते।' यहां मानवीय संबंधों की मर्मांतक पीड़ा व्यक्त हुई है। बेटे की विवशता, उसका अपराधबोध यहां स्पष्ट है। यह आज के वैश्विक समाज का यथार्थ है। वैश्वीकरण ने दुनिया को विश्वग्राम में जरूर तब्दील कर दिया है किन्तु इंसान की विवशता भी उसी अनुपात में बढ़ी है, वह यंत्रवत हो गया है, उसकी मंजिल इतनी बड़ी होती गई है कि उसके पास अपनों के लिए भी वक़्त नहीं रह गया है। पूरी दुनिया मुट्ठी में होने के बावजूद मनुष्य लाचार है। उसके पास उसका अपना कुछ भी नहीं बचा है, यहां तक कि समय भी! वह चाहते हुए भी अपनों के सुख-दुख का साथी नहीं बन पा रहा है, यहां तक कि पिता की अंत्येष्टि में भी शामिल नहीं हो पाता। आर. पी.शुक्ल ने भी वैश्वीकरण की इस बेबसी को बड़े ही मार्मिक ढंग से उकेरा है। देखें 'मां है गांव में/ बेटा है शहर में/रिश्ता फोन में।' आज की भौतिक प्रगति की सच्चाई यही है। 'रिश्ता फोन में' पंक्ति द्वारा मानवीय रिश्तों में बेतार के फोन की उपस्थिति और उसके महत्व को कवि ने बिल्कुल सही रेखांकित किया है। और, अफसोसजनक तथ्य यह है कि मनुष्य चाहकर भी इससे छुटकारा नहीं पा सकता। चाहे-अनचाहे यह उसके जीवन का जरूरी हिस्सा बन चुका है।

श्रम-दर्शन ही जीवन का मूल दर्शन होता है। इसी में जीवन के उत्कर्ष-अपकर्ष की कथा दर्ज रहती है। डॉ. मिथिलेश अवस्थी लिखते हैं - ' पहाड़ी नदी/ स्वयं मार्ग बनाती/ बिना सहारे'। इस

हाइकु के माध्यम से कवि श्रम-दर्शन की महत्ता स्थापित करता है। जिस प्रकार पहाड़ी नदी कंकरीले-पथरीले मार्ग में बिना किसी सहारे के अपने श्रम से अपनी दिशा और अपना गंतव्य तय करती है, उसी प्रकार मनुष्य की जिजीविषा व उसका संघर्ष भी उसके मार्ग का निर्धारण करता है। इसी तरह बुझते चिराग का श्रम-सौंदर्य भी दृष्टव्य है - ' सिखाते हमें/ बुझते चिराग भी/ श्रम संघर्ष।' कवि ने बुझते चिराग के संघर्ष का सुंदर प्रतीकात्मक प्रयोग किया है। कहना न होगा, बुझते चिराग का श्रम-संघर्ष सिर्फ ज़िन्दगी और मौत के संघर्ष का प्रतीक नहीं है बल्कि इसमें जीवन का वह फलसफा भी छिपा हुआ है जो जीवनेच्छा की कहानी कहता है।

कविता नूतनता की प्रेरक होती है। उसमें जीवन का संगीत होता है। लोक कल्याण की भावना होती है। उसमें सत्य की आराधना होती है। कमलेश भट्ट 'कमल' सत्य की प्रतिष्ठा को एक हाइकु में इस तरह अभिव्यक्त करते हैं ' तोड़ देता है/ झूठ के पहाड़ को/ राई-सा सच।' यहां सत्य की अपराजेयता को कवि ने बहुत सही अंकित किया है। कहते हैं सत्य परेशान हो सकता है पर पराजित नहीं। रत्ती-भर सच भी झूठ के पहाड़ को चकनाचूर कर देता है। इसी तरह डॉ. मिथिलेश अवस्थी का यह हाइकु भी दृष्टव्य है, जहां वे मानव- सेवा को सर्वोत्तम धर्म बताते हैं -'उत्तम धर्म/ देश-देशांतर में/ मानव-सेवा।' जाहिर है मनुष्य की सारी साधना, तपस्या, पुण्याई तभी वरेण्य है जबकि मानव हित की हो। और मानव हित से बड़ा दूसरा कोई धर्म-कर्म हो ही नहीं सकता। इस तरह ये हाइकु मनुष्य को सीख ही नहीं देते, उसे वह संबल भी प्रदान करते हैं जिससे मानवता का कल्याण हो।

कुल मिलाकर, हिन्दी में हाइकु लेखन की आज महत्त्वपूर्ण स्थिति है। यह हिन्दी साहित्य की समृद्धि में उल्लेखनीय भूमिका

अदा कर रहा है। जापानी साहित्य की यह विधा हिन्दी में इस भांति स्थापित हो चुकी है कि यह कहीं से भी विलायती नहीं लगती और न ही पराई लगती है। हिन्दी के अनेक कवियों ने इस विधा को पुष्पित-पल्लवित करने में योगदान दिया है। आज यह विधा सृजन की नई भूमियां तोड़ती निरंतर विकसित हो रही है। अपने लघु-विन्यास के कारण चर्चित और समादृत हो रही है। वक्त के अभाव और जीवन शैली में घर करती जा रही अतिरिक्त व्यस्तता को देखते हुए यह कहना होगा कि आने वाले समय में हाइकु हमारे जीवन के ज्यादा करीब होगा!

जेंडर इक्वलिटीः विकास की पहली कड़ी

मानसी सेंगर
डिपार्टमेंट ऑफ़ एप्लाइड साइकोलॉजी
श्यामा प्रसाद मुखर्जी कॉलेज
यूनिवर्सिटी आफ दिल्ली, नई दिल्ली

डॉ. सुरुची भाटिया
एसोसिएट प्रोफेसर, डिपार्टमेंट ऑफ़ एप्लाइड साइकोलॉजी
श्यामा प्रसाद मुखर्जी कॉलेज
यूनिवर्सिटी आफ दिल्ली, नई दिल्ली

ऐतिहासिक रूप से, जेंडर इक्वलिटी एक सामान्य दृष्टि नहीं रही है। इस लिंग, पूर्वाग्रह और शासन के कारण जन्मा जो समाज है वह एक पितृसत्तात्मक समाज हैं, जो पुरुषों के लिए भी उतना ही विषैला है जितना कि महिलाओं के लिए। इसलिए संभवतः इस युग में सबसे प्रकांड पुकार विकास जेंडर इक्वलिटी को लगा रहा हैं।

जेंडर इक्वलिटी की वर्तमान विचार धारा सदियों के संघर्ष का नतीजा है । इस भेदभाव की कड़ी को तोड़ने का आंदोलन भी पीड़ितों के दर्दनाक आख्यात और उनसे जन्मी भावनात्मक व मनोवैज्ञानिक पीड़ा से उत्तेजित हुआ है।

जेंडर इनक्वॉलिटी के प्रभाव को और दर्शाने के लिए जो संकल्पना यहाँ महत्वपूर्ण हो जाती है, वह है-मानसिक स्वास्थ्य।

मानसिक स्वास्थ्य ऐसे विचारों की श्रेणी से प्रेरणा लेता है जो व्यक्ति के भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक कल्याण की बात करे। अतः यह स्वाभाविक सी बात है कि यह हमारे अनुभव, जैविक पहलुओं और सामाजिक स्थिति की दृष्टि है।

आंकड़े, पुरुषों की तुलना में महिलाओं में सामान्य मानसिक स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं के एक उच्च प्रसार और ट्रांसजेंडरों में उनसे भी उच्च प्रसार का सुझाव देते हैं। ये आँकड़े लैंगिक भूमिकाओं और पूर्वाग्रहों का प्रकटीकरण हो सकते हैं।

दिलचस्प बात यह है कि इन पूर्वाग्रहों को ध्यान में रखते हुए, इंडियन जर्नल ऑफ साइकेट्री में प्रकाशित एक लेख बताता है कि महिलाओं में इंटरनलाइजिंग विकारों और पुरुषों में एक्सटर्नलाइजिंग विकारों के प्रसार एक दूसरे से अधिक है (मल्होत्रा और शाह, 2015)। यह शायद पुरुषों और महिलाओं द्वारा अनुभव किए जाने वाले समाजीकरण में अंतर का परिणाम हो सकता है। समाज में, लोगों द्वारा इसकी आंतरिकता कई रूपों में झलकती है- जहां लड़कियों को शांत, सुशील बनने को प्रोत्साहित किया जाता है और ज्यादा बोलने पर फटकार लगाई जाती है, वहीं लड़कों की जिद मनमानी कह कर और दुर्व्यवहार को हँस कर नजरअंदाज कर दिया जाता है।

हालांकि जैसे कि पहले उल्लेख किया गया है, पितृसत्तात्मक समाज पुरुषों के लिए भी उतना ही विषैला है जितना महिलाओं के लिए। एक आदर्श, स्थिर, श्रेष्ठ व्यक्ति की छवि बनाए रखने के लिए, इसने पुरुषों को मानवीय तरीके से जीवन जीने से दूर कर दिया है। जहाँ पुरुषों को रोने पर मनाई हो, मन हल्का करने पर मनाई हो, अपने जज्बात व्यक्त करने पर उनका मजाक उड़ाया जाए, और ऊपर से उन पर ये और जिम्मेदारी डाल दी जाए की तुम

गृहस्थी के इकलौते अर्जक हो, वहां वे कैसे तनाव-मुक्त रहे सकेंगे? पुरुष, भले ही कम प्रसार दिखाते हैं, लेकिन फिर भी पेशेवर या सामाजिक सहायता प्रणाली के माध्यम से मदद लेने के लिए, कम उत्सुक हैं।

परंतु, ट्रांसजेंडर, शायद, इस भेदभाव का सबसे बड़ा खामियाजा भुगत रहे हैं। साइकोलॉजी टुडे में प्रकाशित एक अमेरिकी आंकड़े के अनुसार, 41% ट्रांस पुरुष और महिलाओं ने कम से कम एक बार आत्महत्या का प्रयास किया है। भारत में स्थिति भी बिगड़ती मानसिक स्वास्थ्य की इस चिंताजनक छवि से दूर नहीं है। एक देश में, जहां एक ट्रांस पुरुष या महिला को राह चलते अपमान सहना पड़ता है, उन्हें इसके साथ साथ, सामाजिक-आर्थिक भेदभाव से भी देखना पड़ता हैं, स्कूलों में दाखिले से इनकार के रूप में, रोजगार न मिलने के रूप में, नगण्य सामाजिक सुरक्षा के रूप में, आजीविक भुखमरी के रूप में और कई मामलों में, जीवन भर की गरीबी के रूप में। इन परिस्थितियों को देखते हुए ऐसी तनाव पूर्ण दशा से आगे बर्न आउट और कई मामलों में विकार जैसे डिप्रेशन का खतरा तो जाहिर है।

अब ये भी काफी नहीं था तो हम एक नजर डालते हैं समाज की बेतुकी बातों पर जो कुछ सदियों पहले लोगो के जीवन में बवाल मचा रही थी। क्या कोई “वांडरिंग वॉम्ब” की व्याख्या को भूल सकता है? या हिस्टेरिक होने का शीर्षक एक ऐसी महिला को देना जो बस यौन रूप से आगे थी या केवल खुद को व्यक्त कर रही थी। क्या कोई भूल सकता है कि कुछ समय पहले तक, ट्रांसजेंडर होना भी डब्ल्यू.एच.ओ द्वारा एक विकार माना गया था! जागरूकता और अनुसंधान के प्रकाश ने ही विचार के पिछड़ेपन धीरे धीरे दूर भगाया। जाहिर है, जैसे-जैसे समाज आगे बढ़ता गया, वैसे-वैसे अपने

आप को, अन्य सेक्स की चिंताओं के बारे में शिक्षित करता गया, और समावेश की एक बेहतर भावना अपने अंदर लाता गया।

फिर, इस पर कौन विवाद कर सकता है कि मनोवैज्ञानिक, भावनात्मक और सामाजिक कल्याण के बारे में जागरूकता फैलाने से समाज अधिक लिंग सशक्त नहीं होगा? हाँ, हम यातना के अवाक रूढ़िवाद से एक लंबा सफर तय कर चुके हैं, लेकिन हमें अभी भी मीलों की दूरी तय करनी है। इसकी आवश्यकता और अधिक दर्शाते हुए उदाहरणस्वरूप, हम बात करते हैं ग्रामीण महाराष्ट्र में किए गए एक गुणात्मक अध्ययन की। इसमें महिलाओं के सशक्तीकरण और मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन की विचारधारा का पता लगाया गया था। मानसिक कल्याण को तनाव, सामंजस्यपूर्ण घरेलू संबंधों, स्वतंत्रता और वित्तीय स्वतंत्रता की उपस्थिति के रूप में देखा गया था, और घरेलू संघर्ष, घरेलू हिंसा और गरीबी को प्रतिभागियों द्वारा सबसे आम तनाव माना जाता था। प्रतिभागियों ने भेदभाव को कम करने, मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने, शिक्षा को सशक्तिकरण के रूप में देखा (केरमोड, एट अल., 2007)। अध्ययन में सभी के लिए उपचार और रेफरल की उपयुक्त प्रणाली उपलब्ध कराने की आवश्यकता पर जोर दिया गया, और सामान्य रूप से, लोगों और समुदाय के लिए बोझ को कम करने व मानसिक कल्याण के लिए आवश्यक माना गया।

एक वर्धित लिंग समान समाज के प्रति मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन को एक साधन स्वरुप स्थापित करने के पीछे की बुनियाद सहानुभूति की उपस्थिति पर आधारित है जो बदलाव व सहायता की भावना की संभावना को उजागर कर सकती है। यह विचारधारा न केवल सतही है बल्कि शोध में भी समर्थित है। सहानुभूति-परोपकार परिकल्पना (म्उचंजील-।सजतनपेउ भ्लचवजीमेपे) इस दावे का

समर्थन करती है। यह समझाता है कि कैसे किसी की कठिनाइयों का बोध और उनके कल्याण की महत्त्वता समझना, सहानुभूति पैदा करते है जो बदले में परोपकारी व्यवहार को प्रेरित करता है (बैटसन, 1987, 2011)।

इस मॉडल के बाद, ओसेजा, हीरडिंक, स्टॉक्स, एंब्रोन, लोपेज-पेरेस और सालगाडो (2014) के एक अध्ययन ने सुझाव दिया कि किसी समूह के सदस्य के लिए सहानुभूति की भावना होना, उस व्यक्ति की उसके समूह की कीमत पर सहायता या उस पूरे समूह की सहायता करने की भावना उत्पन्न करती है। इस चर्चा के संदर्भ में बात करें तो मानसिक कल्याण को बढ़ावा देने और एक दूसरे के प्रति सहानुभूति को उकसाना, वास्तविक व्यवहार परिवर्तन और एक लिंग समानतावादी समाज बनाने की प्रेरणा की संभावना प्रदान करता है।

यदि देखा जाए तो समाज की सबसे बड़ी समस्या निष्क्रियता नहीं बल्कि अज्ञानता है। अज्ञानता समाज के दायरे को पुनर्जीवित करती है, महिलाओं और ट्रांस पुरुषों और महिलाओं की स्थिति में कोई बड़ा बदलाव नहीं होगा।

जबकि वार्षिक घटनाओं और मोर्चे जैसे तत्काल उपाय विषय पर एक वार्तालाप शुरू करने में फायदेमंद होते हैं, हालांकि, दृष्टिकोण में गहन और पर्याप्त बदलाव के लिए, किसी को इससे अधिक कुछ करना पड़ेगा। मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन के माध्यम से जेंडर इक्वलिटी में सफलता दो कार्यक्रमों की पहल योजना से प्राप्त की जा सकती है, - जागरूकता और हस्तक्षेप।

जब जागरूकता के बारे में बात की है, तो वह मूलरूप से व्यापक दर्शक आकर्षित करने का सुझाव प्रस्तुत कर रही हैं-जिससे कि इन विषयों की जानकारी और इन पर वार्तालाप समाज के हर

पिछड़े से पिछड़े कोने में छिड़ सके। ऐसे दर्शकों को लक्षित करना जो पहले से ही नारीवाद, समानता, मानसिक कल्याण जैसी अवधारणाओं से अच्छी तरह वाकिफ हैं, इस कार्य को सीमित करता है। समय की जरूरत यह है कि इन अवधारणाओं को उन लोगों के ध्यान में लाया जाए, जिनके लिए ये अवधारणाएं नई हैं, जो इसका खामियाजा भुगत रहे हैं और उन लोगों के लिए जो अपराधी हैं।

इस दिशा में एक मजबूत नींव के लिए, हमें प्राथमिक शिक्षा से लेकर हाई स्कूल तक के समावेशी शिक्षा कार्यक्रमों की आवश्यकता है, जिनमे सामान्य मानसिक स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं, के साथ साथ यौन शिक्षा जैसे विषय (मानसिक स्वास्थ्य के समबन्ध) में शामिल हों, उदाहरणस्वरूप, मासिक धर्म चक्र के दौरान हार्मोनल उतार-चढ़ाव, तनाव के लिए एक महत्वपूर्ण कारक, पोस्ट-पार्टम डिप्रेशन, हार्मोन की गोलियाँ और मूड पर उनके प्रभाव, भेदभाव और आघात के साथ से मुकाबला करना, आदि।

इसके अलावा, इस तरह की जानकारी को प्राप्त करने वाले को व्यापक बनाने के लिए, हमें प्रिंट मीडिया, ऑडियो-विजुअल मीडिया, सरकार, शैक्षणिक संस्थानों आदि की पहल की सहायता से एक प्रभावशाली आंदोलन छेड़ने की आवश्यकता है। हमें टेलीविजन पर सरकारी सामाजिक जागरूकता विज्ञापनों की आवश्यकता है, हमें मुख्य धारा के समाचार पर मानसिक विकारों के विशिष्ट आँकड़ों पर चर्चा की जरूरत है, हमें होमोफोबिया, भेदभाव से उत्पन्न आघात, एक ट्रांस पुरुष या महिला होने का विज्ञान और 'स्वाभाविकता', पितृसत्तात्मक समाज में तनावग्रस्त महिलाएं, पुरुषों के अनकहे भाव, आदि पर समाचार सेगमेंट की आवश्यकता है। आवश्यकता है कि समाचार पत्र अपने सम्मानित स्तंभों में इन चिंताओं के लिए वर्गों

को समर्पित करें। हमें बच्चो के लिए आयोजित मानसिक स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रमों में माता-पिता की भागीदारी की आवश्यकता है।

देखा जाए तो जागरूकता और हस्तक्षेप एक साथ चलते हैं, यानी एक की प्रभावशीलता दूसरे के बिना अधूरी है। यदि जागरूकता नहीं है, तो कोई हस्तक्षेप नहीं होगा और यदि कोई हस्तक्षेप नहीं होगा, तो जागरूकता का क्या लाभ?

पेशेवर या सामाजिक सहायता के उत्थान करने के साथ साथ हमें कुछ और कदमों की आवश्यकता है ताकि उन लोगों के लिए हस्तक्षेप और सुविधाओं की एक प्रणाली स्थापित की जा सके, जिन्हे इसकी सबसे अधिक जरुरत है। सरकारी चिकित्सा सुविधाओं का विचार, सहयोग समूह की सामुदायिक सुविधा, कानूनी अधिकारों के उपयोग के लिए उचित मशीनरी व उनकी खबर, आघात से पीड़ित व्यक्तियों की आर्थिक सहायता, रियायती चिकित्सा, आदि, इस दिशा में कुछ उदाहरण हैं।

ये उपाय महत्वपूर्ण हो जाते हैं क्योंकि यहाँ उदेश्य केवल शिक्षा और ज्ञान नहीं, बल्कि विकास और क्रिया है। लेखिकाएं एक ऐसे समाज में रहने का स्वप्न रखती है जहां कोई भी व्यक्ति खुद की पहचान के कारण अत्याचार का शिकार न हो, जहां किसी व्यक्ति को खुद को व्यक्त करने या सहायता मांगने से पीछे नहीं रखा जाए, जहां हर किसी के पास एक आवाज हो, सम्मान हो और आगे बढ़ने के मौका सब के पास हो।

यह सच है कि यह स्वप्न को वास्तविकता बनने में अभी वक्त है। लेकिन हर संघर्ष की एक शुरुआत होती है और आज जिस चीज की अधिक्तम जरूरत है, वह यही है - एक पहल - इस बुरे सपने को खत्म करने की।

संदर्भ

एम्पथी-अल्ट्रूइसम हाइपोथिसिस. (2016). रेट्रिवद फ्रॉम http://psychology.iresearchnet.com/social-psychology/prosocial-behavior/empathy-altruism-hypothesis/

जेंडर एंड वीमेंस मेन्टल हेल्थ. रेट्रिवद फ्रॉम https://www.who.int/mental_health/prevention/gender women/en/

क ग, डी., जॉनसन, र. (2020). ऐनगेंडेरिंग मेन्टल हेल्थ फॉर ट्रांसजेंडर्स इन इंडिया दूरिंग कोविद-१९. रेट्रिवद फ्रॉम https://qrius.com/engendering-mental-health-for-transgenders-in-india-during-covid-19/

केरमोड़े, म., हेर्रमन, ह., अरोल, र., जोशुआ, व. प्रेमकुमार, र., पटेल, व. (2007). एम्पावरमेंट ऑफ वीमेन एंड मेन्टल हेल्थ प्रमोशनरू अ क्वालिटेटिव स्टडी इन रूरल महाराष्ट्र, इंडिया. रेट्रिवद फ्रॉम https://bmcpublichealth.biomedcentral.com/articles/10.1186/1471-2458-7-225.

मल्होत्रा, स., सुचिता, र. (2015). वीमेन एंड मेन्टल हेल्थ इन इंडिया: ऐन ओवरव्यू. रेट्रिवद फ्रॉम https://www.indianjpsychiatry.org/article.asp?issn=0019-5545;year=2015; volume=57;issue=6; spage=205;epage=211; aulast= Malhotra

मेन एंड मेन्टल हेल्थ. (2019) रेट्रिवद फ्रॉम https://www.nimh.nih.gov/health/topics/men-and-mental-health/index.shtml

ओसेजा, लुइस - हिरदीनक, मार्क - स्टॉक्स, एरिक - अम्ब्रेना, तमारा - लोपेज-पेरेज, बेलेन - सलगाडो, सर्जिओ. (2014). एम्पथी, अवेयरनेस ऑफ ओठेर्स, एंड एक्शनरू हाउ फीलिंग एम्पथी फॉर ओने-अमंग-ओठेर्स मोतिवट्स हेल्पिंग द अदर्स. बेसिक एंड एप्लाइड सोशल साइकोलॉजीण् Doi: 36. 111-124. 10.1080/01973533.2013.856787.

पाणिग्रही, अ., पद्य, अ., - पाणिग्रही, म. (2014). मेन्टल हेल्थ स्टेटस अमंग मैरिड वर्किंग वीमेन रेसिडिंग इन भुबनेश्वर सिटी, इंडिया: अ प्स्य्चोसोशल सर्वे. रेट्रिवद फ्रॉम https://www. hindawi.com/journals/bmri/2014/979827/

श्रेबर, क. (2016). व्हाई ट्रांसजेंडर पीपल एक्सपीरियंस मोर मेन्टल हेल्थ इश्यूज. रेट्रिवद फ्रॉम https://www.psychologytoday.com/us/blog/the-truth-about-exercise-addiction/201612/why-transgender-people-experience-more-mental-health

वेंकटेश, स. (2018). द दिसद्वान्तग ऑफ द मेन्टल हेल्थ सिनेरियो टू ट्रांस पर्सन्स इन इंडिया. रेट्रिवद फ्रॉम http://onefuturecollective.org/the-disadvantage-of-the-mental-health-scenario-to-trans-persons-in-india/.

राजभाषा हिंदी और सूचना प्रौद्योगिकी

नेहा रंजन
राजभाषा अधिकारी
क्षेत्रीय कार्यालय
इण्डियन ओवरसीज़ बैंक, पटना

आज का युग सूच ना, संचार व विचार का युग है। सूचना प्रौद्योगिकी एक सरल तंत्र है जो तकनीकी प्रयोग के सहारे सूचनाओं का संकलन, प्रक्रिया व संप्रेषण करता है । सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग मे कंप्यूटर का महत्व कल्पवृक्ष से कम नहीं है जिससे व्यवसायिक, वाणिज्यिक, जन संचार, शिक्षा, चिकित्सा, आदि कई क्षेत्र लाभान्वित हुये हैं। कंप्यूटर व सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जो विकास हुआ है वह भाषा के क्षेत्र में भी मौन क्राँति का वाहक बन कर आया है। अभी तक भाषा जो केवल मनुष्यों के की आवशकताओं को पूरा कर रही थी, उसे सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में मशीन व कंप्यूटर की नित नई भाषायी मांगों को पूरा करना पड़ रहा है।

चूँकि वर्तमान समय सूचना प्रौद्योगिकी का युग है, सभी कार्यालयों में तमाम काम कंप्यूटरों पर ही किये जाते हैं। रोजमर्रा की जिन्दगी मानो सूचना प्रौद्योगिकी पर आधारित है । मोबाइल फोन, एटीए, इंटरनेट बैंकिंग से लेकर रेलवे आरक्षण, ऑनलाइन

शॉपिंग, आदि तक सूचना प्रौद्योगिकी हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग बन चुकी है। संविधान के अनुच्छेद 343 के आधार पर हिंदी को भारत में राजभाषा का दर्जा प्राप्त है जिसकी वज़ह से हिंदी भाषा का प्रयुक्ति क्षेत्र बहुत विस्तृत है, सभी सरकारी कार्यालयों में हिंदी को कार्यालयीन भाषा का दर्जा प्राप्त है व इसका कार्यक्षेत्र केंद्र सरकार के सभी मंत्रालयों, कार्यालयों, निगमों, विभागों व उपक्रमों आदि तक फैला हुआ है। समकालीन समय में सूचना प्रौद्योगिकी जिसकी आत्मा कंप्यूटर है, किसी भी अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी बना हुआ है। यह सर्वज्ञात है कि कंप्यूटर में राजभाषा हिंदी में कार्य करना सुगम बनाया गया है। हिंदी में कंप्यूटर स्थानीयकरण का कार्य काफी पहले प्रारंभ हुआ और अब यह आंदोलन की शक्ल ले चुका है। हिंदी सॉफ्टवेयर लोकलाइजेशन का कार्य सर्वप्रथम सी- डैक द्वारा 90 के दशक में किया गया था। वर्तमान में हिंदी भाषा के लिए कई संगठन कार्य करते है, जिसमें सी -डैक, गृह मंत्रालय का राजभाषा विभाग केंद्रीय हिंदी संस्थान और अनेक गैर सरकारी संगठन जैसे सराय, इंडलिक्स आदि प्रमुख हैं।

एक ओर यूनिकोड के प्रयोग ने हिंदी के प्रयोग को आगे बढ़ाने के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है वहीं आज सिस्टम जेनरेटेड प्रोग्रामों में हिंदी की स्थिति कुछ खास नही है। अधिकतर सॉफ्टवेयर प्रोग्राम पहले ही तैयार कर लिए जाते हैं, उसके बाद उनमें हिंदी की सुविधा तलाश की जाती है। इसके बावजूद भी यह संतोष का विषय है कि 21 वीं सदी में भाषा के प्रचार -प्रसार में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका अहम हो गयी है व भाषाओं के मानकीकरण का कार्य आसान हो गया है ।

हिंदी यूनिकोड के अस्तित्व में आने के बाद अब हर कंप्यूटर, लैपटॉप यहाँ तक की स्मार्ट फोन पर भी हिंदी में काम

करना व करवाना कोई बड़ा मुद्दा नहीं रह गया है । यूनिकोड एक अंतर्राष्ट्रीय मानक कोड है जिसमें हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं सहित विश्व की लगभग 200 भाषाओं के लिए कोड निर्धारित किये गये हैं। चूँकि कंप्यूटर मूल रूप से किसी भाषा से नहीं बल्कि अंकों से संबंध रखता है इसलिए हम किसी भी भाषा को एनकोडिंग व्यवस्था के तहत मानक रूप प्रदान कर सकते हैं। साथ ही इसी आधार पर उनके लिये फॉण्ट भी निर्मित किये जा सकते हैं, जैसे अंग्रेज़ी भाषा अथवा रोमन लिपि के लिये एरियल फॉण्ट की एनकोडिंग की गयी है, उसी तरह हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के लिए निर्मित आधुनिक यूनिकोड फॉण्ट्स की भी एंकोडिंग की गयी है जिसे अंतराष्ट्रीय स्तर पर एप्पल, आइबीएम, माइक्रोसॉफ्ट, सैप, साइबेस, यूनिसिस जैसी सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग की प्रमुख कंपनियों ने अपनाया है। मानकीकरण का यह कार्य अमेरिका स्थित यूनिकोड कंसोर्शियम द्वारा किया जाता है जो कि लाभ ना कमाने वाली एक संस्था है। भारत सरकार के इलेक्ट्रॉनिक विभाग ने भी इस कंसोर्शियम के जरिये हिंदी के यूनिकोड फॉण्ट जैसे मंगल, कोकिला, एरियल यूनिकोड एमएस, आदि की एनकोडिंग कराई है जिसकी वज़ह से आधुनिक कंप्यूटरों में यह फॉण्ट पहले से ही विद्यमान होते हैं। यूनिकोड 16 बिट की एक एनकोडिंग व्यवस्था है जो कि पालि और प्राकृत जैसी प्राचीन भाषाओं से भी परिचित है। इसकी विशेषता यह है कि एक कम्प्यूटर पर के पाठ को दुनिया के किसी भी अन्य यूनिकोड आधारित कम्प्यूटर पर खोला व पढ़ा जा सकता है। इसके लिए अलग से उस भाषा के फोंट का प्रयोग करने की अनिवार्यता नहीं होती; क्योंकि यूनिकोड केन्द्रित हर फोंट में सिद्धांतत: विश्व की हर भाषा के अक्षर मौजूद होते हैं। यूनिकोड आधारित कम्प्यूटरों में प्रत्येक कार्य भारत की किसी भी भाषा में

किया जा सकता है, बशर्ते कि 'ऑपरेटिंग सिस्टम' पर इन्स्टॉल सॉफ्टवेयर यूनिकोड व्यवस्था आधारित हो। आज बाज़ार में आने वाला हर नया कंप्यूटर व अन्य गैजट ना सिर्फ हिंदी, बल्कि दुनिया की आधिकत्तर भाषाओं में कार्य करने में सक्षम है क्योंकिं यह सभी लिपियाँ यूनिकोड मानक मॆं शामिल हैं।

मौजूदा समय में हिंदी "ग्लोबल हिंदी" में परिवर्तित हो गई है। आज तकनीकी विकास के युग में दूसरे देशों के लोग भी, भले ही विपणन के लिए ही सही, हिंदी भाषा सीख रहे हैं। आज स्थिति यह है कि भारत व चीन के व्यवसायिक संबंधों को बढ़ाने की संभावनाओं के तलाश के लिये लगभग दस हज़ार लोग पेइचिंग में हिंदी सीख रहे हैं। आज से लगभग 45 वर्ष पूर्व कंप्यूटर पर हिंदी में कार्य आरंभ हुआ और इसी तरह एंकोडिंग व डिकोडिंग के माध्यम से विश्व की विभिन्न भाषाएँ भी कंप्यूटर पर सुलभ होने लगी, इस तकनीकी विकास ने भारतीय भाषाओं को जोड़ा है, कंप्यूटर के माध्यम से विभिन्न सॉफ्टवेयरों, सी-डैक संस्था के हिंदी सीखने सिखाने के विभिन्न कंप्यूटरीकृत कार्यक्रमों जैसे- प्रबोध, प्रवीण व प्राज्ञ पाठ्यक्रमों के लिए लीला वाचिक तकनीक के प्रयोग ने भाषा सीखने की प्रक्रिया को विभिन्न भाषा माध्यमों से बिलकुल आसान बना दिया जिससे भाषायी निकटता का उदय हुआ, जिसके वज़ह से भाषायी एकता आना स्वाभाविक था ।

वर्तमान समय में मोबाइल फोन ने लैंडलाइन फोन का स्थान ले लिया है। मोबाइल फोन पर हिंदी समर्थन हेतु निरंतर कार्य चल रहा है । कई मोबाइल कंपनियाँ, सोनी, नोकिया, सैमसंग आदि हिंदी टंकण, हिंदी वाइस सर्च व हिंदी भाषा में इंटरफेस की सुविधा प्रदान कर रही है। इसके साथ ही आज आइ पैड पर हिंदी लिखने की सुविधा उपलब्ध है। अंग्रेज़ी के साथ-साथ आज हिंदी भाषा का

भी नेटवर्क़ पूरे विश्व में फैलता जा रहा है। जागरण, वेब दुनिया, नवभारत टाइम्स, विकिपिडिया हिंदी, भारत कोष, कविता कोष, गद्य कोष, हिंदी नेक्स्ट डॉट कॉम, हिंदी समय डॉट कॉम, आदि इंटरनेट साइटों पर हिंदी सामग्री देखी जा सकती है। आज विज्ञापन से संबंधित एसएमएस से खाता-शेष तक हिंदी तथा क्षेत्रीय भाषाओं में प्राप्त किया जा सकता है। भारत सरकार के गृह मंत्रालय के तहत कार्यरत सी-डैक (पुणे) बाईस भाषाओं में अपनी विभिन्न तकनीकी आयामों से वेबसाइटों, सॉफ्टवेयरों, रिपोर्टों, महाराष्ट्र सरकार की मराठी भाषा में तथा असम सरकार की असमिया भाषा में वेबसाइट निर्माणों, रिज़र्व बैंक के राजभाषा रिपोर्ट जेनेरेशन सॉफ्टवेयर (आरआरजीएस) निर्माण आदि के कार्य कर भाषायी एकता के क्रम में योगदान कर रहा है।

हिंदी के बड़े बाजार की नब्ज़ को देखते हुये माइक्रोसॉफ्ट ने अपने सॉफ्टवेयर उत्पादों से संबंधित सहायक साहित्य तथा मार्गदर्शक सूत्रों को विशेषज्ञों की सहायता से हिंदी में उपलब्ध कराने के प्रयत्न शुरू किया है। बहुप्रचलित विंडोज़ विस्टा व विडोंज 7 जैसे ऑपरेटिंग सिस्टम के साथ एमएस वर्ड, पावर प्वाइंट, एक्सेल, नोटपैड, इंटरनेट एक्सप्लोरर, जैसे प्रमुख सॉफ्टवेयर उत्पाद अब हिंदी में कार्य करने की सुविधा प्रदान करते हैं। माइक्रोसॉफ्ट का लैंग्वेंज इंटर्फेस पैकेज स्थानीयकरण का बेहतर उदाहरण है ।

गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग ने अपनी वेबसाइट http://www.rajbhasha.nic.in पर राजभाषा हिंदी में कार्य करने को आसान बनाने के उद्देश्य से हिंदी में कई सॉफ्टवेयर उपलब्ध कराए हैं , जिसमें से निम्नलिखित प्रमुखहैं-

1. सर्वप्रथम हम लीला सॉफ्टवेयर की बात करेंगें। LILA अथार्त Learn Indian Languages with Artificial Intelligence,

एक स्वयं शिक्षण मल्टीमीडिया पैकेज है। यह राजभाषा विभाग द्वारा तैयार किया गया एक निशुल्क सॉफ्टवेयर है जिसके द्वारा प्रबोध, प्रवीण व प्राज्ञ स्तर के हिंदी के पाठयक्रमों को विभिन्न भारतीय भाषाओं जैसे कन्नड़, मल्यालम, तमिल, तेलगु, बांग्ला आदि के माध्यम से सीखने, ऑनलाइन अभ्यास, उच्चारण सुधार, स्वमूल्यांकन, आदि की सुविधा उपलब्ध है।

2. मंत्र अथार्त Machine Assisted Translation Tool सीडैक द्वारा विकसित एक मशीनी अनुवाद सॉफ्टवेयर है । यह राजभाषा विभाग द्वारा विकसित एक मशीनी साधित अनुवाद है जो राजभाषा के प्रशासनिक , वित्तीय, कृषि, लघु उद्योग, सूचना प्रोद्योगोकी, स्वास्थ्य रक्षा, शिक्षा एवं बैंकिंग क्षेत्रों के दस्तावेज़ों का अंग्रेज़ी से हिंदी में अनुवाद करते हैं। मंत्र राजभाषा इंटरनेट संसकरण के डिजाइन व विकास थिन क्लाइंट आर्किटेक्चर पर आधारित है, इसमें संपूर्ण अनुवाद प्रक्रिया सर्वर पर होती है, इसलिये दूरवर्ती स्थानों में भी इंटरनेट उपलब्ध लो एंड सिस्टम पर भी दस्तावेज़ों का अनुवाद करने की इस सुविधा का उपयोग किया जा सकता है ।
3. श्रुतलेखन एक सतत स्पीकर इंडीपेंडेंट हिंदी स्पीच रिकगनिशन सिस्टम है, जिसका विकास सीडैक, पुणे के एलाइड ए. आइ ग्रुप ने राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार के सहयोग से किया गया है । यह स्पीच टू टेक्सट टूल है, इस विधि में प्रयोक्ता माइक्रोफोन में बोलता है तथा कंप्यूटर में मौजूद स्पीच टू टेक्स्ट प्रोग्राम उसे प्रोसेस कर पाठ/ टेक्स्ट में बदल कर लिखता है ।

4. वाचांतर ध्वनि से पाठ में अनुवाद प्रणाली है जिसमें दो प्रौद्योगिकों का समावेश है । यह उपकरण अंग्रेज़ी स्पीच से हिंदी अथ अनुवाद हेतु उपलब्ध कराया जाता है ।
5. सीडैक पुणे के तकनीकी सहयोग से ई-महाशब्दकोश का निर्माण किया गया जो की राजभाषा की साइट पर निशुल्क उपलब्ध है । यह एक द्विभाषी - द्विआयामी उच्चारण शब्दकोश हैं जिसके द्वारा हिंदी या अंग्रेज़ी अक्षरों द्वारा शब्द की सीधी खोज किया जा सकता है।

अनुवाद दो भाषाओं के बीच सेतु का कार्य करता है। तकनीकी के उत्तरोत्तर विकास द्वारा मशीनी अनुवाद टूल बनाना संभव हो सका। आज विश्व के कई देशों के पास अत्यंत ही सक्षम अनुवाद टूल हैं। इनकी सहायता से वैश्विक मंचों पर विभिन्न देशों का आपसी मिलन आसानी से संभव हुआ है। भारत में भी अनुवाद टूल बनाने की दिशा में कई सॉफ्टवेयर बनाए गए हैं जिनमें सी-डैक, आईआईटी कानपुर, आईआईटी मुंबई जैसी संस्थाओं की अहम भूमिका है।

इसके अलावा हिंदी में शब्द संसाधन के लिये विशेष रूप से तैयार ई-पुस्तक, राजभाषा विभाग की साइट पर उपलब्ध है। परस्पर आदान-प्रदान के क्रम में भी तकनीकी विकास हुआ है। गूगल ट्राँसलेट के माध्यम से विभिन्न भाषाओं का अनुवाद किया जा सकता है। आज हमारे पास लिपियों को बदलने का सॉफ्ट्वेयर गिरगिट उपलब्ध है। भारतीय भाषाओं के बीच अनुवाद करने हेतु अनुसारक नाम का सॉफ्टवेयर मौजूद है। हिंदी ऑप्टिकल कैरेक्टर के माध्यम से हिडी ओसीआर इनपुट करके ओसीआर आउटपुट में 15-16 वर्ष के पहले की सामाग्री को भी परिवर्तित किया जा सकता है। सीडैक के श्रुतलेखन सॉफ्टवेयर से भाषण/स्पीच से पाठ रूप में

पहुँचा जा सकता है। गूगल के टूलों में वाचक, प्रवाचक, गूगल टेक्स्ट टू स्पीच के जरिये पाठ से भा की सुविधा उपलब्ध है व गूगल के वायस टाइपिंग के जरिये स्पीच को टेक्स्ट में बदलने की सुविधा उपलब्ध है। गूगल वाइस टाइपिंग में हम गूगल डॉक्स के द्वारा अपनी आवाज के माध्यम टाइपिंग करने का आनंद उठा सकते हैं ।

माइक्रोसॉफ्ट इंडिक लैंग्वेज़ इनपुट टूल भारतीय भाषाओं हेतु एक सरल टाइपिंग टूल है। वास्तव में यह एक वर्चुअल की बोर्ड है जो कि बिना कॉपी-पेस्ट के झंझट के विंडोज में किसी भी एप्लीकेशन में सीधे हिंदी में लिखने की सुविधा प्रदान करता है । यह सेवा दिसंबर 2009 में प्रारंभ हो गई थी । यह टूल शब्दकोश आधारित ध्वन्यात्मक लिप्यंतरण विधि का प्रयोग करता है अर्थात हमारे द्वारा जो रोमन में टाइप किया जाता है, यह उसे अपने शब्दकोश से मिलाकर लिप्यांतरित करता है तथा मिलते-जुलते शब्दों का सुझाव देता है। इस कारण से प्रयोक्ता को लिपयंतरण स्कीम को याद नहीं रखना पड़ता है जिससे पहली बार एवं शुरुआती हिंदी टाइप करने वालों के लिए काफी सुविधाजनक रहता है।

आज चारों तरफ 'डिजिटल भारत' की बात हो रही है। प्रत्येक इंसान तक इन्टरनेट को पहुँचाने की चाहत रखने वाले महज 30 वर्षीय व्यक्ति व सोशल नेटवर्किंग साइट फेसबुक के संस्थापक मार्क जुकरबर्ग के एजेंडे में भी गाँवों को डिजिटल दुनिया से जोड़ना प्रमुखता पा रहा है। हाल ही में (9-10 अक्टूबर 2014) दिल्ली में आयोजित 'इंटरनेट ओआरजी समिट' में उन्होंने कहा, "फेसबुक अपने कंटेंट को क्षेत्रीय भाषाओं में देने पर फोकस कर रहा है."। यह ध्यातव्य है कि एक बिलियन यूजर्स में से फेसबुक का दूसरा सबसे बड़ा मार्केट भारत में है जहाँ करीब 108 मिलियन एफ़बी यूजर्स हैं।

मार्क जुकरबर्ग ने इस समिट में 'कनेक्टिंग द अनकनेक्टेड' अर्थात् 'वैसे लोगों को इंटरनेट से जोड़ना जो इससे दूर तथा अनभिज्ञ हैं' जैसा उद्देश्य रखते हुए पूरे समाज के लिए टेक्नोलॉजी की जरूरत बताई। यहाँ भी तकनीकी विकास में भाषायी एकता दिखती है। जब विभिन्न गाँव डिजिटल दुनिया से जुड़ेंगे तो वैश्विक व भारतीय परिक्षेत्र में विभिन्न गाँवों की विभिन्न भाषाएँ भी तकनीकी का हिस्सा होंगी और उनके बीच संप्रेषणीय आदान-प्रदान होगा जिसमें हम भाषायी एकता देख सकेंगे।

भाषायी परिप्रेक्ष्य में तकनीकी विकास की बात प्रिंटिंग प्रेस की बात के बिना अधूरी है। प्रिंटिंग प्रेस के आविष्कार ने सूचना एवं ज्ञान के प्रसार में क्रांति ला दी। वैसे तो विश्व की पहली प्रिंटिंग प्रौद्योगिकी 11वीं सदी में चीन में विकसित हुई परंतु चलित प्रिंटिंग प्रौद्योगिकी 13वीं सदी में ही विकसित हो सकी। उसके बाद जर्मनी के जोहन्स गुटेनबर्ग द्वारा विकसित प्रिंटिंग प्रेस ने मुद्रण संसार को नयी ऊर्जा दी। पुनर्जागरण काल के इस प्रेस के माध्यम से प्रतिदिन 3600 पृष्ठ तक की छपाई की जा सकती थी जो कि पिछली मशीनों की 2000 पृष्ठ प्रतिदिन की तुलना में काफी अधिक थी। पुनर्जागरण काल में हुए इस अनोखे आविष्कार ने जनसंचार (Mass Communication) की आधारशिला रखी। यूरोप में शिक्षा संपन्न एवं विशिष्ट लोगों की गोद से निकलकर जन सामान्य के बीच पहुंची और शिक्षित जनता की संख्या तीव्र गति से बढ़ी तथा मध्यवर्ग का उदय हुआ। पूरे यूरोप में अपनी संस्कृति के प्रति सजगता और राष्ट्रवाद की भावना के विकास के कारण उस समय के यूरोप की लिंगुआ फ्रैंका (लैटिन) की स्थिति कमजोर हुई तथा स्थानीय भाषाओं की स्थिति मजबूत हुई। प्राचीन और प्रतिष्ठित भाषाओं के साथ-साथ स्थानीय भाषाओं को भी सम्मान मिला।

भारत के मुद्रण इतिहास में श्रीरामपुर प्रेस का उल्लेखनीय योगदान है, जिसमें हिंदी अक्षरों को विकसित किया गया तथा मिशनरियों की प्रचार सामग्री के रूप में बाइबिल का हिंदी अनुवाद बड़े स्तर पर छापा गया। स्वाधीनता आंदोलन में विभिन्न भारतीय भाषाओं में समाचार-पत्र निकालने वाले ये प्रेस आंदोलनकारियों के बहुत बड़े हथियार थे जिनकी समाप्ति के लिए ब्रिटिश सरकार ने वर्नाकुलर प्रेस एक्ट जैसे कानून बनाए। ऐसा माना जाता है कि पहले भाषा का प्रयोग, उसके बाद लिपि एवं लेखन का प्रयोग एवं उसके बाद प्रिंटिंग प्रेस का आविष्कार गुणात्मक रूप से दुनिया के तीन सबसे बड़े आविष्कार हैं जिन्होंने ज्ञान एवं विद्या के प्रसार एवं विकास में भारी योगदान किया। इसी कड़ी में चौथा आविष्कार इंटरनेट को माना जाता है।

तकनीकी विकास शब्द जेहन में आते ही हमारा ध्यान इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति की ओर चला जाता है। यही वह दौर था जब मशीनों की वजह से इंसानों के जीवन और जीवन-शैली में व्यापक बदलाव आए। उत्पादन के सभी क्षेत्रों में मशीनों को विकसित किया जाने लगा और हमारी मशीनों पर निर्भरता बढ़ी। औद्योगिक क्रांति से उत्पादित माल के लिए बाजार की जरूरतों ने दुनिया भर के विभिन्न देशों के बीच की दूरियाँ कम कर दीं जिसकी वजह से दुनिया भर की भाषाओं के लिए एक नया द्वार खुला। इसी दौरान 19वीं सदी की शुरुआत में कागज बनाने वाली मशीनों का आविष्कार हुआ जो भाषायी दृष्टिकोण से बेहद महत्वपूर्ण थीं। इससे पूर्व लेखन के लिए प्रयुक्त होने वाले कागज का उत्पादन एक दुरूह कार्य था जिसमें वांछित गुणवत्ता प्राप्त करना काफी कठिन होता था। कागज उद्योग विकसित होने से लेखन और पठन का प्रचलन

बढ़ा जो कि तमाम भाषाओं और साहित्य को अनंत काल तक लिखित रूप में सहेजने का माध्यम बना।

आधुनिक युग कंप्यूटर का युग है जिसने मनुष्य की कागज पर निर्भरता को काफी हद तक कम कर दिया है। कंप्यूटर के आगमन, प्रसार तथा इस पर हमारी बढ़ती निर्भरता ने कुछ समय तक के लिए भारत जैसी तीसरी दुनिया के देश के लिए स्थानीय भाषाओं के हास का संकट पैदा कर दिया था परंतु नित नए तरीके से विकसित होते इस यंत्र ने ऐसी बाधाओं को पार कर लिया है और अब यह सभी भारतीय भाषाओं के प्रसार के लिए इलेक्ट्रॉनिक माध्यम उपलब्ध करा रहा है। कंप्यूटर ने टाइपिंग के लिए उपयोग किए जाने वाले टाइपराइटर को चलन से बाहर किया परंतु शुरुआत में यह स्थानीय भाषाओं के लिए सहज नहीं था। इस समस्या का समाधान यूनिकोड के आगमन से हुआ जिसने हिंदी के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं के लिए भी कंप्यूटर पर काम करने के लिए आसान प्लेटफॉर्म निर्मित किया। इसके माध्यम से हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में ब्लॉग लिखे जाने लगे, जो कि अब तक केवल कंप्यूटर के आविष्कारक देशों की भाषाओं में लिखे जा रहे थे। आज हिंदी में अनेको ब्लॉग लिखे और पढ़े जा रहे हैं, इतना ही नहीं समाचार पत्रों ने भी अब नियमित रूप से ब्लॉग छापने शुरू कर दिए हैं। यूनिकोड ने स्थानीय भाषाओं में टाइपिंग को आसान बनाकर इन्हें सोशल नेटवर्किंग साइट जैसे- ट्विटर, फेसबुक पर भी स्थापित कर दिया है।

निजी सैटेलाइट टीवी चैनलों के प्रसार ने भाषायी एकता को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इनके फ्री टु एयर से डिश कनेक्शन और उसके बाद डाइरेक्ट टु होम तक के तकनीकी विकास ने जनता को उनकी भाषा में मनोरंजन व ज्ञान की पहुँच

सुनिश्चित की है । यही बात रेडियो के निजी एफ़एम चैनलों के प्रसार एवं संचालन के साथ भी लागू होती है। आज भारत में 800 से ज्यादा टीवी चैनल और 250 तक एफ़एम चैनल उपलब्ध हैं। साथ ही ई समाचार-पत्रों के चलन ने पत्रकारिता को एक नया स्वरूप दिया है। आज अपनी मातृभाषा में समाचार-पत्र पढ़ने के लिए उस क्षेत्र विशेष में अनिवार्यतः उपस्थित रहना आवश्यक नहीं रहा। लगभग सभी प्रमुख समाचार-पत्रों के ई संस्करण इंटरनेट पर उपलब्ध हैं। इनके अलावा हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में ई-बुक्स, ई-मैगजीन, ई-कॉमिक्स आदि का प्रसार भी काफी तेज गति से हो रहा है।

समेकित रूप से यह कहा जा सकता है कि आज हम तकनीकी युक्त वस्तुओं से चारों ओर से घिरे हुए हैं। तकनीकी विकास ने हमारी जीवन-शैली और समाज के ढाँचे को भी प्रभावित किया है और भाषा भी इससे अछूती नहीं है। आज सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में हिंदी का महत्व पहले से अधिक हो गया है और यह महज राजकाज की संवैधानिक बाध्यता से निकलकर व्यावसायिक भाषा के रूप में उभरकर सामने आई है।

गुप्तकालीन सर्जनात्मकता के संदर्भ और कालिदास की मूल्यदृष्टि

डॉ. निशि त्यागी

सहायक प्राध्यापक, शिक्षा विभाग

शारदा विश्वविद्यालय, नोएडा,

गौतमबुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश

Email: nishi.tyagi@sharda.ac.in

इतिहास के विद्वानों की दृष्टि में कालिदास का स्थिति काल ईस्वी सम्वत् की प्रथम शताब्दी से लेकर चौथी-पाँचवीं ईसवी तक अनिश्चय के झूले में झूलता है। परन्तु एक सर्वसामान्य धारणा के अनुसार कालिदास को गुप्त युग की चौथी-पाँचवीं शताब्दी में ही माना जाना उचित प्रतीत होता है। हम समझते हैं, कवि की मूल्यदृष्टि में इससे कोई विशेष अन्तर पड़ने वाला नहीं है। सामाजिक व्यवस्था और राजनीतिक संस्कृति की दृष्टि से भारतीय इतिहास में तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के मौर्य साम्राज्य से लेकर सातवीं शताब्दी में हर्षवर्धन के काल तक हम इतिहास का एक ही युग मान सकते हैं। हमारी इस मान्यता का साफ-साफ आधार यह है कि वह युग हमारे देश के इतिहास का वह कालखंड है, जिसकी बौद्ध निष्ठा से प्रभावित अशोक प्रियदर्शी के शासन काल को छोड़कर सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था स्मृति-शास्त्रों में बतलाए गए

विधानों के अनुसार अनुशासित होती थी। इतिहास की दृष्टि से यह वह युग है जब भारत भूखण्ड में फैली बहुत सारी छोटी-छोटी राज्य शक्तियों के ऊपर एक केन्द्रीय महाशक्ति के रूप में साम्राज्यशक्ति स्थापित हो गई थी। इस एकात्मकता के फलस्वरूप राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से हम इन शताब्दियों में फैले इस युग को इतिहास का एक कालखंड कह सकते हैं।

कालिदास का यह युग एक समीक्षक की दृष्टि में वह कालखंड है जब महाभारत और रामायण युग के बाद इतिहास और लोकशक्ति के संबंध स्थापित हो जाते हैं। जीवन का 'लीलाकमल' खिलता हुआ दिखाई देता है। घटनाओं और पात्रों के यथार्थ का प्रामाणिक सृजन होने लगता है। एक सहस्त्राब्दी में फैला यह कालखंड हमारे इतिहास का वही युग है जहाँ से भारतीय विरासत का हर संस्कार आज भी किसी-न-किसी रूप में विचारधारात्मक क्रांतियों से रस ग्रहण करता है।

कालिदास का युग रामायण और महाभारत के युगों से हजारों साल बाद में आता है। कालिदास के युग की सभ्यता और संस्कृति पहले के दोनों युगों से जुड़ी होने पर भी उनसे बहुत भिन्न थी। उसके युग में जीवनपद्धति कोरे आदर्शवाद या तर्कवाद पर आधारित नहीं थी। इस युग की जीवनपद्धति मुख्य रूप से भौतिक समद्धि और भोगवाद की थी। कालिदास के साहित्य का इस प्रकार का गंभीर मंथन हमें इसी निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि कालिदास की रचनाओं का फलक बहुत विस्तृत है, उनका सरोकार एकांगी बिल्कुल नहीं है। वे अपने युग की सभी सर्जनात्मक विधाओं से अपना सरोकार रखती हैं और जहाँ कहीं जीवन को सुन्दर बनाने वाला कोई तत्त्व है, उसे वहाँ से ग्रहण करती हैं।

गुप्तकालीन सर्जनात्मक संदर्भ में कालिदास की विशिष्ट मूल्यदृष्टि

एक महान रचनाकार की मूल्यदृष्टि क्या होती है तथा उसका अपना परंपरा और युगबोध के साथ संवाद किस रूप में संभव हो पाता है और किस रूप में उसे अपनी मूल्यदृष्टि के लिए आत्मसंघर्ष झेलना होता है तथा साथ ही साथ यह भी अपने समकालीन रचनाकारों से भिन्न विशिष्ट दृष्टि वाला वह कैसे हो जाता है, इस महत्वपूर्ण बिंदु पर विचार रखते हुए कालिदास साहित्य के समीक्षक डॉ शिवकुमार भारद्वाज ने लिखा है:

एक रचनाकार वह चाहे कालिदास हो अथवा कोई अन्य सभी की रचना जहां एक और अपने रचनाकार के व्यक्तित्व की भावात्मक आत्मभिव्यक्ति होती है, वहीं दूसरी ओर वह उसके व्यक्तित्व में समा गए इतिहास परंपरा के बौद्ध तथा रचनाकार के अपने युग के बौद्ध की भी अभिव्यक्ति होती है। जब हम किसी रचना को इस इतिहास दृष्टि के साथ समझना चाहते हैं तो वह हमारे लिए किन्हीं स्वत: स्फूर्त भाषिक आकृतियों की कठपुतलियों का खेल भर नहीं रह जाती है बल्कि रचना की भाषिक आकृतियाँ हमारे सामने सामाजिक इतिहास बोध की जैविक इकाइयाँ बन कर प्रस्तुत होती हैं। हम यह अनुभव करते हैं कि जब कोई परंपरा किसी रचनाकार की रचना के विषय और दृष्टि पर अपने प्रभाव डालती है तो वह परंपरा उसकी रचना में एक दम निर्बाध रूप से ज्यों की त्यों नहीं उतर आती है, उसे रचनाकार के समसामयिक प्रवेश तथा उसकी युगीन परिस्थितियों के अनुभव बोध से टकराना होता है। एक अच्छा रचनाकार परंपरा के संवादी तत्वों से प्रेरणा ग्रहण करता है और उसके विसवादी स्वरों को अपने युगबोध की दृष्टि से खामोश कर देता है। इस तरह के प्रत्येक युग के प्रतिनिधि रचनाकारों की रचनाओं में परंपरा बोध और समसामयिक युगबोध के बीच एक तर्क

चलता रहता है; दोनों के बीच एक तनाव बना रहता है। जागरूक रचनाकार अपनी सामाजिक ऐतिहासिक चेतना के आधार पर परंपरा और युगबोध के बीच होने वाले तनाव में अपनी पक्षधरता सुनिश्चित करता है।

एक सचेत रचनाकार की मूल्यदृष्टि तथा परंपरा और युगबोध के बीच उसके आत्मसंघर्ष को लेकर कालिदास के रचना संसार की ओर बढ़ते हैं तो बहुत ही साफ-साफ रूप से यह देखते हैं कि जीवन मूल्यों की जिन व्यापक दृष्टिओं को लेकर हमारा यह महान कवि उच्चता के जिस बिंदु पर खड़ा हुआ है उस बिंदु को उसका समकालीन कोई अन्य काव्यकार और नाटककार नहीं छू सका है हमारी दृष्टि भी महाकवि की मूल्यदृष्टि के उच्च बिंदु इन रूपों में हमारे सामने आते हैं।

1. **कालिदास राजकवि हैं, प्रशस्तिकार नहीं**: संस्कृत साहित्य की परंपरा कालिदास को गुप्त सम्राट चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के नवरत्न में से एक बताती है अर्थात वह गुप्त सम्राट का एक राजकवि मानती है। राजसत्ता के साथ साहित्यकारों की मित्रता या जुड़ाव कालिदास के युग की ही कहानी नहीं है। यह सब तो आज के लोकतन्त्र के युग में भी वैसा ही देखा जा सकता है। राजकवि के रूप में कालिदास के विषय में ध्यान देने योग्य यदि कोई बात लगती है तो वह यह है कि यह महान कवि गुप्त सम्राट की राजसभा का सम्मान प्राप्त 'रत्न' तो अवश्य रहा होगा परंतु यह किसी सम्राट का खरीदा हुआ कवि हरगिज नहीं था। इस संबंध में बाहर से कोई साक्ष्य जुटाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। गुप्तयुग का इतिहास स्वयं बताता है कि जिस युग में 'हरिषेण' जैसा महाकवि सम्राट समुद्रगुप्त की 'प्रयागप्रशस्ति' लिख रहा था।,

‘वीरसेन’ चंद्रगुप्त विक्रमादित्य की ‘उदयगिरी प्रशस्ति’ लिख रहा था तथा व्याकरणशास्त्र का महापंडित महाकवि ‘वत्सभट्टि’, कुमारगुप्त की ‘मंदसौरप्रशस्ति’ लिख रहा था उस युग में हमारा महाकवि कालिदास ‘कुमारसम्भव’ और ‘रघुवंश’ जैसे आदर्श मूल्यों वाले महाकाव्यों की रचना कर रहा था। संस्कृत साहित्य का कोई भी सजग पाठक यह समझ सकता है कि कालिदास राजकवि होने पर भी राजसत्ता का चाटुकर या प्रशस्तिकार नहीं था। वह एक स्वतंत्रता चेतना वाला कवि था। समकालीन शासक वर्ग की किसी भी गाथा को इस महाकवि ने छुआ तक नहीं है। यह बात बिल्कुल अलग है कि उसकी काव्य रचनाओं में जहाँ-तहाँ रक्षा अर्थ में ‘गुप्’ धातु का अतिशय प्रयोग देखकर अथवा गुप्त सम्राटों के नामों से मिलते-जुलते ‘आसमुद्रक्षितीशाना’, ‘आकुमारकथोद्धातं’, ‘तत्रास्कन्दं नियतवसति’ तथा ‘महेंद्रोपकारपर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्धते भवान्’ जैसे उल्लेखों को पढ़कर महाकवि की रचनाओं में गुप्तवंश की प्रशस्ति तथा गुप्तवंश के सम्राट समुद्रगुप्त, चंद्रगुप्त विक्रमादित्य, स्कंदगुप्त और कुमारगुप्त के नामों की कीर्तिगाथा के कुछ संकेत अनुभव कर लें। यह सब होने पर भी यह तनिक भी नहीं कहा जा सकता है कि कालिदास का कवि चाटुकार संस्कृति का कवि था। उसकी रचनाओं में इस प्रकार के उल्लेख भी उसके युग के शासकवर्ग को किन्हीं-न-किन्हीं उच्च आदर्शों का सन्देश देने वाले ही कहे जा सकते हैं।

2. आदर्शों का कवि है, आदर्शहीन नहीं : महाकवि कालिदास आदर्श मूल्य का कवि है। उसकी दृष्टि में आदर्शहीन काव्यरचना निरर्थक है। इस विषय में कालिदास की दृष्टि अपने समकालीन अन्य महाकवियों से बहुत कुछ भिन्न दिखाई देती है। उदाहरण के लिए

हम गुप्त युग के ही दो अन्य महाकाव्यकार के महाकाव्य 'हयग्रीववध' और 'किरातार्जुनीय' का संदर्भ ले सकते हैं। इन महाकाव्य रचनाओं में अर्थगौरव, भाषापाण्डित्य, छंदों का वैचित्रय आदि बहुत से काव्यगुण माने जा सकते हैं परंतु इनमें महाकवि कालिदास के महाकाव्यों जैसे उदात्त आदर्शों की दृष्टि नहीं मिल सकती है। इन महाकाव्यों के रचनाकारों ने अपनी कृतियों की कथावस्तु के लिए जो प्राचीन आख्यान चुने हैं वे कालिदास के महाकाव्यों के आख्यानों की तरह आदर्श प्रकृति के नहीं है। उनके नायक चरित्रों को भी यह आदर्शवादी रूप नहीं मिल सका है जो कालिदास के महाकाव्यों के नायकों को मिला है। इस तरह के आदर्शहीन आख्यान और चरित्र रचनाकार चाहे जितना प्रयत्न करे उदात्त आदर्शों के संवाहक नहीं बन पाते हैं। ऐसी महाकाव्य रचनाएं प्राचीन आख्यानों का एक नये रूप में प्रबन्धात्मक वर्णन मात्र बन कर रह जाती हैं। उनमें वर्णित सारे राजनीतिक दाँव-पेंच अपने युग के लिये या आगे की पीढ़ियों के लिए कोई प्रेरणादायी आदर्श संदेश नहीं छोड़ पाते हैं।

कालिदास के महाकाव्यों की स्थिति समकालीन महाकवियों की काव्यरचनाओं से बहुत भिन्न है। कालिदास ने अपनी महाकाव्य-रचनाओं के आख्यान और चरित्रों का चयन ही आदर्शवादी दृष्टि से किया है। अपनी इस आदर्शवादी दृष्टि का परिचय यह महाकवि स्वयं ही अपनी महाकाव्य रचनाओं के प्रस्तावना भाग में दे देता है। कुमारसंभव महाकाव्य की प्रस्तावना भाग में जिस प्रकार से 'देवतात्मा' और 'पृथ्वी के मानदण्ड' हिमालय के वर्णन की भूमिका बाँधी है, वह स्वयं ही बता देती है कि इस महाकाव्य रचना के पीछे कवि की कोई महान और दिव्य सन्देश देने वाली दृष्टि छिपी है। वह दिव्य सन्देश यह महाकाव्य हमें देवजाति के रक्षक, दूसरे शब्दों

में कहें तो राष्ट्र के रक्षक 'सेनानी कुमार' के जन्म के रूप में देता है। इस महाकाव्य के हिमालयवर्णन को तटस्थ भाव का प्राकृतिक वर्णन मान लेना या इसके काव्यार्थ को शिव और पार्वती की 'गन्धमादन' पर्वत की संयोग श्रंगार लीलाओं में समेट देना महाकवि के काव्यार्थ की सही समझ नहीं मानी जा सकती है। कालिदास ने हिमालय की महानता का दिग्दर्शन कराया है :-

मेरे देश के उत्तर में खड़ा है हिमालय नाम का शैलाधिराज, विराटता और सौंदर्य से भरा कोई 'देवतात्मा' व्यक्तित्व! पूर्व और पश्चिम के सागर की लहरों में डुबकियाँ भरता व्योम को छूता फैला है पृथ्वी का अद्‌भुत मानदण्ड।

कालिदास के रघुवंश महाकाव्य के आरंभ में भी कवि हमें इस महाकाव्य रचना के आदर्शवादी चरित्र की सूचना सहज ही दे देता है। वह यह लगे हाथ बता देता है कि इस महाकाव्य में वह इतिहास के ऐसे आदर्श राजवंश का परिचय देने जा रहा है जिसके नायक 'आसमुद्र हिमालय' पृथ्वी का शासन करते थे तो जो 'आजन्मशुद्‌ध' थे। अब यह बात रघुवंश के पाठक से छिपी नहीं रह सकती कि इस महाकाव्य का मूल स्वर उच्च कोटि के राजधर्म संदेश देना ही रहा होगा और वह उच्च संदेश महाकवि ने अपने इस महाकाव्य में दिए भी हैं।

3. लोकाभिमुख राजतन्त्र का कवि है, निरंकुशतन्त्र का नहीं : कालिदास के महाकाव्य तथा नाटकों में आख्यान और चरित्र तो अभिजात राजवंशों के ही हैं परन्तु कालिदास ने अपनी किसी भी रचना में निरंकुश और दमनकारी राजतन्त्र का सन्देश नहीं छोड़ा है। कालिदास के काव्य का मूल स्वर लोकाभिमुख राजतन्त्र का सन्देश देने वाला ही है। महाकवि की इस मूल्यदृष्टि को रघुवंश महाकाव्य

का संदर्भ देकर आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इन शब्दों में वर्णित किया हैः-

व्यक्ति तथा समाज का गहरा संबंध है। व्यक्ति की उन्नति वाछनीय वस्तु है, परन्तु इसकी वास्तविक स्थिति समाज की उन्नति पर अवलम्बित है। व्यक्तियों के समुदाय का ही नाम समाज है। कालिदास वैयक्तिक उन्नति की अपेक्षा सामाजिक उन्नति के पक्षपाती हैं। उनका समाज श्रुति-स्मृति की पद्धति पर निर्मित समाज है। वह त्याग के लिये धन इकट्ठा करता है, सत्य के लिये परिमित भाषण करता है, यश के लिये विजय की अभिलाषा रखता है, प्राणियों तथा राष्ट्रों को पददलित करने के लिये नहीं। गृहस्थी में निरत होता है, सन्तान उत्पन्न करने के लिये, कामवासना की पूर्ति के लिये नहीं। कालिदास-द्वारा चित्रित नरपति भारतीय समाज का अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करते हैं वे शैशव में विद्या का अभ्यास करते हैं, यौवन में विषय के अभिलाषी हैं, वृद्धावस्था में मुनिवृत्ति धारण करके सारे प्रपंच से मुँह मोड़कर निवृत्ति-मार्ग के अनुयायी बनते हैं तथा अन्त में योग द्वारा अपना शरीर छोड़कर परम पद में लीन हो जाते हैं। यह आदर्श भारतीय समाज की अपनी विशेषता है।

लोककल्याणकारी राज्य के सूत्र जितने गरिमापूर्ण ढंग से कालिदास के काव्य में मुखरित हुए वैसे अन्यत्र मिलना दुर्लभ है और राजनीति की सांस्कृतिक चेतना से शून्य रचनाकारों में तो उसका मिल पाना सर्वथा असंभव ही है। वह पुरातन की थाती और भविष्य का सन्देश है। कालिदास की कविता को राजवंशों की विलास कथा कहकर नहीं उड़ाया जा सकता। उसका 'रघुवंश' लोककल्याणकारी राज्य का सन्देश देने वाली एक श्रेष्ठ काव्यकृति है।

4. **आदर्श मूल्यों का सर्जक कवि है, विघटक नहीं** : अपने समकालीन कवियों और नाटककारों से कालिदास की मूल्यदृष्टि इस अंश में भी बहुत भिन्न जान पड़ती है कि जहाँ दूसरे साहित्यकार अपनी रचनाओं में परंपरा से प्राप्त आदर्श चरित्रों और मूल्यों का विघटन उपेक्षा करने में कोई संकोच नहीं करते हैं, वहाँ कालिदास सदा ही आदर्श मूल्यों की सर्जना का परिचय देता है, मूल्यों के विघटन का नहीं। उदाहरण के लिए नाटककार शूद्रक ने जिस तरह से 'मृच्छकटिक' नाटक में ब्राह्मण चरित्रों का वेश्याप्रेम और चौर्यकर्म प्रदखशत किया है, वैसा कालिदास ने कहीं नहीं किया है। वह प्रत्येक वर्ण और जाति से जुड़े कर्म का सम्मान चाहता है, उसके प्रति तिरस्कार भाव तनिक भी नहीं। उसकी दृष्टि में ईमानदारी से अपनी जीविका चलाने वाले मछुआरे का मछली पकड़ना और बेचना भी उतना ही सम्मान योग्य कर्म है जितना कि एक वेदपाठी ब्राह्मण के द्‌वारा यज्ञकर्म के द्‌वारा जीविका कमाना।

5. **वैदिक मूल्यों का समर्थक है, अवैदिक मतों का निंदक नहीं :** कालिदास के साहित्य के व्यापक अनुशीलन के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि महाकवि का युग बौद्‌ध-जैन युग के बाद इस देश में वैदिक आर्य जनों की संस्कृति का पुनः अभ्युदय काल रहा है। इस युग में ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल शास्त्र और दर्शन आदि में पर्याप्त प्रगति हो गई थी। भोगविलास के प्रसाधनों की पर्याप्तता थी। कालिदास के समय में देश में अशांति या निराशा का अवसर नहीं था। आशा और विश्वास का स्वस्थ वातावरण बना हुआ था। इसी पर जीवन का आदर्श स्थित था। वैदिक विधि, विधान नैतिक आदर्श मर्यादाशीलता चरित्र और ज्ञान से उसके युग के अभिजातजन सुसंस्कृत थे। बौद्‌ध विचारधारा का अनात्मवाद और निराशावाद

समाप्त हो रहा था। कालिदास की मूल्यदृष्टि का मूल स्वर वेदों की आशावादी और कर्मवादी मूल्यदृष्टि से ही प्रभावित है। कवि की इस वैदिक मूल्यदृष्टि की विशेषता यह है कि उसकी साहित्य रचनाओं में अवैदिक माने जाने वाले बौद्ध और जैनमतों की कहीं कोई आलोचना या निंदा नहीं की गई है।

6. वर्णव्यवस्था का पोषण है किंतु अमानवीय हीनदृष्टि नहीं: पारंपरिक रूप से कालिदास युग की समाज व्यवस्था चार वर्णों में विभाजित थी। उसके नियन्त्रण और योगक्षेम का उत्तरदायित्व राज पर रहता था। मनुप्रणीत वर्णाश्रम धर्म का पालन कालिदास राजा का परम कर्त्तव्य बताता है, "नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत् स एव धर्मो मनुना प्रणीतः।" रघु को 'वर्णाश्रममाणंगुरु' वर्णाश्रम का गुरु कहा है। दुष्यंत को यह प्रमाण-पत्र दिया गया है कि उसके शासन में वर्णों में से अत्यंत नीची श्रेणी का व्यक्ति भी गलत रास्ते पर नहीं जाता है 'न कश्चित् वर्णानामपथपकृष्टोपि भजते'। चार वर्णों में ब्राह्मण और क्षत्रियों के विषय में उसके साहित्य में विस्तार से चर्चा उपलब्ध होती है। अन्य दो के विषय में उतनी नहीं। इससे यह स्पष्ट है कि इन दो वर्णों का प्रभाव उस समय अधिक बढ़ा हुआ था। शासक और वर्णाश्रम रक्षक होने के कारण क्षत्रिय लोगों का प्रभाव अधिक था। ब्राह्मण वर्ग का प्रभाव भी उनके ज्ञान, त्याग और आदर्श चरित्र के कारण बढ़ा-चढ़ा था। कालिदास की कृतियों में वैश्यों का वर्चस्व कहीं नहीं दिखायी देता है। शूद्रों की स्थिति भी उसी प्रकार साधारण ही प्रतीत होती है। वास्तविकता यह है कि कालिदास के सामाजिक आचार-व्यवहार के आदर्श और मूल्य मर्यादाएँ अपने युग के स्मृति शास्त्रों में प्रतिपादित वर्णाश्रम की आचार संहिता से ही प्रभावित हैं। परन्तु इस यथास्थितिवाद में कालिदास की मानवीय चेतना

समन्वयवादी ही जान पड़ती है। उसके साहित्य में समाज के किसी भी वर्ग के प्रति हीनता की कोई भावना प्रकट नहीं की गई है।

7 **वर्णनात्मक साम्राज्यवाद का घमंड नहीं, आदर्श मूल्य**: कालिदास के युग में ही नहीं महाभारत और रामायण के युग में भी हमारे राष्ट्र के सामाजिक जीवन में शासक क्षत्रिय वर्ग का एक विशेष चरित्र माना जाता रहा है। 'क्षत्रिय' शब्द के साथ आरंभ से ही रक्षा, कर्म जुड़ा रहा है। कालिदास ने वाल्मीकि और व्यास की तरह ही क्षत्रियों के चरित्रा की कसौटी राष्ट्र, समाज और दुर्बल वर्ग की रक्षा को माना है। कालिदास की दृष्टि में किसी हिंसक से आर्त प्राणी की रक्षा करने वाले व्यक्ति को ही सच्चा क्षत्रिय माना जा सकता है। आर्त प्राणियों की रक्षा तो वही क्षत्रिय कर सकता है जो स्वयं की रक्षा करने में समर्थ है। कालिदास ने अपने युग के क्षत्रियों के माध्यम से राष्ट्र के सम्मुख अपनी शक्ति में आत्मरक्षा के गौरवपूर्ण संदेश दिये हैं। ऐसा ही आदर्श संदेश कवि ने वशिष्ठ, कण्व और कौत्स जैसे ब्राहमण वर्ण के चरित्रों के माध्यम से त्याग, तपस्या और करुणा का दिया है।

8. **धार्मिक संकीर्णतावाद नहीं, धार्मिक समन्वयवाद की दृष्टि**: इतिहास की दृष्टि से कालिदास युग से पूर्व भारत की धार्मिक चेतना में बहुत से विरोधी तत्त्व् समा गए थे। यह विरोध वैचारिक और तार्किक था कोई सांप्रदायिक या संकीर्णतवादी नहीं था। शताब्दियों पूर्व से जो वैदिक यज्ञों की परम्परा चली आ रही थी और बहुत से देवी देवताओं की पूजायें प्रचलित थी उनके विरोध में बौद्ध और जैन विचारधाराएं पनप चुकी थी। ये सभी विचारधाराएं अपने-अपने युग की परिस्थितियों की देन थी। धीरे-धीरे बौद्ध और जैन

विचारधारा अपने मूल रूप से हटकर वैदिक विचारधारा के निकट आ गईं और एक मिली-जुली धार्मिक चेतना विकसित हो गई।

कालिदास के युग से पूर्व वैदिक धार्मिक चेतना में स्वयं भी बहुत बड़ा परिवर्तन आ चुका था। यह परिवर्तन पुराणों के अवतारवाद के रूप में आया था। अब लोग वेदों के इन्द्र, वरुण, अग्नि जैसे बहुत सारे देवताओं के स्थान पर विष्णु को प्रमुखता देने लगे थे। विष्णु परमात्मा अर्थात् ईश्वर का ही एक रूप था। कालिदास के युग की धार्मिक चेतना ने परमात्मा की तीन प्रकार की शक्तियों में विश्वास बना लिया था। परमात्मा की एक शक्ति संसार को पैदा करने वाली मान ली गई जिसे ब्रह्मा नाम दिया गया। परमात्मा की दूसरी शक्ति संसार का पालन करने वाली मान ली गई, इस शक्ति का नाम विष्णु रखा गया। विष्णु भी वास्तव में वेदों का ही देवता था। परमात्मा की तीसरी शक्ति संसार का संहार करने वाली मान ली गयी। संहार करने वाली शक्ति को शिव नाम दिया गया। इस प्रकार से एक ही परमात्मा का त्रिदेव अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और शिव के रूप में मान लिया गया। इन तीनों देवताओं का पुरुष रूप होने से इनकी पत्नियों के रूप में सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती नाम की तीन देवियों की कल्पना कर ली गई। इस प्रकार से वेदों के सारे देवी-देवता तीन देवताओं के अन्दर समा गए। कालिदास के काव्यों में इन्हीं तीन देवताओं को और उनकी देवियों को समान रूप से महत्त्व मिला है। वेदों में वर्णित बहुत सारे देवी-देवताओं को नकारा तो नहीं गया है किन्तु उनकी स्थिति बहुत साधारण हो गई है।

कालिदास के युग की धार्मिक चेतना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसने जैन और बौद्धों के अहिंसा, करुणा और मैत्री जैसे मूल्यों को तो ग्रहण किया है परंतु उनके निराशावाद और

पलायनवाद को उसके यहाँ कोई स्थान नहीं मिला है। वैदिक आर्यों का कर्मवादी महत्त्वाकाँक्षी जीवन दर्शन ही उस युग के धर्म का स्वरूप था। व्यक्तिगत सदाचार और आदर्श चरित्र आम आदमी की तरह शासक वर्ग के लिए भी आवश्यक थे। कालिदास का क्षत्रिय शासक चौथी अवस्था से पूर्व जीवन से पलायन की बात नहीं सोच सकता था। वह केवल वृद्धावस्था में ही 'मुनिवृत्त' ग्रहण कर सकता था।

9. **लोकजीवन के प्रति उदासीनता नहीं, उल्लासपूर्ण दृष्टि**: कालिदास की मूल्यदृष्टि का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष उसकी लोकजीवन के परिवेश तथा लोकजीवन की मुग्धता के प्रति कवि की रागात्मक सम्पृक्ति का भाव है। 'ऋतुसंहार' और 'मेघदूत' महाकवि की ऐसी रचनाएं हैं जिनकी प्रेरणा का मूलस्रोत लोकजीवन ही है। कालिदास के युग का लोकजीवन अर्थात् साधारण जन का जीवन प्रकृति के साथ किस तरह रचा-पचा था, प्रकृति के बदलते मौसम और उसकी छहों ऋतुओं का चक्र लोकजीवन को क्या-क्या रूप-रंग देता था, लोक के तन और मन को कैसे-कैसे छू लेता था, ये सारे चित्र हमें कालिदास के 'ऋतुसंहार' और 'मेघदूत' से ही मिलतें हैं। कालिदास ने लोकजीवन के इन सभी मादक चित्रों को अत्यन्त मुग्ध भाव और उल्लास भरी दृष्टि से देखा है। कवि की यह लोकवादी दृष्टि, जीवन अपने नैसर्गिक रूप में परम सुन्दर और जीने योग्य है ऐसा आशावाद पाठकीय चेतना में संचरित कर देती है। लोकजीवन के प्रति संप्रक्तता का यह आत्मीय भाव गुप्तयुग के किसी अन्य कवि की रचना में नहीं आ सका है।

कालिदास का संपूर्ण साहित्य जीवन के उल्लास का काव्य है। उसकी किसी भी रचना में जीवन की दीनता और हीनता कहीं

दिखाई नहीं देती है। उसकी कृतियों में चित्रित अभिजात और सामान्य लोक का जीवन संगीत, नृत्य मधुपान के उल्लास और लालित्य में सराबोर है। मनोविनोदों की उसमें भरमार है। पुरुष और नारी दोनों ही अपने रूप सौन्दर्य और उसके श्रंगार से प्यार करते हैं। अलंकार और आभूषण सभी को प्रिय हैं। अभिजात जन यदि स्वर्ण और रत्नों के आभूषणों पर इठलाते हैं तो साधारण लोक प्रकृति से मिले केसर, कमल और किसलयों के गहनों से मुग्ध रहते हैं। पूरा जीवन सौन्दर्य में डूबना चाहता है। जीवन को कवि ने जीने की उल्लास भरी दृष्टि से ही देखा है, पलायन की दृष्टि से नहीं।

10. विराट राष्ट्रीय चेतना का कवि है, आँचलिक नहीं: कालिदास की मूल्यदृष्टि की सबसे बड़ी एक विशेषता उसकी राष्ट्रीय चेतना है। कालिदास का भारत विराट है। वह उत्तर में हिमालय से दक्षिण में सागर तक फैला है। उसके पूर्व और पश्चिम तट भी सागर से घिरे हैं। कवि के 'कुमारसंभव' का हिमालय 'शैलाधिराज' ही नहीं है वह 'देवतात्मा' है और पृथ्वी का मानदण्ड है। कालिदास की कविचेतना ने गिरिराज हिमालय को सदा इसी तरह आर्य संस्कृति की गौरवगाथाओं के केंद्र में रखकर देखा है। कालिदास का यह शैलाधिराज उसके मन में बसे भारत की सर्वोच्च चेतना का प्रतीक है। कालिदास के मन का राजहंस कैलाश के मानसरोवर में ही सबसे अधिक रमता है। वह न केवल उसके कुमारकाव्य की क्रीड़ा-स्थली गंधमादन ही है अपितु उसकी दूसरी कविता-कृतियों के हेमकमल भी हिमालय की गोद में ही सर्वाधिक मुस्करा सके हैं। कालिदास का देवात्मा हिमालय भारत की राष्ट्रीय अस्मिता का मूर्तिमान प्रतीक है। उसके हृदयदेश से निकली जल-धाराओं में धरती की एकता और

महानता का संदेश गया है और राष्ट्रगौरव का यह संदेश ही कालिदास की कविता का केंद्रीय भाव है।

भारत की विराट राष्ट्रीय चेतना का जो संदेश कालिदास का कुमारसम्भव का हिमालय देता है वही महान सन्देश हमें कवि ने वशिष्ठ की नन्दिगी गौ के माध्यम से दिया है।

11. 'सत्यं शिवं सुंदर' का कवि है, असुन्दर का नहीं: कवि कुलगुरु कालिदास का संपूर्ण साहित्य सत्य, शिव और सुंदर की आराधना है। उसमें असत्य, अशिव और असुंदर को कोई स्थान नहीं है। इस महाकवि की दृष्टि में जो जीवन का शिव तत्त्व है वही सुंदर है और जो सुंदर है वही सत्य है। गुप्तकालीन साहित्य सर्जना में ही नहीं उसकी परवर्त्ती साहित्य सर्जना में भी इस महान कवि की सौन्दर्य चेतना को छू सकने वाली रचनाएँ संस्कृत साहित्य में संभव नहीं हो सकी हैं।

निष्कर्ष

गुप्त युग की साहित्य सर्जना के क्षेत्र में उत्कृष्ट कोटि की गीतिकाव्य रचना के द्वार खोलने का श्रेय कालिदास को ही जाता है। उसका लिखा 'मेघदूत' दूतकाव्य परंपरा का प्रवर्तक माना जाता है। कालिदास का युग वास्तव में अपनी विशेषताओं के कारण पूर्व के युगों से भिन्न और विशिष्ट व्यक्तित्व रखता है। यह युग भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग कहा जाता है। इस युग की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि गुप्त वंश के चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त, स्कन्दगुप्त तथा कुमारगुप्त आदि सुयोग्य और पराक्रमी शासकों ने देश की राजनीतिक एकता दृढ़ की, देश को विदेशी आक्रांताओ के भय से मुक्त किया और देश के आन्तरिक जीवन में सुख-सम्राधि

का विस्तार किया। इन अनुकूल परिस्थितियों का ही यह प्रभाव हुआ कि लोकजीवन के सभी क्षेत्रों में सर्जनात्मकता के द्वार खुल गए। यही वह सर्जनात्मक स्वर्ण युग था जिसमें धर्म, दर्शन, राजनीति, भाषाशास्त्र, आयुर्वेद, गणित, वास्तुशास्त्र, कामशास्त्र, नाट्य, नृत्य, संगीत, चित्राकला तथा साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में असाधारण उपलब्धियाँ मिलती हैं। कवि कुलगुरु माना जाने वाला महाकवि कालिदास इसी स्वर्ण युग की अनुपम देन है।

गद्य क्षणिका : रामदेव धुरंधर का अभिनव साहित्यिक प्रयोग

डॉ नूतन पाण्डेय
सहायक निदेशक (भाषा)
केंद्रीय हिंदी निदेशालय
पश्चिमी खंड -7, आर. के. पुरम
नई दिल्ली -110066

रामदेव धुरंधर मॉरिशस के प्रखर हिंदी साहित्यकार हैं, जिन्होंने गद्य की लगभग हर विधा में लेखकीय रचनात्मकता को अभिव्यक्ति देकर अपनी अनुभवशीलता और कुशल रचनाधर्मिता को प्रमाणित किया है। रामदेव धुरंधर ने अद्भुत सृजनात्मक नैपुण्य और तीक्ष्ण संवेदनात्मकता का प्रयोग करते हुए मॉरिशस के हिंदी कथा साहित्य की उस परम्परा को विकसित किया है जो आने वाली पीढ़ियों के लिए एक लम्बे समय तक मार्गदर्शक की भूमिका निभाती रहेगी । गुणवत्ता और परिमाण की दृष्टि से अतुलनीय उनका साहित्य मॉरिशस के हिंदी साहित्य की वह अमूल्य धरोहर है, जिसके बिना मॉरिशसीय साहित्य का समग्र मूल्यांकन संभव नहीं । रामदेव धुरंधर का साहित्य मॉरिशस के साहित्य एवं समाज को भावनात्मक, संवेदनात्मक और इससे भी बढकर उसे तार्किक ढंग से समझने और अनुभूत करने की दृष्टि प्रदान करता है। उनके लेखन

में अभिव्यक्ति की तड़प और असहनीय बेचैनी है, जो उन्हें निरंतर लिखने के लिये प्रेरित करती है। विपुल मात्रा में लिखा गया उनका साहित्य उनकी इसी बेचैनी और तडप का जीवंत परिचायक है।

रामदेव धुरंधर के गद्य-लेखन की बात करें तो उन्होंने उपन्यास,कहानी ,लघुकथा,संस्मरण ,व्यंग्य संग्रह आदि गद्य की लगभग सभी विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है | छः खण्डों में प्रकाशित उनका पथरीला उपन्यास मॉरिशस के हिन्दी साहित्य में मील का पत्थर है,जिसका तोड़ मिलना आसान नहीं| इन सबके अतिरिक्त, उनके द्वारा उद्भूत नितांत मौलिक और नूतन विधा - गद्य क्षणिका की उदभावना साहित्य जगत में निस्संदेह एक अभूतपूर्व पहल कही जा सकती है | रामदेव धुरंधर जी अभी तक दो गद्य क्षणिका संग्रह साहित्य जगत को उपहार दे चुके हैं | उनका पहला संग्रह गद्य क्षणिका- एक प्रयोग- नाम से अभय प्रकाशन, कानपुर से सन 2017 में प्रकाशित हुआ था,जिसमें उनकी 411 क्षणिकाएँ संकलित हैं | दूसरा संग्रह छोटे-छोटे समंदर प्रभात प्रकाशन से सन 2018 में प्रकाशित हुआ है जिसमें विविध विषयों पर लिखी गई उनकी 524 क्षणिकाएँ संकलित हैं |

सही मायने में एक उत्कृष्ट और सफल साहित्यकार वह है जो परंपरागत और बंधी बंधाई लकीर से हटकर कुछ ऐसा लिखे जो नितांत मौलिक और अनूठा हो | रामदेव धुरंधर इस साहित्यिक निकष पर पूर्णतया खरे उतरते हैं क्योंकि वे अपनी प्रयोगधर्मी रचनाशीलता का अवलम्ब लेकर साहित्य में नवीन परंपरा को जन्म देने के लिए सतत उद्यत दिखाई पड़ते हैं | इसका सबसे बड़ा उदाहरण है उनके द्वारा लिखी गई गद्य क्षणिकाएं| हिंदी साहित्य में एक अनूठा प्रयोग होने के कारण गद्यक्षणिका निश्चित ही रामदेव धुरंधर का हिंदी साहित्य को एक अनुपम अवदान है | किसी भाषा

के साहित्य में इस प्रकार के नूतन प्रयोग उस भाषा के साहित्यिक विकास और गतिमयता का द्योतक होते हैं| चूँकि इससे पूर्व हिदी साहित्य में लघुकथा-लेखन की परंपरा तो मिलती है, काव्य क्षणिका और हाइकु जैसे प्रयोग भी इधर देखे जा रहे हैं, लेकिन गद्य क्षणिका की उद्भावना रामदेव धुरंधर की नितांत मौलिक कल्पनाशीलता का परिणाम है| अपनी लेखनी की उर्जस्विता से रामदेव धुरंधर ने मॉरिशस में प्रवाहित हो रही हिन्दी की साहित्यिक धारा को जो प्रवाहमयता प्रदान की है, उसके लिए साहित्य उनका सदैव ऋणी रहेगा । जैसा पूर्व में भी चर्चा की गई है रामदेव धुरंधर ने किसी वाद-विमर्श के सांचे में ढलने की बजाय अपनी लेखकीय प्रतिभा,कल्पना-शक्ति, सृजनात्मक-कौशल,प्रयोगजन्य मौलिकता, अन्वेषक प्रवृति और कुछ नया करने की चाह में अपने प्रतिमान खुद गढ़े, नए मानक स्थापित किये, उन्हें तराशा, सजाया, संवारा और बिल्कुल नए, मौलिक और अप्रतिम ढंग से उन्हें साहित्य जगत के समक्ष प्रस्तुत किया। इस अद्भुत प्रयास से उन्होंने अपनी कलम को सशक्तता तो प्रदान की ही है ,हिंदी साहित्य को भी अपार समृद्धि और अनंत ऊचाइयां प्रदान कीं हैं|

साहित्य में किसी नवीन विधा को जन्म देना साहित्यकार के लिए एक दुस्साध्य प्रक्रिया है | नवीन विधा को दृढ़ता से प्रतिस्थापित करने से पूर्व रचनाकार को कई जटिल प्रक्रियाओं से होकर गुजरना पड़ता है, तब जाकर वह अपने वांछित और अद्भुत रूप को प्राप्त करती है| गद्य क्षणिका की उदभावना रामदेव धुरंधर की इसी श्रमसाध्य कोशिश और दृढ इच्छाशक्ति का उदाहरण है। रामदेव धुरंधर जी गद्य क्षणिका- एक प्रयोग के पुरोवाक में लिखते हैं "गद्य क्षणिका मेरे दिमाग में आने से लगा था इसके बारे में जमकर सोचना मेरा लेखकीय धर्म हो गया यह मेरी अभ्यस्तता

है,मुझे कुछ प्रभावित करता है तो उसमें मैं अपने लेखन के लिए कुछ ढूँढने लग जाता हूँ| इस बार जो हुआ वह कहानी ,उपन्यास या इस प्रकार की दूसरी रचना का स्फुरण नहीं था,बल्कि एक विधा के ज्वार-भाटे थे जो मुझे प्रश्नों जैसे घेरे में ले जाकर मुझसे उत्तर की अपेक्षा कर रहे थे | विनम्रता पूर्वक कह लूं गद्य क्षणिका यह मेरी अपनी संरचना है | मैंने अपनी सोच से इसे पाया है, इसीलिए इस पर अपने हस्ताक्षर चढाने के बाद ही आगे कुछ लिखने की अपनी स्थिति में अपने को पा सकता हूँ"|

गिनती के कुछ इने गिने शब्दों में एक सारगर्भित विषयवस्तु को दक्षता से समेकित करना बहुत आसान नहीं ,रामदेव धुरंधर की गद्य क्षणिकाओं को रचने की प्रक्रिया कुछ इस तरह है कि वे किसी ज्वलंत और प्रासंगिक मुद्दे को समाज से उठाकर कम से कम शब्दों में खूबसूरती से पिरोकर पाठकों के समक्ष इस नैपुण्य से रखते हैं कि वह उस पर चिंतन करने के लिए विवश हो जाता है | रामदेव धुरंधर का अपना मानना है कि "इन गद्य क्षणिकाओं से परिभाषा बने कि अपने आपमें ये एक गाँठ हो जिसने अपने भीतर कुछ खास रखा है| वे कहते हैं कि मैं अपनी गद्य क्षणिकाओं में ऐसा करता हूँ कि अंतिम शब्द के बाद अलिखे शब्दों की कोई खनक न रह जाए | यही गाँठ को परिभाषित कर रहा है,अर्थात वह खुले नहीं,लेकिन बोध दे सके,उसके भीतर कुछ है, तभी तो वह गांठ है | इनके अंतिम शब्द प्रथम शब्द से दूर न होकर बहुत ही समीप हैं | इनका आरंभ बेहद करीब में इसकी समाप्ति का निर्धारण कर देता है | और इसकी खास खुशबू यह होती है कि निरर्थकता के कलंक से अपना बचाव तो हर हालत में कर ही लेती है"| गद्य क्षणिका के प्रति रामदेव धुरंधर का यह दृष्टिकोण राजेन्द्र यादव के उस कथन का स्मरण कराता है जिसमें उन्होंने

समकालीन लघु कथाकारों की रचनाक्षमता पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि समकालीन लघु कथाकारों ने अपने कथ्य को यहीं और इसी क्षण पर केन्द्रित किया है,ठीक इसी तरह रामदेव धुरंधर के लिए भी कहा जा सकता है कि वे अपनी गद्य क्षणिका की बोधगम्यता,पाठकों के साथ उसकी त्वरित संप्रेषणीयता और तद्जन्य प्रभाव के माध्यम से अपनी कथ्यपरकता को यहीं और इसी क्षण पर केन्द्रित करके अत्यंत गहन बात को बड़ी ही सहजता और स्वाभाविकता से कह जाते हैं| जिस तरह किसी मुहावरे ,कहावत या लोकोक्ति में किसी जीवन का कोई गूढ़ सन्देश बहुत ही संक्षेप में, लेकिन रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है जिसके माध्यम से उसमें निहित सन्देश या शिक्षा लोगों तक पहुँचाई जाती है,ठीक उसी प्रकार रामदेव धुरंधर कुछेक शब्दों में संपूर्ण जीवन दर्शन को पाठकों के समक्ष अत्यंत प्रभावी तरीके से प्रस्तुत करते हैं,जो रोचक होने के साथ-साथ जीवन के लिए अमूल्य दिशा निर्देशक का भी काम करते हैं| निश्चित ही अपनी क्षणिकाओं में वे अपने जीवन के महत्वपूर्ण और उपयोगी अनुभवों को अत्यंत सीमित शब्दों में पिरोकर इस कलात्मकता से प्रस्तुत करते हैं कि पाठक उनसे अपना तादात्म्य तो स्थापित करते ही हैं, उनसे अभिभूत और चमत्कृत भी हो जाते हैं|

यह सत्य है कि रामदेव धुरंधर से पूर्व हिन्दी में गद्य क्षणिकाओं को लिखने की परम्परा प्राप्त नहीं होती,इसलिए निर्विवाद रूप से उन्हें इस अद्भुत प्रयोग का जन्मदाता कहा जा सकता है | अपनी इस उपलब्धि को वे अपने मौखिक और लिखित वक्तव्यों में पूर्ण विनम्रता से स्वीकारते देखे भी जाते हैं| एक साहित्यिक माहौल में मेरे द्वारा उनसे यह पूछने पर कि गद्य क्षणिका लिखने की प्रेरणा उन्हें कहाँ से मिली, वे इसका समस्त श्रेय वन्दनीय शब्द शिल्पी रामधारीसिंह दिनकर जी को देते हुए कहते हैं - “धर्मयुग में

दिनकर जी की क्षणिकाएँ शीर्षक से उनकी दो दो पँक्तियों की कविताएँ प्रकाशित हुई थीं। एक कविता थी --

गवाक्ष तब भी था जब खोला नहीं गया था।
सत्य तब भी था जब बोला नहीं गया था ।।

यह मुझे बहुत प्यारा लगने से मेरे मन में रह गया था। कविता का सर्जन मेरे मन में उतरता नहीं है, लेकिन गद्य में इसे मैं जरूर थामता। मैंने बहुत सी लघुकथाएँ लिखी हैं जो खूब छोटी होती हैं। पर उसमे मुझे लघुकथा का आभास होने वाला नहीं था क्योंकि मूल रूप में वह तो लघुकथा ही थी। बाद में बल्कि अभी हाल में [2016 जनवरी] सही मायने में मैंने अपने रचनाकार को क्षणिका लेखन के लिए मना लिया और कुछ क्षणिकाएँ लिखने के बाद फेसबुक में पोस्ट करने लगा। दो चार महीने बीतते बीतते मेरे पास पुस्तक भर के लिए क्षणिकाएँ हो गयीं और दो महीने के अंतराल में पुस्तक छप भी गयी। । मैं जहाँ तक जानता हूँ यह मेरी ओर से उद्भूत एक विधा है। लोगों पर इसका प्रभाव पड़ता जा रहा है। शायद लोग बाद में इस तर्ज़ पर लिखना शुरु कर दें"।

अक्सर सामान्य पाठक लघुकथा और कहानी को एक मानने का भ्रम कर बैठते हैं | यहाँ तक कि साहित्य मर्मज्ञों के लिए भी इन दोनों विधाओं में एक स्पष्ट विभाजक रेखा खींचना बहुत आसान नहीं होता | लगभग यही स्थिति लघुकथा और गद्य क्षणिका में अंतर करते समय उत्पन्न होती है | ऐसा होना अत्यंत स्वाभाविक भी है क्योंकि लघुकथा और गद्य क्षणिका अपनी समानधर्मिता के कारण काफी हद तक एक सी प्रतीत हो सकती हैं | एक ओर दोनों विधाओं में उद्देश्यपरक समानता है तो दूसरी ओर अभिव्यक्तिजन्य विषमता| दोनों ही विधाएं कम शब्दों में कथ्य और अर्थ की स्पष्टता को लेकर चलती हैं, लेकिन अपने सूक्ष्मतर कलेवर

की खूबी के कारण गद्य क्षणिका लघुकथा से एक कदम आगे बढ़ जाती है | गद्य क्षणिका में शब्दों का उपयुक्त चयन, उनकी सहज-सरल अभिव्यक्ति और इन सबसे बढ़कर अत्यंत सीमित शब्दों में सम्पूर्ण कथा की दक्षतापूर्वक कसावट एक तरह से दुष्कर और लेखकीय चुनौती कही जा सकती है और रामदेव धुरंधर इस चुनौती को बड़े ही साहस और कुशलता से निभाते हैं |

रामदेव धुरंधर की गद्य क्षणिका की रचना प्रक्रिया को यदि सूक्ष्मता से विश्लेषित किया जाये तो कह सकते हैं कि वे विवेक-चातुर्य और सूझ-बूझ के साथ,सावधानी बरतते हुए शब्दों का चयन करते हैं| अपने लक्ष्य के प्रति पूर्ण स्पष्ट रहते हुए वे कथा के ताने -बाने को बुनना आरंभ करते हैं ,आरंभ और अंत की मध्यावस्था में वे कुशल संयोजन क्षमता के साथ भावों को कसते हुए आगे बढ़ते जाते हैं और आश्चर्यजनक ढंग से कहीं भी इस कसावट को ढीला या अनियंत्रित नहीं होने देते| उसकी शिल्पगत खूबसूरती को बरकरार रखते हुए बड़े ही धैर्य के साथ लेकिन त्वरित गति से वे कथा को उसके चरम बिंदु तक ले जाते हैं और चमत्कारिक ढंग से अपनी बात पाठकों तक पहुंचाकर उन्हें अभिभूत कर देते हैं |

चूँकि लेखक के पास शब्द कम हैं और विज़न व्यापक, इसलिए आभासी रूप से लक्ष्य के निकट होने और शब्द रूपी हथियार की सीमितता होने के बावजूद लेखक सभी चुनौतियों को पार करते हुए पाठक के दिल तक पहुँच जाता है | उसका कथ्य और अभिव्यक्ति दोनों पाठक पर इस तरह प्रभाव डालती हैं कि वह लम्बे समय तक चाहकर भी इस भावावस्था से मुक्त नहीं हो पाता| गद्यक्षणिका का प्राण उसका अंत है जो पाठक के लिए अकल्पनीय और अप्रत्याशित होता है | क्षणिका की यह चरमावस्था अचरज भर देने वाली भी हो सकती है, पाठक के दिल को चोट भी पहुंचा

सकती है, अचंभित भी कर सकती है और बहुत कुछ सोचने को बाध्य भी कर सकता है | इस तरह गद्य क्षणिका में स्फोट भी है, चोट भी, स्तम्भन भी है, अचम्भन भी, चिंतन भी है, मनन भी, गलन भी है, चुभन भी, पीड़ा भी है, चुनौती भी-हलचल भी है, मंथन के प्रति विवशता भी, व्यंग्य की मारकता भी है और तार्किकता भी|

प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. राजनाथ तिवारी उनकी गद्य क्षणिकाओं के बारे में अपने विचार कुछ इस तरह व्यक्त करते हैं:

"श्री रामदेव रामदेव धुरंधर जी मारीशस के प्रसिद्ध हिंदी लेखक हैं। आपकी गद्य क्षणिकाएँ अति संक्षेप में बहुत बड़ी बात कह जाती हैं। संवेदना ही साहित्य का प्राण है। वही साहित्य सफल है, जो यह सोंचने पर मजबूर कर दे कि हम मनुष्य हैं। जीवों में सर्वश्रेष्ठ हैं, लेकिन क्या हम सर्वश्रेष्ठ कार्य भी कर रहे हैं? जब साहित्य ह्रदय में जाकर बता दे कि तुम यह कार्य गलत कर रहे हो या समाज गलत कर रहा है। इससे कष्ट ही बढ़ेगा। तब वह अच्छा साहित्य है। अगर साहित्य किसी की पशुता से वितृष्णा उत्पन्न नहीं कर सकता, तो वह साहित्य है ही नहीं"।

बहुत संभव है कि साहित्य में रुचि रखने वाले बहुत से साहित्य-प्रेमियों को रामदेव धुरंधर की गद्य क्षणिकाओं को पढने और उनकी कथ्य-वस्तुगत विशेषताओं से परिचित होने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ हो | प्रस्तुत आलेख इस उद्देश्य पर केन्द्रित होकर लिखा गया है कि इस आलेख के माध्यम से सभी साहित्य प्रेमी रामदेव धुरंधर की गद्य क्षणिकाओं के स्वरूप, कथ्य, कलात्मक सौन्दर्य और उसके शिल्पगत वैविध्य से परिचित हो सकें ,तत्पश्चात उनको स्वतः विश्लेषित/समालोचित और मूल्यांकित कर सकें |

गद्य क्षणिकाओं की विषयवस्तु की बात करें तो जहाँ तक रामदेव धुरंधर की दृष्टि जहाँ जा सकती है उन सब विषयों को

उन्होंने अपनी क्षणिकाओं का आधार बनाया है | अपने समाज में व्याप्त विसंगतियों और तद्जन्य प्रभावों को वे बड़ी ही सहजता से अपनी छोटी छोटी गद्य क्षणिकाओं के माध्यम से बेबाकी से उठाते हैं, न केवल उठाकर चुप हो जाते हैं बल्कि अपने पाठकों को उनसे उत्पन्न खतरों के प्रति जागरूक भी करते हैं, उनकी संभावित विभीषिकाओं से उन्हें आगाह भी कराते हैं | इस प्रकार वे अपनी साहित्यिक निष्ठा को ईमानदारी से निभाने का हरसंभव प्रयत्न करते हैं | लेखन के प्रति यही स्पष्टता उनके विषय की वैविध्यता को व्यापक बनाती है | जीवन का शायद ही ऐसा कोई अनुभव हो जिसे उन्होंने अपनी क्षणिकाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति न दी हो| यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उनकी गद्य क्षणिकाएं युगीन समाज को प्रतिम्बित करने के साथ ही समाज के प्रति उनके गंभीर सरोकार को भी व्यक्त करती हैं |

आगे कुछ गद्य क्षणिकाओं के विश्लेषण के द्वारा पाठकों को इस कथन को स्पष्टतया समझने में सुगमता होगी| सबसे पहले बात करते हैं **राक्षस नामक गद्य** क्षणिका की जिसमें वे मनुष्य समाज में रक्तबीज के समान सदा विद्यमान रहने वाली राक्षसी प्रवृत्तियों की बात प्रतीकात्मक ढंग से रखते हैं| देव और दानव सात्विक और तामसी प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं जो हमारे समाज में अनादि काल से विद्यमान हैं | समाज में असत है तो सत भी है, तम है तो ज्योति भी है, दिवस है तो रात्रि भी है | ये विरोधाभासी प्रवृत्तियाँ समाज में किस तरह अपना प्रभुत्व जमाये रखती है और शाश्वत विद्यमान रहती हैं इन चंद पंक्तियों की क्षणिका में देखिये : ---

"तुम जिस घाटी पर खड़े हो संसार के अंतिम राक्षस ने यहीं से कूद कर आत्म हत्या की थी। पर मैं देख रहा हूँ मेरी बातों

का तुम पर असर नहीं हुआ। जब कि होना चाहिए था यह सुनते ही तुम काँप पड़ते और इस जानलेवा घाटी से दूर हट जाते। क्या कहते हो, तुम ही आत्म हत्या करने वाले अंतिम राक्षस थे। मेरे लिए इस में कोई आश्चर्य नहीं। मैंने पहले भी देखा है अंतिम राक्षस मरता है तो जिंदा होता है भी। एक जमात के लोग होते हैं जो अंतिम राक्षस के जिंदा होने पर उत्सव मनाते हैं। इस तरह से अंतिम राक्षस फिर से जन - मानस में पैठ जाता है"।

राजनीति में ईमानदारी और नैतिकता की कल्पना करना दिवास्वप्न सदृश है | सत्ता प्राप्ति के लिए अपने आदर्शों और सिद्धांतों से किस त्वरित गति से क्षणभर में ये राजनेता समझौता करते हैं,ये किसी से भी छिपा नहीं है | कुर्सी की लोलुपता इन नेताओं को किस हद तक गिरा सकती है, ये साधारण मानव के लिए कल्पनातीत है | राम - सेतु प्रस्तुत क्षणिका में एक ओर तो व्यंग्य का पैनी धार है तो दूसरी और राजनैतिक पतन के कारण उत्पन्न पीड़ा की गहन अभिव्यक्ति भी है | क्षणिका के माध्यम से लेखक सांस्कृतिक विचलन के प्रति अपना असंतोष भी व्यक्त करता है और उसे बचाने के लिए बेचैनी और छटपटाहट भी | इसके अतिरिक्त नई पीढी को अपनी सांस्कृतिक धरोहर को बचाने और पूर्वजों की भूमि के प्रति जुड़ाव को बनाए रखने की लेखक की ईमानदार कोशिश भी सराहनीय है | देखें:

"मॉरिशस आए प्रथम भारतीय आप्रवासियों का राम - सेतु हुआ। मनवा नदी का मानो राम - सेतु एक विशाल भाल हो। भारतीय मजदूर सुबह अपने राम - सेतु से बिंदा पर्वत की दिशा में मज़दूरी करने जाते और शाम को अपने घर लौटते थे। सौ साल बाद पुल जब नया बना तो उसका नाम राम - सेतु न हो कर कुछ हुआ।

सदन में बैठने वाले भारतीय खून के बहुल राजनेताओं में यदि ईमान होता तो नाम यही रहता -- राम - सेतु"।

इसमें कोई संदेह नहीं कि अपने जीवन अनुभवों को उनकी पूर्ण समग्रता के साथ पाठकों तक पहुंचाने में लेखक का सबसे बड़ा शस्त्र उसकी भाषा होती है | रामदेव धुरंधर अपनी भाषा की सहजता,सरलता और प्रवाहमयता से क्षणिका को पाठकों के दिल में सीधे इस तरह उतारते हैं कि वह उसकी रौ में बहने से खुद को रोक नहीं पाता, कथ्य की यथार्थता, अभिव्यक्ति की तीव्रता और शब्दों की मारकता के कारण मूक-विह्वल होकर वह लम्बे समय तक निष्प्रभ हो जाता है, और इसे ही धुरंधर की लेखन शैली की अपार सफलता कहा जा सकता है |

साहित्य में प्रतीक का महत्त्व सौन्दर्यात्मक दृष्टि से ही नहीं बल्कि शिल्पगत दृष्टि से भी उपयोगी होता है | रामदेव धुरंधर जी की विशिष्टता है कि वह अपनी बात को प्रतीकों के माध्यम से पाठकों तक संप्रेषित करते हैं,ताकि कथ्य की जड़ता के परिहार के साथ ही कथ्य का प्रभाव भी स्थाई रह सके | बिम्ब- प्रतीकों को उत्कृष्ट तरीके से प्रयोग करके वे अपने मंतव्य को इस तरह रखते हैं,जिससे व्यापकता में अर्थ की अनेक परतें खुलती जाती हैं | प्रहरी नमक क्षणिका देखें : "नदी का सोता जहाँ से फूटा और प्रवाह बन कर समुद्र तक पहुँचा, दोनों तट एक दूसरे से कहते रहे, हम तो इसी तरह एक दूसरे के पास, लेकिन एक दूसरे से अनछुए रह गए। दोनों ने आज हँसी कर ली। यदि हम में से एक स्त्री और एक पुरुष होता तो इस तरह पास और इस तरह दूर, बहुत बड़ी पीड़ा का कारण बन जाता। सवाल उठा तो हम कौन हैं? दोनों का निदान एक ही हुआ, नदी को मर्यादित करने वाले हम प्रकृति के प्रहरी हैं"।

प्रकृति स्वयं में नियंत्रित मर्यादित है,ये मनुष्य ही है जो अपने मद में प्रकृति का न केवल अनावश्यक दोहन करता है बल्कि मानव जाति को खतरे में भी डालता है | वह खुद को सर्वशक्तिमान मानने लगता है और यह भूल जाता है कि चाहे हमारे विचार हों या हमारी जीवनचर्या दोनों ही प्रकृति से ही संचालित और नियंत्रित है | लेखक यहाँ स्त्री पुरुष के बिम्ब के माध्यम से प्रकृति-पुरुष में संतुलन का सन्देश देने का प्रयत्न करता है | धर्म के नाम पर कुत्सित प्रवृत्तियों का प्रचलन समाज में आदिकाल से व्याप्त है | नारियों का कभी धर्म-कभी पाखंड और कभी विवशताओं के नाम पर दैहिक शोषण किया जाता रहा है| देवदासी का प्रचलन भी नारी शोषण का एक रूप है जिसे लेखन ने अपनी क्षणिकाओं में उठाया है| लेखक कहना चाहता है कि अपने सामर्थ्य का लाभ उठाकर गलत परम्पराएं फलती फूलती रहती हैं और उनके खिलाफ आवाज़ उठाने का सा हस कोई नहीं कर पता| लेखक ने इस विषय के माध्यम से नारी जाति के समर्थन में अपनी आवाज उठाकर समाज में व्याप्त कुरीतियों का अंत करने की न केवल गुहार लगाई है बल्कि ऐसी न जाने कितनी कुप्रथाओं पर गहरा आघात भी किया है | एक काया देवदासी नामक क्षणिका देखें

"खंडहरनुमा युगीन गुफा में मुझे एक कहानी टुकड़े - टुकड़े में मिली। एक जमाने में यह मंदिर था। एक महंत ने एक अनाथ लड़की को देवदासी बना कर उस मंदिर में कैद कर रखा था। मंदिर हुआ तो लड़की ने रातों को सदा भगवान के लिए चिराग जलाया। पर आज किसी को पता नहीं देवदासी कही जाने वाली एक अनाथ लड़की से भगवान के लिए चिराग की एक लौ थी" |

दो पीढ़ियों का परस्पर टकराव सनातन ,शाश्वत और सदियों पुराना है | यह टकराव न केवल पारिवारिक और सामाजिक

अशांति को जन्म देता है,बल्कि अंतहीन दर्द भी दे जाता है| दो पीढ़ियों के इस वैचारिक मतभेद के कारण समाज को दूरगामी दुष्परिणाम देखने को मिलते हैं,लेखक ने द्वंद्व के इस दर्द को त्रिकेन्द्र में बड़ी ही भावात्मक शैली में प्रस्तुत किया है, देखें-

"विश्वास तो बन ही आता है कि अतीत और भविष्य के बीच खड़े होने से दो मजबूत कंधों का सहारा मिल जाता है। पर एक इधर से अपना अधिकार मान कर खींचने लगे और एक उधर से अपने अधिकार की रट लगाने लगे तो लहू लुहान होने की उससे बड़ी दुर्नियति दूसरी होती नहीं है। लहू लुहान का दारुण सत्य एक वर्तमान ही है"।

हरिवंश राय बच्चन ने एक बार अपनी आत्मकथा से सम्बंधित एक सवाल के जवाब में यह कहा था कि आत्मकथा लिखना सरल कार्य नहीं क्योंकि व्यक्ति इसे लिखने में निष्पक्ष नहीं रह पाता| यह बात अक्षरशः सत्य है कि आत्मश्लाघा करना सरल है, लेकिन इसके विपरीत अपनी दुर्बलताओं से झांकते सत्य को स्वीकारना जहाँ असंभव है वहीँ उसे अनावृत करने का साहस करना ही भी उतना ही दुष्कर है| ठीक इसी तरह के भाव को रामदेव धुरंधर अपनी आत्मकथा नामक इस गद्य क्षणिका में इस तरह व्यक्त करते हैं -

"अस्सी वर्षीय लेखक के जीवन के सांध्य में उसकी पत्नी को पता चला उसकी एक विवाहित प्रेमिका थी जिसके यहाँ इस उम्र में भी वह छिप कर जाता था। लेखक ने चार सौ पन्नों में अपनी आत्म कथा लिखी थी, लेकिन अपने इस प्रेम का उसने कहीं जिक्र नहीं किया। पर उसने तो बराबर इस बात पर बल दिया था उसने कुछ न छिपा कर अपने जीवन के संपूर्ण सत्य उजागर किये हैं। उससे लड़ते रहने वाली पत्नी ने उसके इस वास्तविक सत्य को

जानने पर मौन रख लिया। बात गूढ़ थी, लेखक ने अपनी आत्म कथा में अपनी पत्नी को देवी का सम्मान दिया था"।

कथा में जहां एक ओर पति अपने विवाहेतर संबंधों पर पर्दा डालने के लिए अपने जीवन के महत्वपूर्ण तथ्य को छिपाने क लिए असत्य का अवलम्ब लेता है ,वहीँ उसकी पत्नी भी पति के इस कुकृत्य पर मूक हो जाती है क्योंकि आत्मकथा में पति ने उसे देवी के महान पद से अलंकृत करके मानो उसकी खामोशी खरीद ली हो | कहा भी जाता है कि स्तोत्रं कस्य न तुष्टये, अपनी प्रशंसा चाहे वह झूठी ही क्यों न हो ,उससे खुश होना मानव कमजोरी है,यह इस क्षणिका पर सार्थक उतरती है ।लेखक इसके माध्यम से आत्मकथा लेखन पर बड़ा प्रश्नचिह्न लगाता है जो एक सीमा तक जायज आर उचित भी है| छोटे से कलेवर में कथा समाज के मनोविज्ञान और उसके दोगलेपन की परत उधेड़ती है |

विवशता नामक एक बहुत ही ख़ूबसूरत और अत्यंत लघु गद्य क्षणिका को पाठकों के समक्ष रखने का लोभ संवरण नहीं कर पा रही | इस क्षणिका में एक चोर अपनी पत्नी को चोरी का मंगलसूत्र लाकर देता है, इस छोटी सी घटना के माध्यम से चोर की पत्नी की मनोदशा और अंतर्द्वंद को लेखक ने बहुत ही मारक ढंग से प्रस्तुत किया है,क्योंकि पत्नी न तो उस मंगलसूत्र को पहन सकती है और न ही बेच सकती है,इस तरह चोरी के धन को खर्च न कर पाने की विवशता को दिखाते हुए लेखक ने पराए धन की निस्सारता को कितने सार्थक शब्दों में व्यक्त किया है, देखें-

"मशहूर चोर अकूत धन के घर से चोरी का मंगलसूत्र अपनी औरत को दे रहा था। पर वह ले कर क्या करती? पराये मंगलसूत्र को वह अपने गले में पहन नहीं सकती। दूसरी विडंबना

यह कि वह उस मंगलसूत्र को बेचने जाती तो विधवा प्रमाणित होती”।

धृतराष्ट्र का पुत्र मोह जगविदित है | धृतराष्ट्र नामक क्षणिका में पुत्र मोह के माध्यम से लेखक ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि हम वही देखना और स्वीकारना चाहते हैं जो हमारा मन चाहता है , इससे इतर न तो हम देखने का प्रयत्न करते हैं और न ही देखने की इच्छा ही रखते हैं | जैसी दृष्टि,वैसी सृष्टि इस कहावत को लेकर बुनी इस कहानी में मानव मन की इसी प्रवृत्ति को छोटी सी पौराणिक कथा और उसके पात्रों के माध्यम से बड़ी ही कुशलता से पाठकों के सामने रखने का प्रयत्न किया है:

“संजय का काम था धृतराष्ट्र को महाभारत का युद्ध दिखाए। धृतराष्ट्र ने बड़ी ही दीनता से उससे कहा मुझे एक बार तो सुना दो संजय मेरे बेटों की जीत हो रही है। यह तो संजय के लिए परीक्षा हो गई। झूठ उससे कहा नहीं जाता, इसलिए उसने धृतराष्ट्र को अपनी आँखें दे कर कहा आप ही देख लें। पर आँखें मिलते ही धृतराष्ट्र तो खुशी से झूम उठा। उसके बेटे लड़ाई में जयी हो रहे थे। अपनी आँखें दूषित होने से संचय काँप उठा। उसने तत्काल धृतराष्ट्र से अपनी आँखें वापस ले लीं। धृतराष्ट्र अंधा ही ठीक था”।

शब्द गरिमा नामक गद्य क्षणिका धुरंधर जी की एक बहुत ही उल्लेखनीय क्षणिका कही जा सकती है, जिसमें उन्होंने निस्वार्थ कविकर्म को महत्त्व देते हुए इस बात पर बल दिया है कि यदि कोई रचना किसी के प्रश्रय या दवाब में आकर लिखी जाती है तो वह सार्थक और सोद्देश्य नहीं रह पाती | इसके साथ ही कोई भी कवि या साहित्यकार कितना ही महँ क्यों न हो, आश्रयदाता के

संरक्षण में उसकी रचनाशीलता और लेखनी भी अपनी स्वाभाविक विशेषताएं खोकर निष्प्रभावी हो जाती है | देखें :

“कवि अपनी आत्मा बेचता, खरीदार राजनीति होती| कवि को बड़ा करना था, अब वह दरबारी कवि होगा| कवि आगे-आगे और उसके पीछे पीछे शब्द गए | सौदा हो जाने के बाद कवि अकेला था| उसके शब्दों ने सामूहिक आत्महत्या कर ली थी” **|**

हमारे समाज में अनेक कुरीतियाँ लम्बे समय से व्याप्त हैं और इन कुरीतियों और विद्रूपताओं का शिकार अक्सर स्त्री जाति होती है | समानता के अवसर देना तो दूर ,कई बार ऐसी स्थितियां उत्पन्न होती हैं,जहां उनसे अमानवीय व्यवहार किया जाता है,जिसका दुष्परिणाम उन्हें जीवन पर्यंत भोगना पड़ता है | **जात** क्षणिका में रामदेव धुरंधर पुरुषों द्वारा महिलाओं पर किये जा रहे शोषण और अत्याचार के विरोध में अपना गंभीर स्वर मुखर करते हैं: “रैना की शादी की बात चली तो जात का प्रश्न उठा | इससे भी आगे गृह लक्ष्मी ,सहनशीलता ,पति सेवा वगैरह तमाम शर्तें उससे जुडती चली गईं | रैना आक्रोश में थी| उसकी बड़ी बहन सीमा पर जब सामूहिक बलात्कार हुआ था तो क्या किसी ने उस वक़्त उसकी जात पूछी थी”?

इसी प्रकार मध्यांतर नामक क्षणिका सन्देश देती है कि मनुष्य के जीवन की प्राथमिकता उसके पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय कर्तव्यों का निर्वहन करना है, उसके समक्ष भगवद पूजा द्वितीय स्थान पर आती है | यदि भक्त अपने कर्तव्यों के समक्ष भगवदभक्ति को भूलकर अपने परिवार और समाज को महत्त्व देता है तो भगवान को प्रेमवश खुद भक्त के घर आना पड़ता है : “भगवान को भक्त के घर आने की अपनी आकुलता पर गौर करना पडा| क्या भक्त को खो देने का दुःख इतना विषम था कि हडबडाया

सा होकर उससे मिलने आ गया ? भक्त की अपनी विवशता थी| उसे अपना घर-परिवार देखना था | अब उसे भगवान् में डूबे रहना कुछ ख़ास आवश्यक लगता नहीं था" |

समाज में मान्यता है कि मनुष्य अपना स्वभाव नहीं छोड़ता, चाहे वह अच्छा हो या बुरा | साधू और बिच्छू की कहानी हमें संसार के जीवों की इसी प्रवृत्ति की और संकेत करती है | प्रकृति मंथन - नामक क्षणिका में भी चूहे और बिल्ली की कथा के माध्यम से इसी बात की और इंगित किया गया है जिसमें - "भूकंप आने पर एक चूहा और बिली एक खँडहर में फंस गए| बिल्ली की सांसें उखाड़ने पर आईं जबकि चूहा तो मजे मजे जी सकता था | बिल्ली तो मर ही जाती की चूहे ने मिटटी खोदकर बहार निकालन का रास्ता बना दिया| खँडहर से मुक्त होने पर चूहे के प्रति कृतज्ञो होते हुए भी बिल्ली ने उसका शिकार कर लिया | बिल्ली चूहों का शिकार करने की अपनी प्रवृत्ति से मजबूर थी | उधर ऐसी बात नहीं की चूहा जनता न हो की बिल्ली उसे खा जायेगी | पर मिटटी खोदने की अपनी प्रवृत्ति से चूहा भी मजबूर था"|

"इस तरह रामदेव धुरंधर की गद्य क्षणिकाएं जीवन का वह यथार्थ आईना कही जा सकती हैं, जिसमें एक ओर तो मानव समाज का वह ख़ूबसूरत पक्ष उजागर होता है, जिसमें सद्पात्र हैं, सदचरित्र हैं, सदप्रवृत्तियाँ हैं, सदव्यवहार है और सद्मार्ग की ओर ले जाने वाले प्रेरक तत्व हैं तो दूसरी ओर ये समाज के उस कृष्ण पक्ष को भी सामने लाती है, जहाँ असामाजिक चरित्र अपनी दुष्प्रवृत्तियों के माध्यम से समाज को गर्त में गिराने का प्रयत्न करते हैं, जिनसे सभी को सावधान रहने की जरूरत है | उपदेशपरक शैली और व्याख्यान का सहारा न लेते हुए भी धुरंधर अप्रत्यक्ष रूप से इन क्षणिकाओं के बहाने , मनुष्य समाज को उस सदराह पर चलने

का संकेत करते हैं जो न सिर्फ उसके लिए कल्याणकारी है, बल्कि देश और समाज के लिए भी उन्नति का मार्ग खोलता है | इन गद्य क्षणिकाओं से गुजरते हुए ऐसा महसूस होता है मानो ये क्षणिकाएं मनुष्य जीवन का वह विराट और भव्य कैनवास हैं जिसमें एक कुशल चितेरे की भांति रामदेव धुरंधर ने अपनी अनुपम तूलिका से जीवन के विचिध रंग उंडेलकर एक ख़ूबसूरत चित्र का निर्माण कर दिया हो | प्रस्तुत आलेख में इन गद्य क्षणिकाओं की एक बानगी मात्र प्रस्तुत की गई है, ताकि साहित्यप्रेमी रामदेव धुरंधर के इस प्रयास से परिचित हो सकें और अवसर मिलने पर इन्हें स्वानुभूत भी कर सकें"|

निश्चित ही गद्य क्षणिका के माध्यम से रामदेव धुरंधर ने साहित्यकारों के लिए एक नई दिशा का उन्मेष किया है,एक नया अवसर उद्घाटित किया है | किसी नव्य साहित्यिक रूप को विधा के रूप में मान्यता और स्थापना दिलाना सहज नहीं होता , आलोचकों और पाठकों की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए उसके सृष्टिकर्ता को अनेकों चुनौतियों और संघर्ष का सामना करना पड़ता है | इसके लिए रचनाकार और उसकी कृति में इतनी सामर्थ्य होनी चाहिए कि वह एक विशाल पाठकवर्ग तैयार कर सके, साथ ही उसका एक ऐसा विशिष्ट अनुगामी वर्ग भी हो, जो साहित्यिक रूप से सक्रिय होकर इस नवीन विधा में खुद लिखने की रूचि ले | इन सबके साथ ही शायद साहित्यिक लेखन के किसी रूप को विधा के रूप में पहचान दिलाने में बहुत बड़ी भूमिका उन साहित्यालोचकों की भी होती है जो इस विधा में रूचि लें,, साहित्यिक जगत में उसकी यथोचित चर्चा करें, उसके गुण -दोषों का सूक्ष्म और निरपेक्ष ढंग से परख-विवेचन करें, तत्पश्चात उसके मानदंड विकसित करके उसे विधा के रूप में मान्यता दिलाएं, और

उसका साहित्यिक सहयोग देकर अपने पुनीत साहित्यिक कर्तव्य को संपन्न करें | रामदेव रामदेव धुरंधर ने साहित्यिक जगत के समक्ष अपनी अभिनव दृष्टि द्वारा गद्य क्षणिका के रूप में साहित्य प्रेमियों के समक्ष एक नया गवाक्ष खोला है, नवीन चिंतन दृष्टि प्रदान की है और नवीन मार्ग का उन्मेष किया है | अब अपेक्षा यह है कि अन्य साहित्यकार भी इस दिशा में आगे आएं और इस विधा में लिखकर रामदेव धुरंधर जी के इस महत प्रयास को अपनी सकारात्मक ऊर्जा और सामूहिक प्रयत्नों से इसमें गतिशीलता प्रस्फुरित करें | साहित्यकारों का कर्तव्य है कि वे अपने साहित्यिक अनुभवों और नूतन प्रयोगों द्वारा इसे और भी अधिक आकर्षक रूप में साहित्य जगत के समक्ष प्रस्तुत करें और लोकप्रिय साहित्यिक विधा के रूप में इसकी स्थिति सुनिश्चित करें ।

भाषा, साहित्य और प्रौद्योगिकी

पद्मा पाटील
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)

सारांश

प्रौद्योगिकी के सभी क्षेत्र जैसे भाषा प्रौद्योगिकी, सूचना प्रौद्योगिकी, अनुवाद प्रौद्योगिकी आदि पूरा विश्व समेटे हुए हैं । इनसे दूरदराज़ दुनिया बहुत सन्निकट हुई है। व्यापार सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा बना । विश्व में फैले व्यापारी और विविध देशों के यात्री भारत में आए। चीन द्वारा मंगोल शासनकाल की खोजें - बारूद, रेशम की मशीनें, बर्तन, हर तरह की जीवन-यापन के लिए प्रयुक्त होने वाली चीजें, बाजार और व्यापार के माध्यम से यूरोपादि देशों में पहुँची। व्यापार में वृद्धि हुई और इन व्यापारिक सम्बन्धों ने वैश्वीकरण को जन्म दिया । इसका व्यापक स्तर पर अर्थ है बाजारीकरण । भारत के बाजार में अपनी बनी वस्तुएँ भी हैं और वे विश्व बाजार में भेजी जा रही हैं । साथ में अनेक वस्तुएँ खरीदी भी जा रही हैं। बहुत कुछ बदल गया है । संस्कृति, उद्योग - धंधे, रहन-सहनादि सब इससे प्रभावित हुए हैं अर्थात् कुछ क्षेत्र जैसे विज्ञापनादि को लेकर जो बदलाव हुए हैं, वे बहुत ही चिन्ताजनक हैं, परन्तु प्रौद्योगिकी के कारण सभी क्षेत्रों में गति से विकास हुआ।

भाषा प्रौद्योगिकी भी ऐसा ही एक क्षेत्र है जो अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बना चुका है । इसने बाजार की अनेक संभावनाएँ दुनिया के सामने रखी हैं।

मूल शब्द: भाषा ,विज्ञान, प्रौद्योगिकी, संगणक और उसका कार्यान्वयन , कम्प्यूटर की मशीनी भाषा, निम्नस्तरीय भाषाएँ, मध्यस्तरीय भाषाएँ- असेम्बली भाषा या कोड, उच्चस्तरीय भाषाएँ - बैसिक, कोबोल, सी-प्लस आदि । फोंट आधारित पैकेज्स, शब्द संसाधन, डाटा संसाधन, भाषा प्रौद्योगिकी अंत:संबंध, हिंदी, भारतीय भाषाएँ और प्रौद्योगिकी, साहित्य और प्रौद्योगिकी

भाषा की आवश्यकता

मानव सभ्यता के विकास में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का बड़ा योगदान है । यह विकास प्रक्रिया काफी परिवर्तनशील रही है । यह परिवर्तन और विकास का माध्यम प्राय: भाषा ही रहती है । मानव जीवन के विविध क्रियाकलाप भाषा से जुड़े रहते हैं । भाषा के विवेकपूर्ण ढंग के प्रयोजन के कारण जर्जर रूढ़ियाँ, कुसंस्कार और आपसी मतभेद नष्ट होने में वह सहायक होती है । साथ ही वह राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय सद्भाव जागृत करने का सशक्त माध्यम होती है । भाषा का सामाजिक स्वरूप आधुनिक युग में अधिक समृद्ध और व्यापक बना है ।इसे समृद्ध तथा व्यापक बनाने में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का बड़ा योगदान रहा है।

भाषा, विज्ञान और प्रौद्योगिकी

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के साथ भाषा का गहरा संबंध है। जिस देश और जाति का विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान उन्नत होता है, उतनी ही भाषा भी उन्नत रहती है । भारत में पारंपरिक विज्ञान

और प्रौद्योगिकी का क्षेत्र बड़ा विकसित है । उसी तरह भाषा के अध्ययन की एक समृद्ध परंपरा रही है। अभिजात्य भाषाओं में जागतिक स्तर पर संस्कृत भाषा सबसे अधिक व्यवस्थित, समुन्नत और वैज्ञानिक भाषा रही है। आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत में अभी बहुत संभावनाएँ शेष हैं । 1995 ई. के बाद भारतीय भाषाएँ सभी स्तरों पर ज्ञान-विज्ञान के प्रचार - प्रसार में सक्रिय सहभागिता दर्ज कर रही हैं। प्रशासनिक कार्यभाषा, जनसंपर्क की भाषा और शिक्षण माध्यम की भाषा में असमानता व्याप्त है, परन्तु भारत सरकार के सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय के अंतर्गत सी-डैक, आई.आई.टी, कानपुर आदि अनेक संस्थाओं द्वारा इन्हें दूर करने के प्रयास भी हो रहे हैं। अब हिंदी इंटरनेट की द्वितीय भाषा बन चुकी है । अब सभी भारतीय भाषाओं में भी अनेक सर्च इंजनों द्वारा कार्य किया जा रहा है जैसे गुजराती, मराठी, तेलुगु, तमिल, मलयालम, कन्नड आदि ।

प्रौद्योगिकी

'चीजों अथवा कार्यों के बनाने अथवा करने का तरीका' प्रौद्योगिकी है।(Pathak R.C.,1990) यह अर्थ दो सन्दर्भों में प्रयुक्त किया जाता है । संकुचित अर्थ केवल औद्योगिकी प्रक्रियाओं से जुड़ा है । विस्तृत अर्थ सभी पदार्थों के साथ होने वाली सभी प्रक्रियाओं से जुड़ा है । प्रौद्योगिकी का ज्ञान व्यावहारिक ज्ञान होता है। यही 'प्रायोगिक विज्ञान' अथवा 'हस्तचालित कौशल' कहा जा सकता है । प्रौद्योगिकी का अर्थ है, 'विशिष्ट सैद्धान्तिक ज्ञान का व्यावहारिक ज्ञान में रूपान्तरण'। इस ज्ञान शाखा का संबंध यांत्रिकीय कला अथवा प्रयोजनमूलक विज्ञान अथवा दोनों के समन्वित रूप में होता है । प्रौद्योगिकी का शाब्दिक अर्थ कला

अथवा हस्तकला है । अपने समस्त रूप में प्रौद्योगिकी वह साधन है जिसके माध्यम से मनुष्य अपने परिवेश पर अपना अधिकार रख सकता है । प्रौद्योगिकी मानव को अपने परिवेश के प्रति सजगता बरतने का पाठ सिखाती है । किसी आवर्ती कार्यकलाप पर लागू औद्योगिक प्रक्रियाओं के योजनाबद्ध ज्ञान अथवा कार्य को प्रौद्योगिकी कहते हैं । प्रौद्योगिकी, विज्ञान और अभियांत्रिकी सम्बद्ध होती है। विज्ञान के माध्यम से मनुष्य को दुनिया, अन्तरिक्ष, पदार्थ, ऊर्जा तथा तद्जन्य क्रियाओं का वास्तविक ज्ञान मिलने की सहायता होती है । अभियांत्रिकी से तात्पर्य है, वस्तुनिष्ठ ज्ञान का उपयोग करके आयोजन, अभिकल्पना और अपेक्षित वस्तुओं के अभिकल्पन माध्यमों का निर्माण करना। प्रौद्योगिकी से तात्पर्य है,योजनाओं को परिचालित करने के लिए औजारों अथवा अधुनातन तकनीकों का व्यवहार करना । मनुष्य जीवन सुखमय, परिष्कृत बनाने में जितनी चीजों का उपयोग किया जाता है, वे सभी प्रौद्योगिकी के अंतर्गत आ सकती हैं जैसे संगणक, परिकलित्र, विविध यन्त्र, आरामदायी चीजें, टीवी, फ्रिज आदि ।

प्रौद्योगिकी की उपयोगिता

भौतिक जगत् और जीवन में प्रौद्योगिकी मानव की सहायता करती है। कारीगरी, शिल्पकारी आदि के रूप में प्राचीन काल में प्रौद्योगिकी मनुष्य के जीवन का अभिन्न भाग रह चुकी है। आधुनिक युग में इसके अर्थ तथा संदर्भ बदलते गए । आज विशिष्ट ज्ञान, विविध प्रकार के परीक्षणों और अन्वेषणों के माध्यम से पहले प्रयोगशाला में सम्पन्न होता है । फिर उसका विपणन हो जाता है और तब वह प्रौद्योगिकी का रूप धारण करता है । यह 18 वीं सदी की देन है । शोध और अध्ययन के माध्यम से प्राप्त विशेष ज्ञान,

अभियांत्रिकी के माध्यम से प्रौद्योगिकी का स्वरूप धारण करते हैं । 18 वीं सदी के उत्तरार्ध में प्रौद्योगिकी प्रायोगिक विज्ञान का रूप ले रही है । 19-20 वीं सदी में काफी परिवर्तन हुए । आज प्रौद्योगिकी मानव जीवन की प्रत्येक गतिविधियों पर अपना प्रभाव डाल चुकी है। मानव जीवन प्रौद्योगिकी के प्रभाव से अनछुआ नहीं है । आज प्रौद्योगिकी विविध रूपों में उभर रही है । मनुष्य जीवन की ऐसी कोई गतिविधि नहीं है कि जहाँ प्रौद्योगिकी का उपयोग नहीं होता हो जैसे भाषा प्रौद्योगिकी, ग्राम प्रौद्योगिकी, सूचना प्रौद्योगिकी, शिक्षण प्रौद्योगिकी आदि ।

भाषा का प्रौद्योगिकी संदर्भित अध्ययन

भारत की अधिकतम भाषाएँ एक ही स्रोत से प्रवाहित हुई है। हम जानते हैं कि उनका उद्भव ब्राह्मी वर्णमाला से हुआ है । हिंदी, बंगला, असमिया, उड़िया, मराठी, गुजराती और गुरुमुखी लिपियाँ एक दूसरे से बहुत मिलती-जुलती हैं। इन्हें एक ही लिपि की भिन्न -भिन्न प्रणालियाँ कहा जा सकता है । दक्षिण भारत की लिपियाँ तमिल, कन्नड, तेलुगु और मलयालम परस्पर समान और एक जैसे सिद्धान्तों पर आधारित हैं परन्तु ये देवनागरी से अलग हैं। उर्दू अपवाद स्वरूप है । इसमें फारसी,अरबी लिपि अपनाई गई है। हिंदी, मराठी, नेपाली और संस्कृत लिखने के लिए देवनागरी लिपि को अपनाया गया है । तात्पर्य देवनागरी लिपि का भारत की सभ्यता और इतिहास से बहुत पुराना संबंध है। आधुनिक प्रौद्योगिकी के विकास में संगणक की खोज अनन्य साधारण घटना है । आज संगणक प्रौद्योगिकी का उपयोग जीवन के सभी क्षेत्रों में किया जा सकता है। इसके उपयोग के महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं- भाषिक अध्ययन और विश्लेषण । पहले संगणक साधित भाषा संसाधन का

कार्य अंग्रेजी में ही होता था, परन्तु आज अरबी, चीनी, हिब्रू, जापानी, कोरियन जैसी अनेक जटिल लिपियों के लिए भी किया जा रहा है। संगणक केवल एक तकनीकी उपकरण है । इसकी दो संकेतों की अपनी एक स्वतंत्र गणितीय भाषा है। इसी में कम्प्यूटर हमारी भाषाओं को ग्रहण करके अपने सभी कार्य करता है। अब प्रमाणित हुआ है कि कम्प्यूटर को किसी भी भाषा और लिपि को अपनाने में कोई ठोस और तकनीकी बाधा नहीं आती है ।

भाषागत अध्ययन और विश्लेषण के लिए संगणक प्रौद्योगिकी का उपयोग बहुत सरलता से किया जा सकता है । आज 'अभिकलनात्मक भाषिकी' भाषा विज्ञान की एक शाखा बन गई है (Ralph Grishman,1986) । कम्प्यूटरीकृत सांख्यिकीय अध्ययन, विश्लेषण, शब्द, विश्लेषण, उपसर्ग, निपात विश्लेषण जैसे व्याकरणिक अध्ययन, लेखन शैली का विश्लेषण और विविध भाषाओं के शब्दों के आपसी संबंध व्याकरणिक संरचनाओं की जानकारी लेने जैसे साहित्यिक और भाषा वैज्ञानिक अध्ययन के लिए संगणक प्रौद्योगिकी का व्यापक रूप में उपयोग किया जा रहा है । भाषा का विज्ञान से अटूट रिश्ता है । संगणक के साथ संवाद स्थापित करने के लिए भाषाओं के प्रयोग की आवश्यकता रहती है । कृत्रिम बुद्धिवाले पाँचवीं पीढ़ी के संगणक के साथ प्राकृतिक भाषा के साथ संवाद स्थापित करने के प्रयोग भी प्रारंभ हो चुके हैं । भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थाओं में भारतीय भाषाओं का अध्ययन किया जा सकता है। संगणक साधित हिंदी तथा भारतीय भाषा शिक्षण में प्रौद्योगिकी के साथ गंभीरता तथा गहराई से सही मायने में जुड़ना है, तो व्यापक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और संगणक शास्त्र उसकी तकनीक, विविध अनुप्रयोग, विविध हिंदी सॉफ्टवेयर्स

आदि का ज्ञान हासिल करना अनिवार्य रहेगा। पहले हम संगणक शास्त्र से परिचय करते हैं ।

संगणक

प्राचीन काल में चीन, भारत और अन्य देशों में प्रचलित गिनतारे को कम्प्यूटर का पूर्वज कहा जाता है। इसके आधार पर गणितीय गिनतियाँ की जाती हैं। 17 वीं सदी के आरंभ में स्कॉटलैंड के गणितज्ञ जॉन नेपियर ने लघुगणक टेबल का आविष्कार किया जिससे गणना की जाती है । 1620 ई. में जर्मन के विलियम अधिट्रेड ने स्लाइड रूल की खोज की । 1641 ई. में ब्लेज़ पास्कल ने पास्कलिन मशीन तैयार की। यह मशीन यांत्रिक कम्प्यूटर था। ब्रिटिश गणितज्ञ तथा वैज्ञानिक चार्ल्स बावेज ने संपूर्ण कम्प्यूटर की कल्पना की। 1921 ई. में इन्होंने एक मशीन तैयार की जिसका नाम रखा डिफ्रेशियल मशीन। फ्रांस के बुनाई विशेषज्ञ जोसफ जैकर्ड ने छिद्रित कार्डों का आविष्कार किया था इससे कपड़ों में बुनते समय अलग - अलग पैटर्न बुने जा सकते थे । इसी मशीन से हटमैन हलरिथ ने जनगणना की प्रश्नावलियों को सुलझाया था। 1930 ई. में ब्रिटिश अध्यापक डॉलर ट्यूरिंग ने पहली बार इलेक्ट्रोनिक परियन्त्र की रूपरेखा बनाई । 20 वीं सदी के तीसरे और चौथे दशक में विविध देशों द्वारा कम्प्यूटर बनाने के प्रयोग किए गए । इन्हीं दशकों में प्रौद्योगिकी में बहुत प्रगति हुई। जर्मन अभियंता जॉन कोनराइड ज्यूस ने 1934 में जेड प्रथा नाम से यांत्रिक कम्प्यूटर बनाया जो द्विआधारी पद्धति पर निर्भर था । पहला इलेक्ट्रोनिक कम्प्यूटर आकार में बड़ा था । कम्प्यूटर के आकार और गति में परिवर्तन होता गया और फिर आधुनिक कम्प्यूटर बना । पहली पीढ़ी का कम्प्यूटर वैक्यूम ट्यूब टेक्नोलॉजी

पर आधारित था । दूसरी पीढ़ी का ट्रांज़िस्टर और सर्किट तकनीक पर, तीसरी पीढ़ी का इंटिग्रेटेड तकनीक, चौथी पीढ़ी का वैरीलॉजी स्केल इंटीग्रेटेड तकनीक पर और पाँचवीं पीढ़ी के कम्प्यूटर कृत्रिमबुद्धि वाले हो गए (Smith,1978) ।

संगणक संरचना

कम्प्यूटर के कुंजीपटल, माउस, मॉनीटर और प्रिंटर्स को हार्डवेयर कहा जाता है । कम्प्यूटर को चलाने और नियंत्रित करने के लिए आवश्यक साधनों को सॉफ्टवेयर कहा जाता है। कम्प्यूटर को दिए जाने वाले निर्देश सही क्रम में होने चाहिए । ऐसे निर्देशों के समुच्चय को ही प्रोग्राम या क्रमादेश कहा जाता है। निश्चित काम को संपन करने के लिए तैयार किए गए प्रोग्राम को ही सॉफ्टवेयर कहा जाता है।

संगणक - कार्य पद्धति

परिकलन की दो पद्धतियाँ हैं - गिनना और मापना। अंकों के आधार पर गणना करनेवाले संगणकों को अंकीय अथवा डिजिटल संगणक कहा जाता है । इनमें शत-प्रतिशत शुद्धता रहती है। अनुमान से माप के आधार पर परिकलना अथवा आकलन करने वाले कम्प्यूटर्स को एनालॉग कम्प्यूटर कहा जाता है । दोनों प्रकार के परिकलन की व्यवस्था करनेवाले कम्प्यूटर्स को हाइब्रिड कम्प्यूटर कहा जाता है। कम्प्यूटर की गणना का आधार द्विआधारी पद्धति है सभी डिजिटल कम्प्यूटर इसी प्रणाली पर कार्य करते हैं। कम्प्यूटर की भाषा में 0 और 1 के संयोजन को बिट कहते हैं । सामान्यत: 7 बिट के कोड में अंग्रेजी के सभी अक्षर, संख्या और प्रतीक संकेत निहित होते हैं । इस कोड को ASCII (American Standard Code for Information Interchange) नाम से

अभिहित किया जाता है । हिंदी और भारतीय भाषाओं की वर्णमाला के लिए 8 बिट कोड की आवश्यकता होती है। भारत सरकार के इलेक्ट्रोनिक विभाग ने ब्राह्मी लिपि पर आधारित भारत की सभी लिपियों का ISCIL (Indian Standard Code for Indian Language) नाम का समान कोड बनाया है । परिकलन का कार्य कैलक्यूलेटर द्वारा भी किया जा सकता है, परंतु डिजिटल कम्प्यूटर्स के पास विशेष स्मृति क्षमता होती है । इसलिए वह जटिल से जटिल समस्या का समाधान कर सकते हैं । इसलिए डिजिटल कम्प्यूटर को आज मानक शब्दावली में अभिकलित्र कहा जाता है । अभिकलन प्रक्रिया अधिक व्यापक होती है । इसे समझने के लिए संगणक की आन्तरिक संरचना समझना आवश्यक है । संगणक के मुख्यत: चार भाग होते हैं -

1. निवेश (Input) -कुंजीपटल के माध्यम से डाटा भरा जाता है । यह डाटा शब्दों या अंको के रूप में हो सकता है ।
2. संसाधन (Processing) - संसाधन एक प्रक्रिया होती है । इससे समस्या का हल निकाला जाता है । कम्प्यूटर का यह भाग परिकलित्र जैसा होता है, परन्तु अभिकलित्र के माध्यम से तार्किक गणनाएँ सम्भव होती हैं । इसी कारण संसाधन का यह यूनिट कम्प्यूटर का हृदय माना जाता है। संसाधक मॉनीटर अथवा स्क्रीन के नीचे के बक्से में एक छोटी-सी चिप में होता है। बक्से को कैबिनेट भी कहा जा सकता है। कैबिनेट में एक मदरबोर्ड होता है जिसमें संसाधक होता है ।
3. स्मृति कोष (Memory)- कम्प्यूटर के स्मृति कोष की इकाई बाइट होती है । एक बाइट में 8 बिट होते हैं । इस स्मृति कोष के दो भाग होते हैं। 1. पठन मात्र स्मृति

(ROM- Read Only Memory) और 2. यादृच्छिक अभिगम स्मृति (RAM- Random Access Memory) रॉम के अंतर्गत सॉफ्टवेयर निर्माताओं द्वारा स्थायी रूप से निर्देश होते हैं। उन्हें मिटाया नहीं जा सकता, केवल पढ़ा जा सकता है। रैम में कम्प्यूटर प्रयोक्ता अथवा ऑपरेटर अपना डाटा संचित करता है। रैम की क्षमता पर स्मृति संचय की क्षमता निर्भर होती है। फ्लॉपी डिस्क, सीडी तथा पेन ड्राइव ये भी स्मृति संचय का कार्य करते हैं।

4. निर्गम (Output)- कम्प्यूटर पर संसाधित कार्यों का परिणाम स्क्रीन अथवा कागज पर प्राप्त किया जा सकता है। यही निर्गम है। कम्प्यूटर की शब्दावली में मुद्रित कागज को हार्ड कॉपी कहते हैं। विविध प्रिंटर्स के माध्यम से यह प्राप्त की जा सकती है।

कम्प्यूटर के साथ संवाद स्थापित करने के लिए अत्यंत स्पष्ट तथा सुबोध भाषा होनी चाहिए। उसका स्वरूप केवल अभिधापरक होना चाहिए। मानव प्रोग्रामर कम्प्यूटर के साथ संवाद स्थापित करने के लिए जिस भाषा का प्रयोग करता है, उसे कम्प्यूटर की भाषा कहा जाता है ।

हिंदी, भारतीय भाषाएँ और प्रौद्योगिकी

विश्व में हो रहे अनेक प्रकार के बदलावों के कारण सामाजिक, सांस्कृतिक आदान-प्रदान काफी प्रभावित हो रहा है। भारतीय संस्कृति भी इससे अछूती नहीं रही है, अत: हिंदी भाषा में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सामग्री, विविध प्रकार के अन्वेषण अथवा विषयों को अभिव्यक्त करना अनिवार्य हो गया है। जनभाषा

द्वारा इन विषयों की जानकारी उपलब्ध करवा देना आवश्यक हो गया है। 1986 में भारत सरकार ने आदेश जारी किए थे कि केंद्र सरकार के सभी कार्यालयों और उपक्रमों में सभी प्रकार के यांत्रिक और इलेक्ट्रानिक उपकरण द्विभाषिक रूप में खरीदे जाएँ । मानसिक तथा तकनीकी अज्ञान के कारण इसमें तब गति नहीं आई थी, परंतु अब काफी परिवर्तन हुए हैं। आधुनिक प्रौद्योगिकी के विकास में कम्प्यूटर का विकास युगांतरकारी घटना मानी जाती है। अमेरिकन विद्वान रिक ब्रिग्ज के अनुसार कम्प्यूटर प्रोग्राम की सबसे वैज्ञानिक भाषा संस्कृत है, अत: देवनागरी में संगणकीय काम कठिन नहीं रहा | 1965 के बाद ही हिंदी सॉफ्टवेयर बनाए गए | फिर यह काम आसान हो गया| भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने सीडैक, पुणे (प्रगत संगणन विकास केंद्र, पुणे - Center for Development of Advance Computing, Pune) के माध्यम से कम्प्यूटर पर हिंदी प्रयोग को सरल और कुशल बनाया | विविध सॉफ्टवेयरों के निर्माण से हिंदी भाषा को तकनीकी से जोडने का प्रयास किया| सी - डैक ने विविध भारतीय भाषाओं के माध्यम से हिंदी सीखने के लिए लीला सॉफ्टवेयर विकसित किया है| आज हिंदी भौगोलिक सीमाओं को पार कर चुकी है | भाषा प्रौद्योगिकी के माध्यम से यह संभव हुआ है| भारतीय भाषा कम्प्यूटिंग तथा हिंदी भाषा कम्प्यूटिंग का लक्ष्य है| भाषा प्रौद्योगिकी जनमानस तक अपनी-अपनी प्रादेशिक भाषा में पहुँचे | सभी भारतीय भाषाओं में नवीन टेक्नोलॉजी से काम करना आसान हो जाए| भारत में सूचना प्रौद्योगिकी की दो भूमिकाएँ हैं -विकासात्मक और दूसरी सामाजिक| विकासात्मक भूमिका में इसका संबंध विविध अनुप्रयोगों के लिए नवीन प्रौद्योगिकी का डिजाइन बनाने तथा विकास करने से है | सामाजिक भूमिका में यह भाषिक अवरोध को तोड़ती है और हिंदी

भाषा तथा भारतीय भाषाओं के प्रयोग से समाज के विभिन्न वर्गों के बीच के अंतर को कम करती है | इस दिशा में शोध कार्य सम्पन्न हुए हैं तथा हो रहे है | संगणक जैसे मशीन के माध्यम से यह संभव हो रहा है| यूनिकोड के आने से हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में बड़ी क्रांति हुई है | टंकण हेतु अनेक फोनेटिक उपकरण उपलब्ध हैं | आज यूनिकोड हिंदी प्रचलन में है | सामान्य अनुप्रयोगों जैसे वर्डपैड, इन्टरनेट एक्सप्लोरर, पेजमेकर आदि में हिंदी टंकण करने हेतु यूनिकोड फोंट का होना काफी होता है, परंतु विंडोज में हर जगह हिंदी और भारतीय भाषाओं को लिखने, टंकण करने हेतु सपोर्ट इनेबल किया जाना जरूरी होता है| इसके लिए तीन प्रणालियों का उपयोग किया जाता है | रेमिंगटन, इनस्क्रिप्ट तथा फोनेटिक | इसमें सबसे आसान प्रणाली है फोनेटिक टंकण प्रणाली | इन्टरनेट पर अधिकतर हिंदी प्रयोगकर्ता इस पद्धति का प्रयोग करते हैं| सभी भारतीय भाषाओं के की-बोर्ड भी उपलब्ध है, जिन्हें डाऊनलोड किया जा सकता है | हिंदी तथा भारतीय भाषाओं का कार्य विंडोज-7, लिनक्स, विस्टा, एक्सपी जैसे ऑपरेटिंग सिस्टम में बहुत ही आसानी से किया जा सकता है| कम्प्यूटर के आंतरिक कार्यों को संपन्न करने के लिए आवश्यक प्रोग्राम को परिचालन प्रणाली कहा जाता है | परिचालन प्रणाली विविध प्रकार के क्रमादेशों या प्रोग्रामों का संग्रह है | यह एक साथ प्रणाली के रूप में कार्य करता है | भाषा अनुवादित्र, डिस्क परिचालन प्रणाली, पाठ संपादन के माध्यम से यह प्रणाली कार्य करती है | स्पष्ट है कि डॉस, विंडोज, यूनिक्स, लिनक्स, मैक आदि सभी परिचालन प्रणाली में भारतीय भाषाओं के संसाधन की सुविधा मौजूद है| पुणे के सी-डैक ने इस दिशा में काफी काम किया है |

डॉस परिवेश वातावरण के अंतर्गत भारत सरकार की अनेक संस्थाओं ने शब्द संसाधन के अनेक पैकेज विकसित किए हैं जैसे एएलपी मल्टीवर्ड, शब्द रत्न, शब्दमाला, अक्षर, बाइस्क्रिप्ट, आदि | डाटा संसाधन का कार्य हिंदी में करने के लिए सी-डैक ने जिस्ट कार्ड, आर.के. कम्प्यूटर ने सुलिपि और सॉफ्टबेस कंपनी ने देवबेस विकसित किया है | सुलिपि और देवबेस में केवल हिंदी को समाहित किया है और जिस्ट कार्ड में भारतीय भाषाओं की भी भाषाओं के साथ साथ दक्षिण पूर्व एशिया और यूरोप की कुछ लिपियों को भी लिया गया है| उर्दू भाषा भी| ये सभी सॉफ्टवेयर्स आईबीएम पीसी के लिए योग्य हैं| आईबीएम, टाटा कंपनी ने आर. के. कम्प्यूटर्स की मदद से हिंदी डॉस नाम से एक ऐसी परिचालन प्रणाली का विकास किया है जिसके अंतर्गत कमांड और मैन्यू भी हिंदी में दिए गए है| फाइल का नाम भी हिंदी में दिया जा सकता है| सी- डैक के यूनिक्स परिवेश में शब्द संसाधन में स्पैलचेकर आदि सुविधाएँ मौजूद हैं | आज आम आदमी के लिए सर्वाधिक मैत्रीपूर्ण प्लेटफॉर्म है- विंडोज| इस प्लेटफॉर्म पर भारतीय भाषाओं में विभिन्न प्रकार के इंटरफेस विकसित किए गए हैं| प्रमुख है - लीप ऑफिस, सुविंडोज, आकृति ऑफिस आदि| एमएस ऑफिस में समाविष्ट सभी सॉफ्टवेयर्स में विभिन्न भारतीय लिपियों में फोंट, एमएस ऑफिस के साथ ही देने लगे हैं| लगभग सभी कंपनियों ने हिंदी के साथ भारतीय भाषाओं को भाषा प्रौद्योगिकी के रूप में अपनी परिचालन प्रणालियों में समाहित किया है | भारतीय भाषाओं में कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी, भाषा प्रौद्योगिकी के विकास के कारण जटिल से जटिल अनुप्रयोगों में हिंदी और भारतीय भाषाओं का व्यापक रूप से प्रयोग हो रहा है| रेल अथवा हवाई यात्रा आरक्षण व्यवस्था एक विशेष प्रौद्योगिकी के माध्यम से हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में सुलभ करवा दी

गई हैं| चुनाव के लिए करोड़ों मतदाताओं की सूचियाँ संगणक के माध्यम से हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में तैयार की गई है | इसी प्रकार परीक्षा के नतीजे, बिजली की रसीदें आदि भी | अब प्रत्येक भारतीय प्रादेशिक भाषा में जमीन से संबंधित रिकॉर्ड भी तैयार करना संभव हुआ है । आंध्रप्रदेश और तमिलनाडु में अनेक सरकारी कार्य तेलुगु और तमिल में संपन्न किए जा रहे हैं ।

साहित्य और प्रौद्योगिकी

प्रौद्योगिकी और हिंदी साहित्य का भी गहरा रिश्ता है | जब कोई भाषा संगणक प्रौद्योगिकी से गहराई से जुड़ जाती है तब उस भाषा में लिखा साहित्य भी दूर नहीं रह सकता| भाषा, साहित्य और प्रौद्योगिकी का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है |संगणक की अपनी भाषा के साथ वह अन्य भाषाओं के साथ जुड़ गया है | उन भाषाओं में लिखा साहित्य समृद्ध है | हिंदी साहित्य हो अथवा अन्य भारतीय भाषाओं में लिखा साहित्य क्यों न हो उसकी प्रस्तुति में प्रौद्योगिकी माध्यम से अधिकाधिक रंजकता आ सकती है और इस तरह की प्रस्तुति के कारण पैसा भी अधिक मिल सकता है | यानि किसी साहित्यिक रचना को अधुनातन तकनीक के आधार पर ऐसा रूप दिया जा सकता है, उसे प्रेक्षक पाठक पसंद करते हैं |

स्पष्ट है कि दुनिया बहुत ही तीव्र गति से अत्यंत नजदीक आ चुकी है| इसकी बुनियाद में प्रौद्योगिकी है | इस प्रक्रिया में इन्टरनेट की भूमिका महत्त्वपूर्ण है| इलेक्ट्रोनिक मशीनी तकनीक में इन्टरनेट एक ऐसा माध्यम है जहाँ साहित्यिक तथा साहित्येतर रचनाएँ उपलब्ध हो सकती हैं| इससे पाठक विविध साहित्यिक तथा वैचारिक पुस्तकों से जुड़ेंगे| माइक्रोफिल्म आदि के रूप में नवीन तकनीक के माध्यम से पुस्तकें उपलब्ध होने लगी हैं| 15वीं सदी में

पुस्तकों का प्रसार होने लगा था| आज प्रौद्योगिकी के कारण साहित्य का प्रचार- प्रसार तथा प्रस्तुति- मंचनादि अत्यंत प्रभावशाली ढंग से होने लगे हैं|

आज अनेक हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं की पत्र-पत्रिकाएँ संगणक जैसी मशीन के कारण यानि प्रौद्योगिकी के कारण इन्टरनेट के जरिये प्रारम्भ हो चुकी हैं| टाइम्स ऑफ इण्डिया, हिंदुस्तान टाइम्स, नवभारत टाइम्स, इण्डिया टुडे जैसी अनेक वेब पत्रिकाओं के संस्करण प्रकाशित हो रहे हैं । इसी तरह अनेक पुस्तकों ने जगह पा ली हैं । साथ ही नाटक, उपन्यास, कहानी, एकांकी, कविता, लम्बी कविता आदि का अभिनेताओं द्वारा प्रस्तुतिकरण प्रौद्योगिकी के कारण अधिक रंजक बनता जा रहा है । इसके माध्यम से विश्व सिमटकर सामाजिक, सांस्कृतिक दृष्टि से अधिक नजदीक आ गया है । बाजार और मीडिया में हिंदी को ही नहीं अन्य भारतीय भाषाओं को भी विस्तार दिया गया है। प्रौद्योगिकी ने इसे आसान बनाया है । भाषा अत्यंत निर्णायक रूप में बदल रही है। हम सभी संक्रमण से गुजर रहे हैं । भाषा की मूल ताकत को समझकर चलना आसान होता जा रहा है । मीडिया द्वारा भी भारतीय भाषाओं को बढ़ावा दिया जा रहा है। नवीन तकनीकी उपकरणों से दिन - ब - दिन यह क्षेत्र और विकास करता जा रहा है।

आज हम 21 वीं सदी के दूसरे दशक में खड़े हैं, अत: यह आवश्यक है कि हम हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं को प्रौद्योगिकी के साथ जोड़ने के अवसर नहीं गँवाएँ। अधिकाधिक रूप में प्रौद्योगिकी से जुड जाएँ । हमें हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के लिए प्रौद्योगिकी से जुडते समय आने वाली चुनौतियों का सामना

करना चाहिए। आवश्यक उपाय ढूँढने चाहिए । हम इन बातों पर ध्यान दे सकते हैं -

- भारत की अधिकतम भाषाएँ एक ही स्रोत से प्रवाहित हुई हैं । उद्भव ब्राह्मी वर्णमाला से ।
- हिंदी, बंगला, असमिया, उड़िया, मराठी, गुजराती और गुरुमुखी लिपियों का एक-दूसरे से बहुत मिलता - जुलता होना । इन्हें एक ही लिपि की विभिन्न प्रणालियाँ कहा जा सकता है ।
- दक्षिण भारत की लिपियाँ - तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम परस्पर समान और एक जैसे सिद्धान्तों पर आधारित परन्तु ये देवनागरी से अलग है । उर्दू अपवाद स्वरूप है। इसमें फारसी, अरबी लिपि अपनाई गई है। हिंदी, मराठी, नेपाली और संस्कृत लिखने के लिए देवनागरी को अपनाया गया है । तात्पर्य देवनागरी लिपि का भारत की सभ्यता और इतिहास से बहुत पुराना संबंध है ।
- आधुनिक प्रौद्योगिकी के विकास में कम्प्यूटर की खोज अनन्य साधारण घटना । आज संगणक प्रौद्योगिकी का उपयोग जीवन के सभी क्षेत्रों में है। इसके उपयोग के महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं - भाषिक अध्ययन और विश्लेषण ।
- पहले कम्प्यूटर साधित भाषा संसाधन का कार्य अंग्रेजी भाषा में ही होता था, परंतु आज अरबी, चीनी, हिब्रू, जापानी, कोरियन जैसी अनेक जटिल लिपियों के लिए भी किया जा रहा है ।
- कम्प्यूटर केवल एक तकनीकी उपकरण है । इसकी दो संकेतों की अपनी एक स्वतंत्र गणितीय भाषा है। इसी में कम्प्यूटर हमारी भाषा को ग्रहण करके अपने सभी कार्य

करता है । आज प्रमाणित हुआ है कि कम्प्यूटर को किसी भी भाषा और लिपि को अपनाने में कोई बुनियादी और तकनीकी बाधा नहीं आती है ।

- आज 'अभिकलनात्मक भाषिकी' भाषा विज्ञान की एक शाखा।
- कम्प्यूटरीकृत सांख्यिकीय अध्ययन, विश्लेषण, शब्द विश्लेषण, उपसर्ग, निपात, विश्लेष जैसे व्याकरणिक अध्ययन, लेखन शैली का विश्लेषण और विविध भाषाओं के शब्दों के आपसी सम्बन्ध व्याकरणिक संरचनाओं की जानकारी लेने जैसे साहित्यिक और भाषा वैज्ञानिक अध्ययन के लिए संगणक टेक्नोलॉजी का व्यापक रूप से उपयोग ।
- भाषा का विज्ञान से अटूट रिश्ता। संगणक के साथ संवाद स्थापित करने के लिए भाषाओं के प्रयोग की आवश्यकता । कृत्रिम बुद्धिवाले पाँचवीं पीढ़ी के संगणक के साथ प्राकृतिक भाषा के साथ संवाद स्थापित करने के प्रयोग भी प्रारंभ।
- भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थाओं में भारतीय भाषाओं में भी यह कार्य जारी । प्रौद्योगिकी के माध्यम से हिंदी था भारतीय भाषाओं का अध्ययन सम्भव ।
- हिंदी भाषा के माध्यम से अनेक संगणक पाठ्यक्रम प्रारंभ। गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग द्वारा ऐसे पाठ्यक्रम जारी। शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर के हिंदी विभाग में एम.ए. की सत्र पद्धति तथा क्रेडिट परीक्षा पाठ्यक्रम के भाषा प्रौद्योगिकी के चार प्रश्न-पत्रों का अध्यापन विगत तीन वर्षों से जारी। संगणक साधित हिंदी तथा भारतीय भाषा शिक्षण में प्रौद्योगिकी का उपयोग ।

- हिंदी तथा भारतीय भाषाओं की अभिजात्य रचनाओं को प्रौद्योगिकी के आधार पर मंचन योग्य बनाना ।
- वेब ठिकानों, ब्लॉग, फेसबुक, सर्च इंजन्स में अधिकाधिक सामग्री हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में उपलब्ध कराना । कम्प्यूटर साधित मशीनी अनुवाद प्रणाली का विकास कराना ।
- भाषा के प्रौद्योगिकी संदर्भित अध्ययन का भविष्य बहुत उज्ज्वल ।

संदर्भ

1. Pathak R.C. Bhargav Book Depot, Chowk, Varanasi. 12th Edition, Revised & Enlarged with inclusion of latest technical words, 1090 Page 929.
2. Ralph Grishman, Computational Linguistics - An Introduction - Central Institute of Mathematical Science, New York University, NY: 1986.
3. Smith J. Computer Science, Orient Longman,1978 Pg.34-38.
4. वेबसाइट्स - सी - डैक, पुणे, आई.आई.टी. कानपुर. राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार।
5. सर्च इंजन - गूगल, याहू, वेबदुनिया ।
6. हिंदी सॉफ्टवेयर्स - देवरत्न, लीला, आई.एस.एम. 6, श्रीलिपि ।
7. फोंट आधारित पैकेज्स और शब्द संसाधन - कृति देव, शुशा, चाणक्य, लीप ऑफिस, सुविंडोज़, आकृति, अक्षर फोर विण्डोज़ - एएलपी मल्टीवर्ड, शब्दरत्न, शब्दमाला, अक्षर, बाईस्क्रिप्ट, सुवर्ड आदि।
8. यूनीकोड Unicode - Hindi and Indian Language Tool. 'अक्सर,' जनवरी-मार्च 2013 में प्रकाशित लेख प्रासंगिक प्रकाशन हेतु प्राप्त ।

पंचायती राज संस्थान और संवैधानिक प्रावधान

प्रो. पवन कुमार
सहायक प्राध्यापक, सह-विभागाध्यक्ष
स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग
एम. एस. कॉलेज, मोतिहारी,
पूर्वी चम्पारण, मुज़फ्फरपुर, बिहार
9471228641, 7782936926
pawanggis2@gmail.com

परिचय

भारत में पंचायती राज संस्थान प्राचीन काल से ही मौजूद है। जिसका उल्लेख ऋगवेद में भी किया गया है| ऋग्वैदिक काल में ग्राम, प्रशासन की सबसे प्रमुख इकाईयों में से एक थी । ग्राम के प्रधान ग्रामिणी कहलाते थे। मध्य काल में यह व्यवस्था जारी रही । ब्रिटिश काल में वायसराय रिपन ने 1882 ई. में पंचायती राज संस्थान के गठन का प्रस्ताव रखा था जिसे भारत में पंचायती राज संस्थान का मैग्नाकार्टा कहा जाता है। 1907 ई० में गठित शाही आयोग ने पंचायती राज संस्थाओं के विकास पर बल दिया । फलतः भारत शासन अधिनियम, 1919 के द्वारा पंचायती राज को हस्तांतरित विषय की श्रेणी में रखा गया तथा इसके संबंध में विधि बनाने का अधिकार प्रांतीय राज्य की विधायिका को दिया गया। इन्हीं प्रावधानों के अनुरूप सन् 1920-1930 के मध्य मद्रास, बिहार,

बंगाल, असम एवं पंजाब आदि राज्यों में पंचायती राज की स्थापना संबंधी कानून पारित किए गए ।

स्वतंत्र भारत में पंचायती राज संस्थानों का विकास

स्वतंतता के पश्चात राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज की अवधारणा को मजबूती प्रदान करने के लिए संविधान सभा में पंचायती राज व्यवस्था का समर्थन श्री मन्नारायन अग्रवाल तथा गांधीवादी अर्थव्यवस्था का समर्थन जे. सी. कुमारप्पा ने दमदार तरीके से किया जिसके फलस्वरूप संविधान के अनुच्छेद-40 में ग्राम पंचायतों के गठन से संबंधित प्रावधान तथा सातवीं अनुसूची के राज्य सूची के विषय के क्रम संख्या 5 में ग्राम प्रशासन के लिए पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना करने का अधिकार राज्यों को प्रदान किया गया।

तंत्र भारत की पहली सरकार के अंतर्गत पंचायती राज तथा सामुदायिक विकास मंत्रालय की स्थापना की गई तथा स्वतंत्र भारत के प्रथम पंचायती राजमंत्री एस. के. डे. को बनाया गया । इसके बाद पं. जवाहर लाल नेहरु ने 2 अक्टूबर, 1952 को फोर्ड फाउन्डेशन के सहयोग से सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की शुरुआत की । पुनः 1953 में राष्ट्रीय प्रसार सेवा शुरू की गई । इसका उददेश्य सामान्य जनता को विकास प्रणाली से अधिकाधिक जोड़ना था।

1957 में बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में ग्रामोद्धार समिति की स्थापना कर पंचायती राज संस्थान को मजबूत बनाने हेतु अनुशंसाएँ मांगी गई । समिति ने त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थान की स्थापना पर बल दिया। समिति की प्रमुख अनुशंसा यह थी कि लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की मूल इकाई प्रखंड स्तर पर होनी

चाहिए। बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिश के आधार पर राजस्थान सरकार ने 2 सितम्बर, 1959 को पंचायती राज अधिनियम पारित किया तथा 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में पं. जवाहरलाल नेहरू के द्वारा त्रिस्तरीय आधुनिक पंचायती राज का उद्घाटन किया गया । तत्पश्चात आंध्र प्रदेश (1959), असम, तमिलनाडू और कर्नाटक (1960), महाराष्ट्र (1962), गुजरात (1963) तया प. बंगाल (1964) में भी पंचायती राज अधिनियम पारित किया गया।

बलवंत राय मेहता समिति द्वारा अनुशंसित पंचायती राज व्यवस्था में कई कमियाँ थी जिन्हें दूर करने के लिए 1977 ई. में अशोक मेहता समिति की स्थापना की गई जो कि 1978 में अपनी संस्तुति प्रस्तुत कर दिया जिसमें द्विस्तरीय पंचायती राज संस्थान की सिफारिश की गई थी। इस समिति ने ग्राम पंचायत स्तर को भंग कर केवल जिला परिषद के गठन की सिफारिश की । लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का प्रथम स्तर जिला को बनाने का सुझाव दिया जिसे सरकार ने अस्वीकार कर दिया ।

परंतु इस व्यवस्था में न तो एकरूपता थी और न ही संवैधानिक शक्तियों का बल था। इसके लिए समय-समय पर कई विशेषज्ञ समितियों का गठन किया गया जिनमें 1985 में गठित जी. वी. के. राव समिति, 1986 में गठित एल. एम. सिंघवी समिति तथा 1988 में गठित पी. के. थुंगन समिति आदि प्रमुख है जिनसे पंचायती राज संस्थानों में एकरूपता लाने तया संवैधानिक दर्जा प्रदान करने से सम्बन्धित सिफारिश मांगी गई ।

पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा

1989 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने पंचायतों के सुधार व सशक्तिकरण के लिए 64 वां संविधान संशोधन

विधेयक संसद में प्रस्तुत किया परंतु लोक सभा भंग हो जाने के कारण यह पारित नहीं हो पाया । तत्पश्चात, 1992 में प्रधानमंत्री पी. वी. नरसिम्हा राव द्वारा 73 वां संविधान संशोधन विधेयक संसद में प्रस्तुत किया गया जिसे 22 एवं 23 दिसम्बर, 1992 को क्रमशः लोक सभा एवं राज्य सभा ने पारित कर दिया । 17 राज्यों की विधानसभाओं द्वारा अनुमोदित किए जाने के बाद 20 अप्रैल, 1993 को राष्ट्रपति ने इस विधेयक पर अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी । 24 अप्रैल, 1993 से यह अधिनियम पूरे देश में लागू हो गया । इसके साथ ही पंचायती राज संस्थान को संवैधानिक दर्जा प्रदान कर दिया गया ।

संवैधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान के भाग 9 में अनुच्छेद 243 से 243-0 तक कुल 16 नए अनुच्छेद जोड़े गए तथा एक नई अनुसूची ग्यारहवीं अनुसूची को भी संविधान में जोड़ा गया जिसमें कुल 29 विषय है जिस पर कानून बनाने का अधिकार पंचायती राज संस्थान को प्रदान किया गया।

भारतीय संविधान के द्वारा त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थान के गठन से संबंधित प्रावधान किया गया है -

(i) ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत

(ii) प्रखण्ड स्तर पर पंचायत समिति और

(iii) जिला स्तर पर जिला परिषद ।

जिन राज्यों की जनसंख्या 20 लाख से अधिक होगी वहां त्रिस्तरीय पंचायत का गठन होगा और जहां 20 लाख से कम जनसंख्या होगी वहां केवल ग्राम एवं जिला स्तरीय पंचायत का गठन होगा। [अनुच्छेद 243-B]

पंचायती राज संस्थान में निचले स्तर पर ग्राम सभा होगी । जिनमें एक या एक से अधिक गांव शामिल होंगे । ग्राम सभा के संबंध में राज्य विधानमंडल कानून बनाएगा । एक ग्राम सभा का गठन ग्राम पंचायत के सभी मतदाताओं से मिलकर होता है यानि ग्राम सभा के सदस्य निर्वाचित नहीं होते हैं। [अनुच्छेद 243-A]

प्रत्येक स्तर के पंचायती राज संस्थान के सभी सदस्यों का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्येक पांचवें वर्ष होगा । पंचायती राज संस्थानों के निर्वाचन का दायित्व राज्य निर्वाचन आयोग का होगा । राज्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति राज्यपाल करेगा तया उसे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने की प्रक्रिया द्वारा ही हटाया जा सकेगा। ग्राम पंचायत के अध्यक्ष का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से तथा प्रखंड एवं जिला स्तरीय पंचायत के अध्यक्ष का निर्वाचन अप्रत्यक्ष मतदान द्वारा होता है। [अनुच्छेद 243-K]

पंचायत के सभी स्तरों पर स्त्रियों को कम-से-कम एक-तिहाई तया अनुसूचित जाति/जनजाति को उसकी आबादी के अनुपात में आरक्षण दिया जाएगा । राज्य विधानमंडल पिछड़े वर्गों के लिए भी आरक्षण का प्रावधान कर सकेगा ! [अनुच्छेद 243-D]

राज्य विधानमंडल कानून बनाकर प्रखंड तया जिला स्तरीय पंचायत राज संस्थानों में सांसद या विधायक को पदेन सदस्य बना सकता है। [अनुच्छेद 243-C]

सभी स्तर के पंचायती राज संस्थानों का सामान्य कार्यकाल 5 वर्ष का होगा। परंतु इन संस्थानों का विघटन समय पूर्व भी किया जा सकेगा । विघटन की दशा में 6 माह के भीतर चुनाव कराना होगा। [अनुच्छेद 243-E]

राज्य विधानमंडल विधि द्वारा, पंचायतों को ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान कर सकेगा, जो उन्हें स्वायत्त शासन की

संस्थाओं के रूप में कार्य करने में समर्थ बनाने के लिए आवश्यक हो । पंचायतों को किन विषयों पर अधिकारिता होगी इसकी सूची संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में दी गई है। ये विषय है- कृषि एवं कृषि विस्तार, भूमि सुधार एवं मृदा संरक्षण, लघु सिंचाई एवं जल प्रबंधन, पशुपालन, मत्स्य उद्योग, सामाजिक वानिकी और वनोद्योग, खादी. ग्राम एवं कुटीर उद्योग, लघु उद्योग, ग्रामीण आवास, पेयजल, ईंधन व चारा, सड़कें, पुलिया, नौकाघाट आदि , ग्रामीण विद्युतीकरण, गैर परम्परागत ऊर्जा, शिक्षा, प्रौढ़ एवं अनौपचारिक शिक्षा, सांस्कृतिक क्रियाकलाप, बाजार एवं मेले, परिवार कल्याण, महिला एवं बाल विकास, लोक वितरण प्रणाली , कमज़ोर वर्गों का कल्याण आदि । इस तरह 11 वीं अनुसूची के अंतर्गत पंचायतों को कुल 29 विषय सौंपे गए हैं ।[अनुच्छेद 243-G]

राज्य विधानमंडल कानून बनाकर पंचायतों को उपयुक्त स्थानीय कर लगाने, उन्हें वसूल करने तथा उनसे प्राप्त धन को खर्च करने का अधिकार दे सकता है। [अनुच्छेद 243-H]

पंचायतों की वित्तीय स्थिति की जांच के लिए प्रत्येक 5 वें वर्ष राज्यपाल द्वारा राज्य वित्त आयोग की नियुक्ति की जाती है। आयोग पंचायतों की वित्तीय स्थिति को सुधारने का सुझाव देता है। यह राज्य सरकार व पंचायतों के बीच करों एवं राजस्व के वितरण, पंचायतों को दी आने वाली कराधान संबंधी शक्तियों तथा पंचायतों को मिलने वाली सरकारी सहायता आदि की संस्तुति करती है। परंतु राज्य सरकार इन सिफारिशों को मानने के लिए बाध्य नहीं है। [अनुच्छेद 243-I]

राज्य का विधानमंडल, कानून द्वारा पंचायतों के लेखाओं की संपरीक्षा करने के संबंध में उपबंध कर सकेगा । [अनुच्छेद 243-J]

निर्वाचन संबंधी मामलों में चाहे वह निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन का मामला हों या ऐसे निर्वाचन क्षेत्रों को स्थानों के आवंटन से संबंधित मामला हो, किसी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जा सकता है। [अनुच्छेद 243-0]

पंचायती राज संस्थानों का महत्त्व

संवैधानिक दर्जा प्राप्त हो जाने से पंचायती राज संस्थानों का महत्व काफी बढ़ गया तथा काफी हद तक राष्ट्रीय स्तर पर इन संस्थानों में एकरूपता स्थापित हो गई । इनके नियमित चुनाव की व्यवस्था हुई, कमजोर वर्गों को व्यापक प्रतिनिधित्व मिला । महिलाओं को पंचायती राज संस्थानों में कम-से-कम एक तिहाई प्रतिनिधित्व हासिल हुआ । बिहार, मध्य प्रदेश तथा उत्तराखंड जैसे राज्यों में इसे बढ़ाकर 50% तक कर दिया गया है। केंद्र सरकार भी संविधान में संशोधन कर इसे 50% करने का मन बना चुकी है परन्तु अभी तक संविधान में संशोधन नहीं हो पाया है । ग्रामीण भारत में सामाजिक न्याय, पिछड़ा वर्ग एवं नारी सशक्तिकरण को बल मिला है तथा सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया मजबूत हुई है ।

निष्कर्ष

इस प्रकार देश के सभी पंचायती राज संस्थानों में एकरूपता एवं संवैधानिक शक्तियों का बल प्राप्त हो गया है जिससे ये संस्थान काफी सक्रियता के साथ अपना कार्य कर रहे है और गांधीजी के ग्राम स्वराज के सपने को साकार करने की दिशा में अग्रसर है ।

संदर्भ

1. डॉ. जय नारायण पांडेय (2015), भारत का संविधान, सेंट्रल लॉ एजेंसी, इलाहाबाद ।

2. डॉ. जय जय राम उपाध्याय (2016), भारत का संविधान, सेंट्रल लॉ एजेंसी, इलाहाबाद ।

3. ब्रज किशोर शर्मा (2015), भारत का संविधान एक परिचय, प्रेंटिस हाल ऑफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।

4. एम. लक्ष्मीकांत (2016), भारत की राजव्यवस्था, टाटा मैग्रोहिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली ।

5. डॉ. पुखराज जैन (2020), भारत का संविधान, साहित्य भवन पब्लिकेशंस आगरा ।

6. सुभाष कश्यप (2015), हमारा संविधान, नेशनल बुक ट्रस्ट इन्डिया, नई दिल्ली।

7. शिवानी किंकर चौबे (2015). भारतीय संविधान : रचना एवं कार्य नेशनल बुक ट्रष्ट, इंडिया, नई दिल्ली ।

8. डॉ. दुर्गादास बसु (2015), भारत का संविधान एक परिचय, जैन बुक एजेंसी पब्लिकेशन, नई दिल्ली ।

कोरोना काल में ध्यान के भावनात्मक लाभ

डा. प्रणव कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
इटरनल विश्वविद्यालय, हिमाचल प्रदेश
ईमेल: pranav.dmk@gmail.com
डा. प्रज्ञेंदु
एसोशियेट प्रोफेसर
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
ईमेल:pregyendu2009@gmail.com

विश्वव्यापी कोरोना वायरस के इस भयावह दौर में दुनिया के अधिकांश लोग संक्रमण के खतरे और लॉकडॉउन जैसी स्थितियों के बीच जी रहे हैं, इसकी वजह से लोग भारी तनाव का भी सामना कर रहे हैं. अनिश्चितता के इस वातावरण में वर्तमान और भविष्य को लेकर लोग सबसे ज्यादा चिंता, तनाव, निराशा जैसी स्थितियों का सामना कर रहे हैं. ऐसे में खुद का मानसिक संतुलन बनाए रखना हर व्यक्ति के लिए एक बड़ी चुनौती है. चिंता, तनाव, आदि मानव मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डालते हैं। जब हम किसी विशेष विचार, घटना, परिस्थिति, संवाद, दृश्य, सूचना-समाचार या निजी जीवन के कड़वे अनुभव को बार-बार याद कर उनकी चर्चा या मंथन करते हैं तो वह हमारे मन पर ग़लत प्रभाव डालते हैं। मस्तिष्क में यदि नकारात्मक, भय, डर, चिंता, दु:ख-दर्द, निराशा के विचार भरे

पड़े हों तो स्वाभाविक रूप से नकारात्मकता या निराशा का भाव बना रहता है। जब लंबे समय तक यही स्थिति रहती है तो मन कमजोर हो जाता है, हम थोड़ी सी परिस्थिति में घबरा जाते हैं। ऐसे समय में यदि किसी व्यक्ति से कहा जाए कि आप हिम्मत रखें, सकारात्मक चिंतन करें और मन को कमजोर नहीं होने दें तो चाहकर भी वह ऐसा नहीं कर पाता है, क्योंकि उसे लंबे काल से कमजोर मन के साथ भय, चिंता, तनाव और डर में जीने की आदत पड़ चुकी है।

कोरोना वायरस के साथ भी कुछ यही स्थिति बनी है। हम पिछले काफ़ी समय से इतने ज्यादा समाचार देख, सुन और पढ़ चुके हैं कि मस्तिष्क में नकारात्मक विचारों का अंबार लग गया है। जैसे ही मन के धरातल पर कोरोना शब्द आता है तो उससे जुड़ी सारी बातें याद आने लगती हैं। ये स्थिति तब और गंभीर हो जाती है जब वहीं इंसान कोरोना पॉजिटिव होने पर इससे जुड़ी और ज़्यादा नकारात्मक चीजें सोचने लगता है। ऐसे में मस्तिष्क पर तनाव, डर, चिंता बढ़ने लगता है। एक तो हम पहले से कोरोना पॉजिटिव है और शरीर को स्वस्थ होने के लिए पहले से ज्यादा सकारात्मक ऊर्जा, रोग प्रतिरोधक क्षमता की जरूरत है। इसके लिए मस्तिष्क को बहुत ज्यादा ऊर्जा चाहिए। ऊपर से नकारात्मक विचारों का अंबार होने से व्यक्ति तनाव में चला जाता है। एक कोरोना पॉजिटिव मरीज को इलाज के साथ-साथ मानसिक संबल सबसे ज्यादा जरूरी है। कहावत भी है मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

तनाव और डर की वजह से बहुत-से लोगों को ठीक तरीके से सोने में परेशानी होती है। इसे नियंत्रित करना बहुत ज़रूरी है क्योंकि, इसका हमारे शरीर और मानसिक स्वास्थ्य पर असर पड़ सकता है। ऐसे में तनाव को कम करने के लिए कई उपाय हैं।

जिसमें से एक है ध्यान। ध्यान तनाव से राहत पाने और मन को शांत रखने की एक बेहतरीन तरीक़ा है। जो, फिलहाल दुनियाभर में फैले कोरोना वायरस के डर के माहौल में लोगों को स्वस्थ रहने में मदद कर सकता है।

विभिन्न शोधों में ऐसा कहा गया है कि ध्यान अनिद्रा से निपटने के लिए एक कारगर उपाय है। ध्यान करने वाले व्यक्ति की नींद न आने की समस्या को कम करने में मदद होती है। जैसा कि अच्छी और शांत नींद हमारी पूरी सेहत के लिए महत्वपूर्ण है। इसीलिए, ध्यान करने से स्वास्थ में सुधार होता है। दरअसल, ध्यान करने से दिमाग में ऐसी तरंगे उत्पन्न होती हैं जिनसे आराम महसूस होता है। इससे शांत रहने और काम करने में मदद होती है। इससे चैन की नींद सो सकते हैं। कोरोनावायरस और लॉकडाउन के दौरान ध्यान से तनाव और चिंता जैसी परेशानियों को कम किया जा सकता है। सामान्य भाषा में कहें तो, ध्यान मस्तिष्क के लिए वही करता है जो व्यायाम शरीर के लिए करता है। ध्यान एक मानसिक व्यायाम है जिसमें विश्राम, ध्यान केंद्रित करना और जागरूकता शामिल है। ध्यान कई प्रकार की हैं। आप कोई भी तरीक़ा अपनाकर इसके फ़ायदे प्राप्त कर सकते हैं। कई प्रमुख मेडिटेशन हैं :

1. ज़ेन मेडिटेशन (Zen meditation)

ज़ेन मेडिटेशन बौद्ध परंपरा का एक हिस्सा है। इसका अभ्यास एक ट्रेंड प्रोफेशनल के मार्गदर्शन में करना चाहिए। इसके अभ्यास में कुछ विशेष स्टेप्स और आसन शामिल होते हैं। यह आपके दिमाग को तेज़ करने में मदद करता है और आपको तनाव दूर करके रिलैक्सेशन प्रदान करता है।

https://zmm.org/teachings-and-training/meditation-instructions/.

2. माइंडफुलनेस मेडिटेशन (Mindfulness meditation)

माइंडफुलनेस मेडिटेशन का ध्यान का एक रूप है जो अभ्यास करने वाले व्यक्ति को वर्तमान में जागरूक और उपस्थित रहने में मदद करता है। इस मेडिटेशन के अभ्यास से आप खुद को सचेत और सतर्क बना सकते हैं। इसके अभ्यास के दौरान आप अपने आस-पास हो रही सभी गतिविधियों, ध्वनियों और महक पर ध्यान केंद्रित करते हैं। इसका अभ्यास कहीं भी, कभी भी किया जा सकता है। https://www.mindful.org/mindfulness-how-to-do-it.

3. अध्यात्मिक मेडिटेशन (Spiritual meditation)

हिंदू और ईसाई धर्म में पॉपुलर, आध्यात्मिक ध्यान आपको अपने ईश्वर के साथ एक गहरा संबंध बनाने में मदद करता है। इस ध्यान का अभ्यास करने के लिए आपको इतना सुनिश्चित करना है कि आप मौन में बैठें और अपनी सांसों पर ध्यान केंद्रित करें। ध्यान करते हुए आप का हर एक विचार आपकी सांसों पर केंद्रित होना चाहिए। https://mindworks.org/blog/what-is-spiritual-meditation/

4. कुंडलिनी योग ध्यान (Kundalini yoga)

कुंडलिनी योग ध्यान का एक प्रकार है जिसमें आप शारीरिक रूप से सक्रिय होते हैं। इसमें गहरी सांस लेने और मंत्रों का उच्चारण करने के साथ-साथ कई मवमेंट्स भी शामिल होते हैं। इसके लिए आपको आमतौर पर क्लास लेने की आवश्यकता होती है या फिर आप किसी प्रशिक्षक से सीख सकते हैं। हालांकि, आफ घर पर भी आसन और मंत्र सीख सकते हैं। https://www.osho.com/

meditation/osho-active-meditations/osho-kundalini-meditation.

5. मंत्र मेडिटेशन (Mantra Meditation)

मंत्र एक संस्कृत शब्द है जो दो शब्दों से मिलकर बना है मन (man) जिसका अर्थ है "मस्तिष्क" या "सोचना" और त्राइ (trai) जिसका अर्थ है "रक्षा करना" या "से मुक्त करना"। इसलिए मंत्र का मतलब है अपने मन को मुक्त करना या सोच को मुक्त करना। मंत्र मेडिटेशन का अभ्यास आपके मन को नेगेटिव विचारों से दूर करके इसे सकारात्मकता की ओर ले जाता है। https://www.artofliving.org/in-en/mantra-meditation.

6. ट्रैन्सेंडेंटल मेडिटेशन (Transcendental Meditation)

ये मंत्र मेडिटेशन का विशेष रूप है और ये ध्यान के तरीकों में सबसे ज्यादा लोकप्रिय है। वैज्ञानिकों ने भी इस मेडिटेशन के फायदों के बारे में बताया है। इससे ब्लड प्रेशर, तनाव और बेचैनी और हृदय रोग का खतरा एवं स्ट्रोक का खतरा कम होता है।। ये अनिद्रा को दूर कर दिमाग को तेज करती है और याद्दाश्त को बढ़ाती है। ये मेडिटेशन उन लोगों को सूट करती है जिन्हें संरचना पसंद होती है और जो मेडिटेशन का अभ्यान करने के लिए गंभीर होते हैं। मेडिटेशन करने के लिए एक मंत्र या शब्द पर ध्यान केंद्रित करना होता है। एक शिक्षक उस वर्ष के आधार पर मंत्र निर्धारित करता है जिस पर चिकित्सक पैदा हुआ था या जिस वर्ष शिक्षक को प्रशिक्षित किया गया था। इसके बाद शिक्षक लोगों को अपना मंत्र चुनने के लिए कहते हैं और इसके बाद दिन में दो बाद 15-20

मिनट के लिए आंखें बंद करके इस मंत्र का उच्चारण किया जाता है। https://www.tm.org/learn-tm.

यह एक अवसर है जब भारत आयुर्वेद, प्राकृतिक चिकित्सा, योग जैसी प्राण देने वाली विधा के द्वारा कोरोना पर विजय पाकर समूचे विश्व को संदेश दे सकता है कि वैश्विक संकट काल में भारत की प्राचीन चिकित्सा पद्धतियां ही विश्व में सर्वश्रेष्ठ हैं।

प्रकृति शरीर पर प्रतिक्षण अरबों खरबों विषाणुओं के आक्रमण होने पर कार्य करते हुए हमे रोग मुक्त बनाने में लगी रहती है। प्रत्येक प्राणी में यह दिव्य जीवन शक्ति प्रकृति ने कूट कूट कर भरी है। इसी को प्रतिरोधक शक्ति या इम्यूनिटी कहा गया है। इस कोरोना काल में मनुष्य प्रकृति से दूर हो गया। मनुष्य उस प्रकृति से जो जीवन रक्षक है, वायु से दूर हो रहा है। वायु जो प्राण रक्षक है, इसमें शरीर के भीतर के अंगों को और कोशिकाओं को जीवित रखने का सामर्थ्य है। हमारे अरबों सेल्स को प्रत्येक क्षण आक्सीजन चाहिए। शरीर को जीवित रखने के लिए आक्सीजन चाहिए। आक्सीजन शरीर के सिस्टम को ठीक रखती है। भीतर कोशिकाओं को प्राण आक्सीजन नही मिलने से वह कोशिकाएं मृत हो जाने से मनुष्य की स्वयं की शक्ति घटने लगेगी, इम्यूनिटी घटने लगेगी और व्यक्ति बीमार पडने लगेगा।

शरीर को सूर्य स्नान चाहिए, धूप चाहिए, खुला आकाश चाहिए जहाँ स्वच्छंद भ्रमण किया जा सके । स्वच्छ जल चाहिए जिसका सेवन कर स्वयं के शरीर को डिटाक्सिफाई कर सके। प्राकृतिक आहार चाहिए, सकारात्मक उर्जा चाहिए जिससे हम सकारात्मकता का अनुभव कर सके इन सभी से हमारी इम्यूनिटी बढती हैं। इसके विपरीत प्रकृति से मनुष्य को जोडने के बजाए वह दूर होता जा रहा है। इससे नकारात्मकता का वातावरण बन गया है।

किसी भी विषाणु या बैक्टीरिया को मनुष्य को संक्रमित करने के लिए एक वातावरण चाहिए ताकि वह फैल सके यदि लो इम्यूनिटी , टाक्सिक शरीर , लो इम्यून सिस्टम, लो एनर्जी व डर एवं खौफ जैसा वातावरण है तभी शरीर संक्रमित होता है।

कोरोना काल में ध्यान हमारी अन्दरूनी शक्तियों को बढाता है, भीतर के डर को मिटाता है। योग प्राणायाम से भीतर के प्राण कोष को विकसित कराने के कार्य को किया जाना चाहिए। सात्विक व प्राकृतिक आहार लेने के लिए प्रेरित किया जा सकता है, जिससे हमारी रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ सकती है। लेकिन उसके लिए हमें ध्यान का नियमित अभ्यास करना चाहिए।

कोरोना वायरस महामारी ने सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक रूप से बड़ी मात्रा में प्रभाव डाल कर एक वैश्विक संकट पैदा कर दिया है। इस चुनौतीपूर्ण समय में हमारे धैर्य और शक्ति की परीक्षा है, कि हम न सिर्फ वाइरस को फैलने से रोकें बल्कि इस परिस्थिति से बेहतर तरीके से बाहर आएं। इस महामारी को गंभीरता से लेना और जिम्मेदारीपूर्ण ढंग से कार्रवाई करना, हमारे लिए महत्वपूर्ण है। निश्चित रूप से यह भयभीत होने का समय नहीं है। वायरस को हराने के लिए सामूहिक कार्रवाई की आवश्यकता है। यह बहुत आवश्यक है कि हर कोई साफ-सुथरा रहने, बार-बार हाथ धोने, सामाजिक दूरी आदि को बनाए रखने जैसे नियमों का पालन करे। आरंभ में ये हमें चुनौतीपूर्ण लग सकते हैं, पर इनका पालन करना मुश्किल नहीं है। यदि हमने ध्यान दिया हो तो पाएंगे कि ये तौर-तरीके हमारी अनेक पारंपरिक संस्कृतियों का हिस्सा रहे हैं। योग के प्राचीन दर्शन में न केवल शरीर का, बल्कि मन और आस-पास के परिवेश की स्वच्छता पर भी बहुत जोर दिया जाता है।

योग अथवा नियम का पहला सूत्र ही व्यक्तिगत स्वच्छता अर्थात शौच पर आधारित है। नैतिकता, स्वच्छता या शौच के बारे में है। महर्षि पतंजलि के योग सूत्रों में यौगिक जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण आधार के रूप में शौच को पवित्रता और स्वच्छता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। शौच का गहन अर्थ अनावश्यक शारीरिक संपर्क और अंतरंगता से बचना भी होता है। स्वस्थ और रसायन-मुक्त भोजन, जो हमें भीतर से स्वच्छ रखता है, खाने का हमारा आत्म-अनुशासन, शौच का पूरक है। इसमें पर्याप्त नींद लेना, व्यायाम करना, ध्यान करना और वह सब जो हमारे सिस्टम को शुद्धि की ओर ले जाता है, भी शामिल हैं। आसन, प्राणायाम और ध्यान को जीवनशैली का अभिन्न अंग बनाने से व्यक्ति की रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है और कोरोना जैसे वायरस दूर रहते हैं।

उथल-पुथल वाले इस समय में अपने आप को सब से अलग रख कर हम इस वाइरस को एक-दूसरे में फैलने की संभावनाओं को कम कर सकते हैं। घर के भीतर रहें, यात्रा और सार्वजनिक समारोहों या सामुदायिक दावतों में जाने से बचें। रीति-रिवाजों की तुलना में ध्यान और प्रार्थना ज्यादा श्रेष्ठ और प्रभावी हैं। सामाजिक दूरी या कोरेंटाइन को अपने आप को जानने और भीतर जाने के अवसर के रूप में लें। यह हमें अपने आप पर ध्यान देने तथा अपनी भूमिकाओं और लक्ष्यों पर चिंतन करने का समय देता है। यह हमारे भागते-दौड़ते जीवन के नीरस पैटर्न को तोड़ने और गतिविधियों जैसे कि कोई रचनात्मक लेखन, खाना पकाना, संगीत, चित्रकारी या भाषा सीखने का एक बहाना भी है। यह दृश्य से आगे बढ़ कर, खोए हुए द्रष्टा को ढूँढने का समय है। विश्राम और गतिविधि के बीच संतुलन बनाने का समय है।

सामाजिक-दूरी कोई दंड नहीं है। मौन और एकांतवास, व्यक्तिगत विकास और आत्म-नवीकरण के लिए शक्तिशाली साधन हैं। एकांतवास के ही कारण संसार में अनेक महान कार्य घटित हुए हैं। अधिक से अधिक ध्यान करें तथा इस एकांतवास को अपनी मानसिक शक्ति, रचनात्मकता, परानुभूति और उत्पादकता बढ़ाने के लिए उपयोग करें। अब, जबकि हमें अपने परिवार के सदस्यों के साथ अधिक समय बिताने को मिल रहा है, तो उन्हें सुनें।

यह अनिश्चितता का एक अस्थायी दौर है। पहले भी मानवता ने इस तरह की आपदाओं से लड़ कर जीत हासिल की है। हम अतीत में सार्स, स्वाइन फ्लू और बुबोनिक प्लेग जैसी महामारियों से उबर के आए हैं। आश्वस्त रहें कि हम इससे भी निकाल आएंगे। हमें इस समय क्या घटित हो रहा है, इस विषय में अवगत रहने की आवश्यकता है, न कि कोरोना में ही हर समय डूबे रहने की। अंतहीन टीवी बहस और सोशल मीडिया शेयर, अनिश्चितता को बढ़ावा देते हैं और चिंता एवं भय का कारण बन सकते हैं।

कोरोना वायरस निश्चित रूप से दुनिया के लिए एक विपत्ति है, लेकिन इसका मतलब सर्वनाश नहीं है। निराशा के काले बादलों के पीछे चांदी की चमक वाली रेखाएँ, आशा की किरणों को जगाने के लिए पर्याप्त है। हमें इसी पर ध्यान देने की जरूरत है। लोगों के घर के भीतर रहने से आकाश और जल निकायों का स्वच्छ होना हो अथवा लोगों द्वारा अपना दिल खोल कर जरूरतमंदों को मदद देना हो, भले ही इससे कोरोना महामारी में हुए नुकसान की तुरंत भरपाई न हो पाए, पर अंततः इससे मानव जाति का भला ही होगा। निश्चित रूप से, यह संकट हमें साफ-सफाई, व्यक्तिगत स्वच्छता और स्वस्थ जीवन शैली के प्रति और अधिक संवेदनशील बना देगा।

समय के साथ हर घाव भर जाता है। आइए हम सब धैर्य, साहस और करुणा के साथ इस विपत्ति का सामना करें।

संदर्भ

Beddoe, A.E. and Murphy, S.O. (2004) Does Mindfulness Decrease Stress and Foster Empathy among Nursing Students? *Journal of Nursing Education*, 43, 305-312.

Davis, Mark. (1980). A Multidimensional Approach to Individual Differences in Empathy. *JSAS Catalog Sel. Doc. Psychol.*. 10.

Decety, Jean. (2011). The Neuro-evolution of Empathy. *Annals of the New York Academy of Sciences*. 1231. 35-45.

Jevning, R., Wallace, R. K., & Beidebach, M. (1992). The Physiology of Meditation: A Review: A wakeful hypometabolic integrated response. Neuroscience and Biobehavioral Reviews, 16(3), 415-424.

पहले सिनेमा का रंगीन - रूपक : 'हरिश्चंद्राची-फैक्ट्री'

प्रताप सिंह
फ्लैट न. 220
पत्रकार परिषद्, सेक्टर -5
वसुंधरा - गाज़ियाबाद - 201012
मोबाइल : 9717749114

''राजा-हरिश्चंद्र'' को बने 3 मई 2021 को 108 साल पूरे हो गए। मूक-युग के सिनेमा की इस प्रथम नाट्यस्तुति के रचयिता दादा फाल्के का 30 अप्रैल 2021 को 151 वां जन्मदिन था। "राजा हरिश्चंद्र'' और ''दादा फाल्के'' के सिने- संघर्ष को थियेटर से फिल्मों में आए युवा निर्देशक परेश मोकाशी ने एक कथा-रूपक में बदला। फाल्के की युवाकाल की घटनाओं और उनकी इस कला, अभिनयता और तकनीक के जादू को उस रूपक में सामंजस्य के साथ साकार करते हुए, परेश मोकाशी ने उसे एक चुनौतीपूर्ण 'बायोपिक' में बदला। 2009 में वही बायोपिक एक शानदार शाहकार (फीचर- फिल्म) के रंगीन-उपहार के रूप में अगली पीढ़ियों को हासिल हुआ। उसी चलचित्र का नाम है--''हरिश्चंद्राची-फैक्ट्री" मूक-युग की सिने-प्रस्तुति के प्रस्तोता दादा फाल्के और "राजा हरिश्चंद्र" की निर्माण-कथा का यह सिने- रूपांतरण हमारे सिनेमा के इस दुस्साहसी कलाकार का सिने-जीवन-दर्शन भी है। प्रिंटर का साझे का धंधा छोड़, फिल्मों की दहलीज पर पहुंचे दादा फाल्के को एक लघु

फिल्म 'लाइफ ऑफ क्राइस्ट' ने पहले-पहल फिल्म बनाने के लिए प्रेरित किया। परेश मोकाशी ने दादा फाल्के के इसी करिश्मे और उसकी क्लॉसिकी को खूब समझा-समझाया है। इस नवल-प्रस्तुति ने उस दौर में प्रवेश का सुनहरा अवसर दरअसल हर पीढ़ी को दिया है।

टॉकी युग की शुरुआत से पहले मूक-सिनेमा के शिरोमणियों में दादा फाल्के और उनकी पृष्ठभूमि को सिने-कृति ''राजा-हरिश्चन्द्र'' से हम बेहतर जान सके। उसके लम्बे अरसे बाद सिनेमा के सच हुए इस सपने को निर्देशक परेश मोकाशी ने अपनी रंगीन फिल्म ''हरिश्चंद्राची-फैक्ट्री'' के एक मनोहारी रूपक के माध्यम से साकार करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। मराठी-रंगमंच के ख्यात हस्ताक्षर परेश मोकाशी ने दादा-फाल्के-युग में बनी उनकी पहली फिल्म को केंद्र में रखकर इस रंगीन कृति में, उसकी नयनाभिराम-प्रस्तुति में, दादा फाल्के के फिल्म-निर्माण के जुनून, उनकी कार्य-शैली, गृहस्थी, पत्नी, दो बच्चों के आंतरिक-प्रहसन, लंदन-प्रवास के अनुभव और सैलानी प्रवृत्ति की उनकी हँसमुख -छवियों तक को अपने सिनेमा के इस मनोहारी शिल्प में उतारा और महसूस कराया है। भारतीय सिनेमा के शिखर-पुरुष की यह गौरव-गाथा अप्रतिम और निराली कथा है।

वास्तव में यह एक युवा- फिल्मकार की दादा फाल्के के जीवन-संघर्ष के सोपानों को, बड़े ही लुभावने प्रसंगों और नूतन छवियों को सहज अभिनय की बानगी और जुगलबंदी के साथ पेश करती, अनूठे संवादों में जगमगाती सिने-कृति है। इसमें पारसी-थियेटर से मुक्त होने की नाकाम कोशिश कर रहे मूक-सिनेमा की अनबोली, चपल-छवियों वाली मुग्ध करती बड़बोली तस्वीरों में 'ओपेरा' की सी उन्मुक्त लयकारी का आनंद अनायास छलकता है। जबकि देसी-शैली का ओपेरा तो उस युग में प्रतिध्वनित ही नहीं

हुआ होगा। घटनाओं और मात्र संवादों से सांकेतिक ब्योरे प्रस्तुत करने वाले उस दौर के सिनेमा की कोई बड़ी पहचान दादा फाल्के जैसी शख्सियत ही बना सकती थी।

1913 में बनी "राजा-हरिश्चन्द्र" के निर्माण के समय जोखिम और खतरे उन्हें कम नहीं उठाने पड़े होंगे। प्रोजेक्टर, कैमरा, प्रोडक्शन-टीम, अभिनेता...कुछ भी तो उपलब्ध नहीं था। प्रिंटिंग-प्रेस का जमा-जमाया धंधा छोड़कर, थियेटर से सीधे सिनेमा के नए-नए गोरख-धंधे में प्रवेश करना, परिवार-मित्रों, बच्चों-पत्नी तक को अचंभित कर, अपनी योजना में शामिल करना, पड़ोसी और शुभचिंतकों की आलोचना सहकर अपनी इस नई अर्जित प्रतिभा [सनक] को परदे पर रूपायित करने का आह्लाद और सुख पाना ही मानो परेश मोकाशी की इस फिल्म का केंद्रीय भावलोक है। परदे पर दिखाए गए इस भावलोक में दर्शक भी सहज ही शामिल होता चला जाता है। लगता ही नहीं, हम कोई फिल्म देख रहे हैं।

मूक-युग के रोमांचित करने वाले इस सिनेमा में नाटकीय-शैलियों और प्रतिभा-विस्फोट का जादू गुंफित है। उस दौरान 1900 के बाद से बाइबिल की कहानियों पर कई छोटी-छोटी फिल्में बन रही थीं । इनमें "लाइफ ऑफ क्राइस्ट" मुंबई में 1911 में दिखाई गई। फाल्के इस फिल्म से इतने प्रभावित हुए कि..उन्होंने अपना धंधा ही बदल लिया। उन्होंने उसे भगवान कृष्ण की गाथा में रूपांतरित करने की ठानी । लेकिन महंगे प्रोजेक्ट में हाथ डालना मुनासिब न लगा, तो "राजा-हरिश्चंद्र" से पहल की। इस तरह 1913 में उनकी पहली फीचर फिल्म 'प्ले-एक्टिंग' के नए जादू के साथ परदे पर उतरी। कभी चंद टुकड़ों की चलती-फिरती तस्वीरों को देखने गए फाल्के-परिवार की प्रतिक्रियाओं को उनके श्याम-श्वेत सिनेमा में हम भारतीय परिप्रेक्ष्य में नए रंग-ढंग साथ देखते हैं। यह

जादू दादा फाल्के की सूझ-बूझ, मौलिकता, पात्रों के चरित्र-चित्रण की तसल्ली और अपने स्वभाव, नटखटपन और खुद सिनेमा - टेकनीक के जानकार होते चले जाने के भरोसे की ही देन साबित होता है।

परेश मोकाशी ने दादा फाल्के की बहुमुखी प्रतिभा की सतरंगी छवियों को अपनी 'बोलती' मूक-युग की इस टॉकी में भरपूर अवसर दिया है। हर शॉट खिल उठा है। महाराष्ट्र में ही उन्होंने तालीम पाई थी। अपने प्रिंटिंग-प्रेस के काम में महारत यूँ ही, हासिल नहीं की थी। जर्मनी में उन्होंने प्रिंटिंग-टेक्नोलॉजी की विद्या का तजुर्बा लिया था। बाद में जब प्रिंटिंग का काम छोड़, सिनेमा की दहलीज पर आए तो प्रोडक्शन के हर पहलू से वाकिफ हुए और फिर 'स्पेशल इफेक्ट्स' के तो वे जीनियस कहलाए। परेश मोकाशी ने दादा फाल्के की सिने-निर्माण-कला की खूबियों का बारीकी से अध्ययन किया और उसे अपनी सिने-कृति ''हरिश्चंद्राची-फैक्ट्री'' में रेशा- रेशा पिरो कर दिखाया है। दरअसल मराठी में निर्मित "हरिश्चंद्राची-फैक्ट्री" से पहले भी मराठी सिनेमा ''श्यामची आई'', "एक होता विदूषक", "माई-बाप", "आहुति", "अनुराधा", "काल रात्रि बारा वाजता" और "निष्पाप" जैसी सिने-कृतियों से चर्चित हुआ है। लेकिन संदीप सावंत निर्देशित "श्वास" के पश्चात परेश मोकाशी की इस फिल्म को ही सर्वाधिक ख्याति हासिल हुई है। "श्वास" भी अपनी आँचलिक-छवियों की प्रस्तुति, संवाद-शैली और अभिनय क्षमता का अहसास करा चुकी है। परेश मोकाशी की फिल्म का 'ट्रीटमेंट' फिर भी उन सब चर्चित फिल्मों से अलग है। उन्होंने इसके निर्माता श्रीरंग गोडबोले के साथ जोड़ी बनाकर, दादा फाल्के के श्याम-श्वेत सपने को इस डिजिटल युग से प्रभावित हुए बगैर उन्हीं

के अंदाज में सिनेमा तकनीक की संपूर्ण कलाओं की प्रयोगधर्मिता से मानो चित्रकार की तरह परदे पर रंगों से साकार कर दिखाया है।

दुनिया के ऐतिहासिक रूपक कभी नहीं बदलते। परन्तु प्रस्तुतियां सिनेमा जैसे माध्यम में नए कलेवर, नए एंगल की मोहताज रहती ही हैं। उसे विरले- दिग्दर्शक अपने युग के आईने में बेजोड़ शाहकार बनाकर ही पेश करते हैं। आर्क-लाइट की रोशनी में पहले-पहल सान पर चढ़ा हमारा सिनेमा उन्हें कैसे भुला सकता है, जिन्होंने सिनेमा के कैशोर्य-काल में गजब की, उसके प्रथम पहरूए जैसी भूमिका निभाई हो। आज समय उसी के फ्लैश-बेक को भरपूर निहारने का, दर्शकों की नवीनतम पीढ़ी को सुनहरा मौका दे रहा है। उसी बहाने मराठी-सिनेमा की इस ऊँचाई और कौंध पर भी नज़र पड़ती है, जो बॉलीवुड जैसे सिनेमा के सबसे बड़े बाजार को भी गुणवत्ता के मामले में कभी-कभी पीछे छोड़ जाने की सनसनाहट महसूस कराता है। परेश मोकाशी, श्रीरंग गोडबोले के अलावा आनंद मोदक-परेश मोकाशी के संगी अमलेंदु की सिनेमेटोग्राफी, अमित पवार की संपादन कला और नितिन देशाई के आर्ट डॉयरेक्शन ने भी एक भारतीय फिल्म की नूतन गरिमा के सम्मोहन से दर्शक-जगत को अंत तक बांधे रखा है।

यह मात्र मराठी का सिनेमा न रहकर, पूरे भारत के सिनेमा का प्रतिनिधित्व करने वाला -अनूठा और हर पल भाव-विभोर करने वाला चलचित्र कहलाएगा। युवा निर्देशक मोकाशी ने अपनी थिएटर के मंचीय अनुभवों की महक और पुरातन-सिनेमा-टेकनीक के जादुई प्रयोगों, प्रभावों की तरंग से इतना आह्लादित कर दिया कि इस फिल्म के किसी भी प्रसंग को भूलना मुश्किल हो गया है। पत्नी को गोद में उठाकर झूमते युवा दादा फाल्के और उनको चुपचाप आंख औचक देखते किशोर उनके दोनों लड़कों का वैसा ही

करना, एक उन्मादी क्षण के दृश्य का जैसे मनोजगत ही बदल देता है। इस दृश्य की शर्मीली लज़्जाहट की खिलावट भी बस देखते ही बनती है। लज्जा और शरमाहट में, बालक मन की भोली उज्ज्वलता और चतुराई का नया आकाश भी शामिल हो गया है।

ऐसे अनगिनत शॉट हैं- जो विडंबनाओं, पारिवारिक-कष्टों तक को परिहास के क्षण में बदलते हैं। चलते हुए सिनेमा की पहले-पहल की मौलिक व मौखिक तैयारियों के प्रहसनों की मार्मिक अभिव्यक्तियों के छांदिक-रूपायन परदे पर इतने सहज ढंग से कितनी फिल्मों में फिल्माए गए होंगे ? पहली भारतीय मूक फीचर-फिल्म ''राजा- हरिश्चन्द्र'' के चरित्रों की कष्टकारी खोज में निमग्न दादा फाल्के को 'तारामति' की भूमिका के लिए पुरुष अभिनेता ही मिलते हैं। वेश्याएं तक सिनेमा की बदनामी से डरते-बचते हुए वह रोल अस्वीकार कर देती हैं। लिहाजा परदे पर "मूंछों वाली तारामति" ही शुरुआत में प्रगट होती है। इस हास्य-प्रसंग के बाद फाल्के की फिल्मी सनक से बौराए लोगों की उन्हें पागलखाने ले जाने की बौड़म कोशिश का दृश्य भी उस जमाने की चपलता और सनक का संजीदा-सा परिचय देता चलता है। अंतिम शॉट में ट्राम में दादा फाल्के नाम और मशहूरी को रेखांकित करता लकड़ी के हाथी का खिलौना बेचता एक लड़का दिखाया गया है। खिलौना बेचते-बच्चे के सुर का पुट भी दृश्य की खिलावट बढ़ाता है- जब एक संवाद ही दृश्य की गति बदलता है। संवाद है- ''चार आने में फाल्के" ! 'हाथी' और 'फाल्के' दोनों भारतीयता के रूपक हैं। और वे खुद उनकी प्रसिद्धि की घर-घर पहुंची टंकार के भी द्योतक हैं। 'चार आने में फाल्के' बोलकर खिलौना बेचने की व्यंजना भीतर तक मुखरित होती है। यह संवाद और उनकी [धुंडीराज गोविंद

फाल्के] की प्रसिद्धि की खुशी और खूबियों की पहचान भी दर्शकों को छलका देती है।

दादा फाल्के के 1913 के दौर और फिल्म-निर्माण कला में स्वप्निल- फ्लैशबेक .फ.कत 'पीरियड-ड्रामे' के कवच में बंधे नहीं रहते। जिंदगी के अनूठे लम्हों के साथ उस कवच से बाहर खूब झांकते हैं। इसी नाते यह फिल्म पूरी तरह से "बायोग्राफिकल" भी नहीं है। फाल्के की पहली फीचर मूवी "राजा-हरिश्चन्द्र" फोटोग्राफी, हैंडक्रेक- कैमरे की स्पीड का संयोजन, एंगल की कारीगरी, थिएट्रीकल- परफारमेंस, स्पेशल-इफेक्ट्स की शुरूआत और उनके ये नए प्रयोग इस "स्टेज-सिनेमा" की प्रथम रोमांचित दास्तान को भी परदे पर साथ-साथ दर्ज करते चलते हैं।

आज दादा फाल्के की प्रथम सिने-प्रस्तुति "राजा-हरिश्चंद्र" को बने बेशक 108 साल हो चुके हैं। उसका 'विजन', 'फ्लैश-बेक' और एक 'मॉडल- स्केच' तथा 'स्क्रीन-प्ले' किन परिस्थितियों में तैयार हुआ होगा, यह सोचना भर आज भी कौतुक पैदा करता है। इसी 'कौतुक' की संभाल और चलती हुई तस्वीरों के कारखाने के एक होनहार दृष्टा की सिनेमाई-संगीतात्मक व्याख्या का सार्थक नाम है- "हरिश्चंद्राची- फैक्ट्री" ! इसमें ही दादा फाल्के की आत्मा का वास है। यह एक सच्ची नूतन- धरोहर साबित होगी।

सेवानिवृत्ति उपरान्त सेना के जेसीओ व अन्य पदों के लिए द्‌वितीय कैरियर/ व्यवसाय व उपजीविका के विकल्प एवं सुझाव

डॉ. राहुल उठवाल
आई-605, वी.वी.आई.पी. एड्ड्रेस
राजनगर एक्सटेंशन, गाजियाबाद,
उत्तर प्रदेश
दूरध्वनि: 7066508089
ईमेल : profrahul9@gmail.com

1. प्रस्तावना

हमारी भारतीय सेना विश्व की साहसी सेनाओं में से एक हैं, भारतीय सेना ने देश के प्राचीन इतिहास, संस्कृति, परम्पराओं और दार्शनिकों से प्रेरणा ग्रहण की है। इनसे ही भारतीय सेना के लिए वह स्रोत तैयार हुआ, जिसने युद्‌ध और युद्‌ध कला से सम्बंधित उसकी दिशा और दृष्टिकोण को तय किया है। भारतीय सेना सदा से ही अपने आदर्श मूल्यों, अनुशासन, रीति-रिवाजों व परम्पराओं के लिए जानी जाती है। हमारे पूर्वजों के अदम्य साहस, शौर्य, त्याग एवं बलिदान ऐसी विशेषताएं रही हैं; जो आज के सैनिकों को दिशा-निर्देशन एवं प्रेरणा दे रही हैं। अपने बड़े आकार व विविध क्षेत्रों व संस्कृतियों के बावजूद यह हमारे राष्ट्र की प्रमुख शक्ति है; और

सम्पूर्ण विश्व में अपने शानदार सैन्य इतिहास के लिए प्रसिद्ध है। भारतीय सेना ने प्राचीन समय के पारम्परिक युद्धों से लेकर वर्तमान समय के हमारे पड़ोसी देशों द्वारा छेड़े गए छद्दम युद्धों में बढ़-चढ़ कर भाग लिया है। इसका इतिहास साक्षी है कि हमारी सेना ने सदा ही दुश्मन को लोहे के चने चबाने के लियें विवश किया है। अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु भारतीय सैनिक अपनी जान की बाज़ी लगाने से भी पीछे नहीं हटते; वह अपने प्राणों की आहुति देते हुए सर्वोच्च बलिदान का उदाहरण देकर भी अपने देश की रक्षा करते हैं। कठिन से कठिन परिस्थियों में भी भारतीय सेना ने सदा ही शत्रु का हँसते-हँसते मुकाबला किया है; और हमेशा विजयी रही है।

2. भारतीय सेना सदा से ही अपने सैनिकों के भविष्य के लियें चिंतित रहती है। इसलिए वह उनके विकास और पदोन्नति के लियें समय-समय पर रेजिमेंटों/ कोरों में विभिन्न पाठ्यक्रमों का संचालन करती है। मेरे विचार से भारतीय सेना पूरे भारत वर्ष में एक ऐसा संगठन है; जो हमेशा ही अपने कर्मचारियों के विकास में तत्पर रहता है। अपने सैनिकों के प्रति समर्पण के कारण ही 8वीं - 10वीं कक्षा उत्तीर्ण एक सैनिक मानद कप्तान की उपाधि तक प्राप्त करके अपनी सेवा से सेवानिवृत्त होता है; और यह व्यक्तिगत की लगन और मेहनत के द्वारा संभव हो पाता है। जिसके द्वारा सेना में भर्ती हुए 10% लोग ही इस लक्ष्य तक पहुँच पाते हैं; और बाकी के 90% सैनिक जिस पद में भर्ती हुए थे; या दो-तीन उच्च पद पा कर सेवानिवृत्त हो जाते हैं। 10% सैनिक वह होते हैं; जिन्होंने शिक्षा एवं मेहनत के महत्त्व समझा है; और अपने और अपने परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारी को पूर्ण ईमानदारी से निभाया है।

3. शिक्षा का महत्त्व - शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा के शिक्ष धातु में आ प्रत्य लगाने से बना है। शिक्षा का अर्थ है - सीखना और सिखाना। हम समाज के विकास और उसमें होने वाले परिवर्तनों की रुपरेखा में शिक्षा के स्थान और उसकी भूमिका को निरंतर विकासशील पाते हैं।

4. शिक्षा व्यक्ति की अंतर्निहित क्षमता तथा उसके व्यक्तित्व को विकसित करने वाली प्रक्रिया है। यही प्रक्रिया उसे समाज में एक वयस्क की भूमिका निभाने के लिए समाजीकृत करती है; तथा समाज के सदस्यों को एक जिम्मेदार नागरिक बनाने के लिए आवश्यक ज्ञान तथा कौशल उपलब्ध कराती है। इसी शिक्षा के द्वारा व्यक्ति एक कुशल समाज का निर्माण करते हुए अपना और अपने परिवार का विकास करता है; तथा जीवन जीने के अनुकूल वातावरण भी उपलब्ध कराता है। शिक्षा में ज्ञान, उचित आचरण और तकनीकी दक्षता, शिक्षण और विद्या प्राप्ति आदि समाविष्ट हैं। इस प्रकार यह कौशलों, व्यापारों या व्यवसायों एवं मानसिक तथा नैतिक और सौन्दर्य विषयक के उत्कर्ष पर केन्द्रित है।

5. सेना द्वारा सैनिकों के कौशल को संगठन के लिए प्रखर बनाने के उपाय - सर्वविदित है कि सेना में एक सैनिक की भर्ती अपने व्यवसाय (ट्रेड) के अनुसार आठवीं कक्षा से बारहवीं कक्षा तक ही होती है। जैसे ट्रैडमैन की भर्ती आठवीं कक्षा, सामान्य कार्य (जी डी) आठवीं से दसवीं कक्षा तक (अपने क्षेत्र के अनुसार), लिपिक, टेक्नीशियन एवं नर्सिंग असिस्टेंट 12वीं कक्षा उत्तीर्ण (विषय के अनुसार) की जाती है। परन्तु भारतीय सेना उनकी इस सामान्य योग्यता पर ही स्थिर नहीं रहती। भारतीय सेना चाहती है कि जो

भी व्यक्ति सैन्य परिवार का भाग है। वह अपना उत्तरोत्तर विकास करे। इसलियें सेना में समय-समय पर अनेक पाठ्यक्रम में भाग लेने की व्यवस्था की गयी है। जैसे सिपाही से लांस नायक/ नायक बनने के लिए शस्त्र रणनीति (Weapons Tactic) एवं सामान्य ज्ञान में पारंगत होना अति आवश्यक है। इस रणकौशल के अभाव में एक सामान्य सैनिक; सिपाही के पद से लांस नायक/ नायक के पद पर पदोन्नत नहीं हो सकता। इसी प्रकार नायक के पद से हवालदार के पद में पदोन्नत होने के लियें नायक को मैप रीडिंग द्वितीय एवं प्रथम की परीक्षा उत्तीर्ण करना अनिवार्य है। यदि कोई सैनिक नॉन मैट्रिक (दसवीं कक्षा से कम) योग्यता में भर्ती हुआ है; तो उसे हवलदार अथवा जे सी ओ के पद में पदोन्नत होने के लियें सेना द्वारा निर्धारित परीक्षा, हिन्दी प्रथम और द्वितीय को उत्तीर्ण करना अनिवार्य है; अथवा उसे किसी शैक्षिक बोर्ड द्वारा 10वीं की परीक्षा उत्तीर्ण करना आवश्यक है। इस सब के आभाव में वह किसी एक पद से दूसरे उच्च पद में पदोन्नत नहीं हो सकता। यदि एक सैनिक अपनी इच्छा से इन कोर्स एवं कैडर में भाग लेकर उसमें उत्तीर्ण होता है; तो वह समय-समय पर उत्तरोत्तर पदों में पदोन्नत होता जाता है; और अधिक समय तक सेना में सेवा कर पाता है।

6. एक सैनिक जैसे-जैसे उत्तरोत्तर सेना द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रमों को उत्तीर्ण करता जाता है। वैसे-वैसे उसकी सेना में सेवा की अवधि बढ़ती जाती है। यदि एक सैनिक इन प्रतियोगी परीक्षा में बार-बार अनुत्तीर्ण होता जाता है; अथवा अपनी इच्छा अनुसार इनमें भाग ही नही लेता तो उसे अपनी न्यूनतम सेवा अवधि के दौरान ही सेना से पद-मुक्त कर दिया जाता है। इसका एक ही कारण है कि सेना अपने सैनिक को उसके व्यवसाय (ट्रेड) में प्रखर और तीक्ष्ण करना

चाहती है। जिस से युद्ध और शांति काल में वह अपने व्यवसाय (ट्रैड) कौशल से सेना को उत्तम सेवा दे सके; जिसकी उससे अपेक्षा की जाती है।

7. "प्रकर्षतन्त्रा हि रणे जयश्रीः" - अर्थात युद्ध में विजयश्री उच्चत्तर शक्ति वाले की ही होती है। उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि जिस व्यक्ति में उच्चतर शक्ति होती है। वही व्यक्ति किसी भी रण में विजय प्राप्त करता है। यहाँ पर शक्ति का अर्थ शारीरिक शक्ति से नहीं वरन मस्तिष्क की शक्ति से है। यदि 21वी सदी में किसी भी देश में कोई युद्ध होता है; तो वह शारीरिक शक्ति से नही जीता जा सकता। किसी भी देश से युद्ध में विजय प्राप्त करनी है; तो तकनीक के साथ कूटनीति की अति आवश्यकता होगी। तकनीक के साथ कूटनीति, मस्तिष्क की उच्चत्तर शक्ति से ही प्राप्त होती है; तथा मस्तिष्क की उच्चत्तर शक्तियां शिक्षा से प्राप्त होती हैं। इसीलिए सेना अपने प्रत्येक सैनिक को शिक्षा के द्वारा उसके कौशल में और अधिक तीक्ष्ण करना चाहती है। जिससे वह हर क्षेत्र में विजयश्री प्राप्त कर सके। कहा गया है - "Whoso loveth education; loveth knowledge." अर्थात - "जो शिक्षा पाने से प्रीति रखता है; वह ज्ञान से प्रीति रखता है।" पवित्र बाइबल का यह कथन सर्वथा शिक्षा के महत्त्व को स्पष्टतः प्रतिपादित करता है।

8. सेना द्वारा अपने सैनिकों की शिक्षा में बढ़ोत्तरी के लियें बहुत से प्रयास किये जा रहे हैं। जिससे वह देश एवं संगठन के लियें अपना महत्त्वपूर्ण योगदान अदा कर सके। सेना अपने एक साधारण सैनिक को भी अधिकारी बनाने के अवसर प्रदान करती है; और उन्हें प्रतियोगी परीक्षाओं में सहभागिता करने हेतु तैयार करती है।

9. एक सैनिक से अधिकारी बनने के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं का विवरण - सेना अपने सैनिकों के उज्ज्वल भविष्य हेतु कुछ प्रतियोगी परीक्षाओं का आयोजन करती है; जिसमें सफल होकर सैनिक; अपने सपनों की उड़ान भरते हुए; सेना में अधिकारी के रूप में प्रतिस्थापित होकर अपने देश की सेवा कर सकें। उन प्रतियोगी परीक्षाओं के विवरण निम्नलिखित प्रकार से हैं -

(क) एस सी ओ कमीशन (स्पेशल कमीशन्ड ऑफिसर)- अधिकारी बनने के इस विशेष प्रवेश में एक सैनिक की सैन्य सेवा कम से कम 05 वर्ष हो, आयु 28 वर्ष से 35 वर्ष के बीच हो; तथा उसकी शैक्षिक योग्यता 10+2 कक्षा उत्तीर्ण हो। उपरोक्त योग्यता को पूर्ण करने वाले सैनिक निर्धारित प्रतियोगी परीक्षा उत्तीर्ण करते हुए एस सी ओ कमीशन अधिकारी बनकर; अपने सपनों के भविष्य का निर्माण करते हुए; हमारे भारत देश की अखंडता को अक्षुण्ण बनाये रखने में अपनी भागेदारी सुनिश्चित कर सकते हैं।

(ख) ए सी सी कमीशन (आर्मी कैडेट कॉलेज) - अधिकारी बनने के इस विशेष प्रवेश में एक सैनिक की सैन्य सेवा कम से कम 02 वर्ष हो; आयु 20 वर्ष से 27 वर्ष के बीच हो तथा उनकी शैक्षिक योग्यता 10+2 कक्षा उत्तीर्ण हो। उपरोक्त योग्यता को पूर्ण करने वाले
सैनिक ए सी सी की निर्धारित प्रतियोगी परीक्षा को उत्तीर्ण करने के उपरांत अधिकारी बन कर अपने सपनों को पंख दे सकते हैं।

(ग)पी सी (एस एल) (परमानेंट कमीशन (स्पेशल लिस्ट)) - सेना में स्थाई कमीशन प्राप्त करने के लियें इस विशेष प्रवेश में एक सैनिक की अधिकतम आयु 42 वर्ष से अधिक न हो;

शैक्षिक योग्यता कम से कम 10+2 हो। उपरोक्त योग्यता को पूर्ण करने वाले सैनिक निर्धारित प्रतियोगिता को उत्तीर्ण करके सेना में स्थाई कमीशन अधिकारी बन सकते हैं।

(घ)एस एस सी (शोर्ट सर्विस कमिशन) - सेना में अल्प समय (15 वर्ष) के लिए अधिकारी बनने के इस विशेष प्रवेश में एक सैनिक की आयु 19 वर्ष से 25 वर्ष के बीच हो; तथा शैक्षिक योग्यता स्नातक डिग्री उत्तीर्ण हो। उपरोक्त योग्यता को पूर्ण करने वाले सैनिक एस एस सी की निर्धारित प्रतियोगी परीक्षा उत्तीर्ण करके शोर्ट सर्विस कमीशन अधिकारी बन सकते हैं। ज्ञात हो कि शोर्ट सर्विस कमीशन अधिकारी; स्थाई कमीशन की निर्धारित प्रतियोगी परीक्षा उत्तीर्ण करके सेना में स्थाई कमीशन प्राप्त कर; सेना के स्थाई कमीशन अधिकारी बन सकते हैं।

10. सेना द्वारा अपने सैनिकों के व्यक्तिगत विकास हेतु शिक्षा में बढोत्तरी के उपाय - भारतीय सेना का वर्तमान स्वरूप जब से में अस्तित्व आया है; तब से ही सेना अपने वीर सैनिकों के ज्ञान और शिक्षा में बढ़ोत्तरी के उपाय कर रही है। जिससे सैनिक अपनी सेवानिवृत्ति के उपरांत उचित द्वितीय कैरियर/ व्यवसाय चुन कर आगे की उपजीविका अच्छी प्रकार से अर्जित कर सकें। जैसा कि सर्वविदित है कि सेना अपने सैनिकों को युद्ध कौशल और अपने व्यवसाय (ट्रेड) के अनुसार कठिन प्रशिक्षण प्रदान करती है। जिसके कारण प्रत्येक प्रशिक्षित सैनिक को वर्षों का युद्धक एवं तकनीकी अनुभव प्राप्त होता है। उसके उपरांत भी सैन्य मुख्यालय द्वारा सैनिकों के सुनहरे भविष्य हेतु कई योजनाओं एवं नियमों और कानूनों के सृजन करने के साथ-साथ कई शैक्षिक संस्थाओं एवं अभिकरणों के साथ समझौता भी किया है। जिससे सैनिक अपने

रेजिमेंट और यूनिट में अपनी ड्यूटी/ कर्त्तव्य निभाते हुए अपना अध्ययन जारी रखें; एवं परीक्षा के समय टी डी (टेम्परेरी ड्यूटी) जा कर परीक्षा दे सकें; एवं अपने आपको सेवानिवृत्ति के उपरांत द्वितीय कैरियर/ व्यवसाय के लियें तैयार कर सकें। सेना द्वारा अपने सैनिकों के शैक्षिक विकास के लियें; जो योजनाएँ बनाई गई हैं; और जिनकी व्यवस्था की गयी हैं। उन्हें हम निम्नलिखित प्रकार से देख सकते हैं।

11. आई ए ई पी (इंडियन आर्मी एजुकेशन प्रोजेक्ट) - इस कार्यक्रम के दौरान सैन्य मुख्यालय ने तीन शैक्षिक संस्थाओं के साथ समझौता किया है। वह संस्थाएं सैनिकों को पाठ्यक्रम सामग्री उपलब्ध कराने के साथ-साथ उनके यूनिटों, ब्रिगेड मुख्यालयों अथवा डिविजन मुख्यालयों में सम्बंधित परीक्षा सम्पन्न करवाती हैं। सेना की प्रत्येक कमांड में आई ए ई पी सेल का सृजन किया गया है। प्रत्येक कमांड में आने वाली प्रत्येक कोर्प मुख्यालय एवं डिविजन मुख्यालय में इसके स्टेडीज सेंटर बनाये गये हैं। आई ए ई पी का संचालन सैन्य शिक्षा कोर्प के द्वारा किया जाता है। सैन्य मुख्यालय द्वारा जे सी ओ एवं अन्य पदों को निर्धारित पाठ्यक्रम उपलब्ध करवाने वाली तीनो संस्थाओं का परिचय; एवं उपलब्ध करवाए जाने वाले पाठ्यक्रमों के विषय में हम निम्नलिखित प्रकार से देख सकते हैं।

(क) एन आई ओ एस (नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ ओपन स्कूलिंग) - इस शैक्षिक बोर्ड के पाठ्यक्रम में सैनिकों को उनकी इच्छा के अनुसार; उन्हें उनकी ड्यूटी/ कर्त्तव्य स्थल पर उपस्थित रहते हुए प्रवेश प्रदान करवाया जाता है; यह पाठ्यक्रम उन सैनिकों के लियें तैयार किया गया है; जो

10वीं कक्षा अथवा 12वीं कक्षा से कम योग्यता रखते हैं। यदि कोई सैनिक 8वीं कक्षा उत्तीर्ण करके सेना में भर्ती हुआ है; तो वह अपनी इच्छानुसार विषयों का चयन कर इस पाठ्यक्रम द्वारा एक वर्ष में ही 10वीं कक्षा की परीक्षा उत्तीर्ण कर सकता है। इसी प्रकार 10वीं उत्तीर्ण करके सेना में भर्ती हुआ सैनिक एक वर्ष में ही 12वीं की परीक्षा उत्तीर्ण कर सकता है। 8वीं कक्षा उत्तीर्ण सैनिक यहाँ पर लगातार दो वर्ष तक अध्यनरत रह कर; अपने आपको 10+2 उत्तीर्ण सैनिक के सामान योग्य कर सकता है। परन्तु यह सब उसकी इच्छाशक्ति पर निर्धारित करता है। एन आई ओ एस द्वारा संचालित सभी पाठ्यक्रम भारत सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हैं।

(ख) इग्नू (इंदिरा गाँधी नेशनल ओपन यूनिवर्सिटी) - इस मुक्त विश्वविद्यालय द्वारा अनेक प्रकार के प्रमाण-पत्र, डिप्लोमा, स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों की रचना की गयी है। कोई भी सैनिक जो पहले से 10+2 कक्षा उत्तीर्ण है; या सेना में भर्ती होने के उपरांत एन आई ओ एस द्वारा 10+2 की परीक्षा उत्तीर्ण करता है; तो वह सेवानिवृत्ति के उपरांत अपने द्वितीय कैरियर/ व्यवसाय सम्बन्धी योजना बना कर। इग्नू द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रमों में से अपने भविष्य हेतु पाठ्यक्रमों का चयन कर सकता है। अपने चयनित पाठ्यक्रम, प्रमाण-पत्र, डिप्लोमा, स्नातक एवं स्नातकोत्तर परीक्षा आदि को उत्तीर्ण करते हुए; एक सैनिक अपने उज्ज्वल भविष्य का निर्माण बड़ी सुगमता से कर सकता है। इग्नू द्वारा आई ए ई पी योजना के अंतर्गत जिन पाठ्यक्रमों का निर्धारण किया गया है। उनके विषय

कोड निम्नलिखित प्रकार से हैं - बी कॉम, बी ए, बी सी ए, सी डी एम, सी ई एस, बी लिस, बी पी पी, सी आई जी, सी आई टी, सी आर डी, सी एच आर, एम ए डी ई, सी टी ई, सी टी एस, डी टी एस, एम ई जी, एम एच डी, एम लिस, एम पी, एम सी ए, पी जी जे एम सी, पी जी डी डी ई, पी जी डी एच ई, पी जी डी आर डी, पी जी डी टी, बी टी एस, एम ए पी सी, एम पी ए, पी जी डी डी एम, एम एस डब्लू, एम पी एस, एम एस ओ आदि।

(ग) तालीम-ए-तरक्की - जामिया मिल्लिया इस्लामिया यूनिवर्सिटी ने भारतीय सेना के सैनिकों के लियें कुछ स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों का सृजन किया है। इस विश्वविद्यालय की धरणा है कि हमारी सेना के वीर सैनिक अपने कर्त्तव्य में इतने व्यस्त रहते हैं; कि उन्हें अध्ययन करने का बहुत कम समय मिल पाता है। यदि वह अध्ययन के लिए समय निकाल भी पाते हैं; तो कभी-कभी उनकी ड्यूटी इतनी कठोर परिस्थितियों में होती है कि वह चाह कर भी समय पर परीक्षा देने परीक्षा केन्द्रों पर नही पहुँच पाते। इस कारण उनका अध्ययन कार्य पूर्ण नही हो पाता। इसलिए विश्वविद्यालय ने उनके लियें स्नातक एवं स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने का निर्धारित समय क्रमशः एक-एक वर्ष ही रखा है। स्नातक उपाधि प्राप्त करने के लिए मुख्यतः तीन वर्ष एवं स्नातकोत्तर के लिए दो वर्ष का समय विश्वविद्यालयों एवं यू जी सी द्वारा निर्धारित किया गया है। परन्तु यदि कोई सैनिक तालीम-ए-तरक्की योजना के तहत स्नातक या स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करना चाहता है; तो स्नातक के लिए सेना में उसकी

सेवा के दो वर्षों को जोड़ लिया जाता है; तथा एक वर्ष अध्ययन करने पर उसे स्नातक की तीन वर्ष की उपाधि प्रदान कर दी जाती है। इसी प्रकार स्नातकोत्तर उपाधि के लिए सेना में उसकी सेवा के एक वर्ष को जोड़ लिया जाता है; तथा एक वर्ष अध्ययन करने पर उसे स्नातकोत्तर की दो वर्ष की उपाधि प्रदान कर दी जाती है। जामिया मिल्लिया इस्लामिया यूनिवर्सिटी द्वारा भारतीय सैनिकों को तालीम-ए-तरक्की योजना के अंतर्गत प्रदान की जाने वाली सभी उपाधियाँ भारत सरकार एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त हैं।

12. सैन्य आदेश 156/60 जो बाद में सैन्य आदेश 89/80 में सशोधित हुआ, द्वारा जे सी ओ एवं अन्य पदों को अध्ययन की स्वतंत्रता - सेना द्वारा अपने सैनिकों के सुन्दर भविष्य हेतु इन सब उपरोक्त शैक्षिक कार्यक्रमों, योजनाओं एवं पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त भी सेना ने सैन्य आदेश संख्या 156/60 जो बाद में सैन्य आदेश संख्या 89/80 में सशोधित हुआ, द्वारा जे सी ओ एवं अन्य पदों को भारत के किसी भी शैक्षिक संस्थान एवं विश्वविद्यालय में किसी भी प्रकार के पाठ्यक्रम अथवा उपाधि प्राप्त करने हेतु अध्ययन की स्वतंत्रता प्रदान की है। जे सी ओ अथवा अन्य पद; जब चाहें, जहाँ चाहें, सेना द्वारा निर्धारित उच्च शिक्षा प्राप्त करने के प्रारूप में प्रार्थना-पत्र अपने कमान अधिकारी से अनुमति प्राप्त करके; अपना अध्ययन जारी रख सकता है। परन्तु इस सैन्य आदेश में ध्यान देने वाली बात यह कि एक सैनिक अध्ययन के आधार पर किसी प्रकार की तैनाती एवं स्थानान्तरण की मांग नही करेगा; न ही सेना द्वारा इस प्रकार की किसी मांग पर विचार किया जायेगा; और न ही उसे इस हेतु किसी प्रकार की विशेष छुट्टी प्रदान की प्रदान की

जायेगी। उसे अपनी निर्धारित छुट्टी का इस प्रकार प्रबंध करना होगा। जिससे वह निर्धारित समय पर अपनी परीक्षा दे सके।

13. "Make the precious of every opportunity" - अर्थात "प्रत्येक अवसर को बहुमूल्य समझो", पवित्र बाइबल का यह कथन स्पष्ट करता है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसे प्राप्त होने वाले समय का पूरा-पूरा उपयोग करना चाहिये। यदि किसी व्यक्ति को अपने विकास करने का अवसर प्राप्त होने के बाद भी वह अपना विकास नही करता; तो समझों उसने अपना सुनहरा भविष्य नष्ट कर दिया। सेना द्वारा प्रत्येक जे सी ओ एवं अन्य पद को अवसर के साथ-साथ आगे बढ़ने एवं उनके व्यक्तिगत विकास एवं कौशल को बढ़ाने; और उसे प्रखर करने के उपरोक्त अनेक उपाय किये जाते हैं। बहुत से जे सी ओ एवं अन्य पद इस बहुमूल्य अवसर का लाभ उठा कर; सेवानिवृत्ति उपरांत अपने द्वितीय कैरियर/ व्यवसाय के द्वारा अपने परिवार और समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। परन्तु अधिकतर जे सी ओ एवं अन्य पद ऐसे होते हैं; जो जानबूझ कर समय का पूरा-पूरा उपयोग नही करते। एक दिन जब वह सेना से सेवानिवृत्त होते हैं; तब उन्हें बहुत सी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है; क्योंकि उन्होंने समय रहते सेना द्वारा प्रदत्त सैनिकों के भविष्य के विकास एवं शैक्षिक योजनाओं में रूचि न दिखाते हुए; किसी प्रकार की सहभागिता नहीं की। यदि वह समय रहते ऐसा करते एवं उनके मन की अतल गहराईयों में कुछ नया कर गुजरने की भावनाएं हिलोरे लेती; तो उनकी सेवानिवृत्ति के बाद का भविष्य भी अन्य लोगों के समान उज्ज्वल होता।

14. सेवानिवृत्ति उपरान्त जे सी ओ व अन्य पदों के द्वितीय व्यवसाय के लिए विकल्प - सेना के प्रशिक्षित सैन्यकर्मी अपनी सेवा

को पूर्ण करने के बाद एक सामान्य एवं सतत प्रक्रिया के तहत सेना से सेवानिवृत्त हो जाते हैं। सेना से अवकाश प्राप्त करने के बाद भी वह द्वितीय कैरियर/ व्यवसाय की ओर देखते हैं। एक सैनिक अवकाश प्राप्त करने के बाद जिन्दगी से थकता नहीं; क्योंकि उसने अपने देश के लिए अपने परिवार से अलग रहकर विषम से विषम परिस्थियो में भी अपने कर्त्तव्य का निर्वाह किया है। अवकाश प्राप्त सैनिक अपने उस परिवार के लियें कुछ न कुछ करना चाहता है; जिससे वह जीवन के सुनहरे लम्हों में वर्षों तक अलग रहा है। एक सैनिक के इन सपनों को पंख देने के लिए रक्षा मंत्रालय का पुनर्वास महानिदेशालय समय-समय पर पुनर्वास पाठ्यक्रमों का संचलन करता है। जिसके द्वारा सेना से सेवानिवृत्ति लेने वाले अनेक जे सी ओ एवं अन्य पद प्रत्येक वर्ष अनेक प्रकार से लाभान्वित होते हैं।

15. यदि जे सी ओ एवं अन्य पदों ने समय रहते सेना द्वारा सैनिकों के कौशल (ट्रेड) को प्रखर एवं तीक्ष्ण करने वाले कैडर और पाठ्यक्रम को पूरा करने के साथ-साथ अपने व्यक्तिगत विकास हेतु; सैन्य मुख्यालय द्वारा जारी शैक्षिक योजनाओं एवं पाठ्यक्रमों में भाग लेकर अध्ययन किया है; तो उनके लिए द्वितीय कैरियर एवं व्यवसाय के अनेक द्वार खुल जाते हैं। जिन्हें हम निम्नलिखित प्रकार से देख सकते हैं -

(क) **<u>गैर-सरकारी राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में सेवा के अवसर</u> -** सेना के सामान्य ड्यूटी से लेकर अधिकतर प्रत्येक ट्रेड के सेवानिवृत्त सैनिकों को इन संगठनों में प्रवेश के लिए आरक्षण प्रदान किया जाता है। यदि पूर्व सैनिकों ने अपनी ट्रेड के पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त इग्नू से सामजिक कार्य में स्नातक डिग्री, एम एस डब्ल्यू

अथवा डिजास्टर मैनेजमेंट आदि का प्रमाण-पत्र या डिप्लोमा पाठ्यक्रम पूर्ण किया है; तो उनके लियें इन संगठनों में भर्ती होना बहुत सरल हो जाता है। इस प्रकार के कुछ गैर-सरकारी राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का विवरण निम्नलिखित प्रकार से हैं -

(क क) <u>अंतर्राष्ट्रीय रेड क्रॉस एवं रेड क्रीसेंट परिसंघ</u> - इस संगठन का कार्य युद्ध काल, प्राकृतिक अथवा मानवजनित आपदा के समय घायलों, बीमारों एवं आपदा के सताये हुए लोगों को स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करना है। इस संगठन में विश्व की 181 सेवाप्रदाई राष्ट्रीय समितियां शामिल हैं। सामाजिक कार्य से स्नातक एवं स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त सेना के सेवानिवृत्त (एन ए) नर्सिंग सहायक एवं बी एफ एन ए (युद्ध क्षेत्र नर्सिंग सहायक) इस संगठन में नौकरी के लियें ऑनलाइन आवेदन कर सकते हैं।

(क ख) डब्ल्यू एच ओ (वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाइजेशन) - यह संगठन मानवीय संकटों के समय लोगों को सहायता प्रदान करता है। इसके सम्बन्ध में यह भी कह सकते हैं कि यह संगठन संकट में स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यवाही करता है। कोई भी सैनिक जिसने सामाजिक विज्ञान में स्नातक एवं स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की है। वह इस संगठन में ऑनलाइन आवेदन द्वारा नौकरी पाने के प्रयास कर सकता है।

(क ग) यूनिसेफ - यह संगठन भारत में 1949 से कार्य कर रहा है। इसकी प्रतिबद्धता यह सुनिश्चित करने के प्रति है कि देश में जन्म लेने वाले प्रत्येक बच्चे को

जीवन की सर्वोत्तम शुरुआत मिले। वह फूले-फले और अपनी पूरी क्षमताओं के साथ विकसित हो। कोई भी सैनिक जिसने इग्नू अथवा तालीम-ए-तरक्की से बाल स्वास्थ्य एवं कल्याण में स्नातकोत्तर डिप्लोमा प्राप्त किया है। इस संस्थान में भर्ती होने के लिए योग्य है।

(ख) एक सेवानिवृत्त सैनिक जिसने अपने ट्रैड कार्य के पाठ्यक्रम के साथ-साथ सामाजिक विज्ञान से कोई उपाधि प्राप्त की है; तो वह गैर-सरकारी राष्ट्रीय सगठनों जैसे- केयर, ऑक्सफेम, एक्शन ऐड, अजीम प्रेम जी सामाजिक संस्थान, बचपन बचाओ एवं एड्रा आदि संस्थाओं में सेवा के कार्य करते हुए; अपने परिवार की अच्छी प्रकार से देखभाल कर सकता है।

(ग) **एन डी आर एफ में सेवा के अवसर** - एन डी आर एफ देश का एक ऐसा विभाग (बल) है; जो देश के किसी भी भाग में आयी आपदा के समय (फाईटिंग फ़ोर्स) के समान ही आपदा नियंत्रण एवं बचाव के कार्य करता है। 23 दिसम्बर 2005 को भारत सरकार द्वारा आपदा प्रबंधन अधिनियम सन 2005 लागू किया गया था। जिसके तहत देश के प्रत्येक राज्य में एन डी आर एफ केंद्र स्थापित किये गये हैं। एक सेवानिवृत्त सैनिक के लिए अपने राज्य में और अपने परिवार के समीप रह कर। इस बल में भर्ती हो कर देश और समाज की सेवा करने के अच्छे अवसर उपलब्ध हैं। एन डी आर एफ में सेवानिवृत्त जे सी ओ एवं अन्य पदों की बहुत मांग है; क्योंकि सेना से सेवानिवृत्त सैनिको ने सेवा में रहते हुए बहुत से बचाव अभियानों में भाग लिया होता है। जिस प्रकार का कार्य एन डी आर एफ

के कर्मचारी करते हैं। उन कार्यों को करने का सेना से सेवानिवृत्त सैनिकों का बहुत वर्षों का अनुभव होता है। हमारी भारतीय सेना के पूर्व लेफ्टिनेंट जनरल एन सी विज, पी वी एस एम, यू वाई एस एम, ए वी एस एम (सेवानिवृत्त) वर्ष 2004 में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण, भारत सरकार के उपाध्यक्ष एवं पूर्व लेफ्टिनेंट जनरल (डॉ), जे आर भारद्वाज, पी वी एस एम, ए वी एस एम, वी एस एम (सेवानिवृत्त) वर्ष 2007 में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण, भारत सरकार के सदस्य रहे हैं। एन डी आर एफ में सेना के पूर्व सामान्य ड्यूटी सैनिक, इंजीनियर्स (सैपर्स), जे सी बी ऑपरेटर, सिग्नलमैन, नर्सिंग सहायक एवं ड्राइवर आदि; प्रतियोगी परीक्षा उत्तीर्ण कर एन डी आर एफ में प्रतिस्थापित हो सकते हैं।

(घ) अग्नि शमन दल में सेवा के अवसर - सेना से सेवानिवृत्त जे सी ओ एवं अन्य पदों के लियें द्वितीय कैरियर के रूप में अग्निशमन दल में सेवा के बहुत से अवसर उपलब्ध हैं। इसमें भर्ती के लियें पूर्व सैनिकों को राज्यों के नियमों के अनुसार आरक्षण भी प्राप्त होता है। सेना के पूर्व सामान्य ड्यूटी सैनिक, ड्राइवर, लिपिक, स्टोर कीपर के लियें; अग्नि शमन दल में फायर फाईटर से लेकर फायर अधिकारी बनाने तक के अवसर उपलब्ध हैं।

(ङ) राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण में सेवा के अवसर_- राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण द्वारा भारत वर्ष में स्थापित किये गए; विभिन्न टोल टैक्स प्लाजा में सुरक्षाकर्मी के रूप में सेवानिवृत्त सामान्य ड्यूटी सैनिक एवं राजमार्ग निर्माण के लियें; इंजीनियर कोर के अलग-अलग ट्रेड के सैनिक

जैसे जे सी बी ऑपरेटर, ड्राइवर, मैसन एवं ऑपरेटर इंजीनियर मैकेनिकल आदि के लियें, सेवा के अनेक अवसर उपलब्ध हैं।

(च) बी एस एन एल, एयरटेल, वोडाफोन एवं जिओ आदि संचार सेवा विभागों में सेवा के अवसर - बी एस एन एल (भारत संचार निगम लिमिटेड), एयरटेल, वोडाफोन, जिओ आदि; संचार सेवा विभाग में सेवानिवृत्त सामान्य ड्यूटी; जे सी ओ एवं अन्य पदों हेतु सुरक्षा अधिकारी एवं सुरक्षाकर्मियों के साथ-साथ सिग्नल कोर के सिग्नलमैन, लाइनमैन एवं टेक्नीशियन आदि के लियें; सेवा के अनेक अवसर उपलब्ध हैं।

(छ) पुलिस विभाग में सेवा के अवसर - सेना से सेवानिवृत्त हुए सैनिकों की प्रत्येक राज्य के पुलिस विभाग में भर्ती के लियें; राज्य सरकारों ने विशेष छूट अथवा आरक्षण की सुविधा प्रदान की है। सेवानिवृत्त जे सी ओ एव अन्य पद; पुलिस विभाग में आरक्षी से लेकर उपनिरीक्षक एवं निरीक्षक तक बन सकते हैं। इसी के साथ सिग्नल कोर के सिग्नलमैन, लाइनमैन, ऑपरेटर पुलिस स्टेशन में वायरलैस सेट अथवा रेडियो सेट ऑपरेटर; अथवा सेना के सेवानिवृत्त लिपिक; राइटर जैसे पदों पर आसीन हो सकते हैं।

(ज) राष्ट्रीयकृत बैंकिंग सेवाओं में सेवा के अवसर - सेना के सेवानिवृत्त सामान्य ड्यूटी जे सी ओ एवं अन्य पदों के लियें; राष्ट्रीयकृत बैंकिंग सेवाओं में सुरक्षा अधिकारी व सुरक्षाकर्मी के पद एवं सेना के सेवानिवृत्त लिपिकों के लिए बैंक लिपिक, लेखा लिपिक आदि सेवा के अवसर उपलब्ध

हैं। सेवानिवृत्त सैनिक जब चाहें; बैकिंग सेवाओं द्वारा आयोजित प्रतियोगी परीक्षाएं उत्तीर्ण कर; सैनिकों को प्राप्त आरक्षण के आधार पर बैकिंग सेवाओं में भर्ती हो सकते हैं।

(झ) भारतीय रेलवे विभाग में सेवा के अवसर - भारतीय रेलवे समय-समय पर सेवानिवृत्त सैनिकों हेतु अनेक पद सृजित करता है। सेवानिवृत्त सामान्य ड्यूटी जे सी ओ एवं अन्य पद; रेलवे द्वारा समय-समय पर आयोजित की जाने वाली परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर; रेलवे पुलिस में आरक्षी, उपनिरीक्षक एवं निरीक्षक के पद पर नियुक्त हो सकते हैं। इसी के साथ सेना के सेवानिवृत्त लिपिक; टिकट निरीक्षक, कम्पूटर ऑपरेटर, लेखा लिपिक एवं टिकटिंग जैसे कार्यों के लिए आवेदन कर सकते हैं। सेना के सिग्नल कोर के सेवानिवृत्त सैनिक रेलवे में भर्ती होकर रेलवे की सिग्नल व्यवस्था को अच्छी प्रकार से सम्भाल सकते हैं।

(ञ) डाक विभाग में सेवा के अवसर - सेना के सेवानिवृत्त लिपिक एवं सैन्य डाक सेवा विभाग के सेवानिवृत्त सैन्यकर्मी; सरकार द्वारा सेवानिवृत्त सैनिकों को दिये जाने वाले आरक्षण के आधार पर आयोजित की जाने वाली प्रतियोगी परीक्षाएं उत्तीर्ण कर; डाक विभाग के अनेक पदों पर प्रतिस्थापित हो सकते हैं।

(ट) रोडवेज/ परिवहन में सेवा के अवसर - सेना से सेवानिवृत्त हुए सामान्य ड्यूटी एवं अन्य किसी भी कोर अथवा किसी भी इन्फेंट्री रेजिमेंट के प्रशिक्षित ड्राइवरों के लियें; किसी भी राज्य के परिवहन विभाग/ रोडवेज़ डिपार्टमेंट में सेवा के अनेक अवसर उपलब्ध हैं। कोई भी

ड्राइवर के रूप में प्रशिक्षित पूर्व सैनिक; जो अपने आपको इस योग्य समझता है। अपने-अपने राज्य के परिवहन विभाग में पूर्व सैन्यकर्मियों को दिए जाने वाले आरक्षण के आधार पर आवेदन कर; अपने आप को परिवहनकर्मी के रूप में प्रतिस्थापित कर सकता है।

(ठ) सरकारी/अर्ध सरकारी एवं गैर-सरकारी शैक्षिक संस्थाओं में सेवा के अवसर_- सेना के सेवानिवृत्त जे सी ओ एवं अन्य पदों के लियें सरकारी/ अर्ध सरकारी एवं गैर-सरकारी शैक्षिक संस्थानों में सहायक अध्यापक एवं पुस्तकालय प्रभारी के अनेक पद सेना के सेवानिवृत्त सैनिकों के आरक्षण के आधार पर उपलब्ध हैं। सैन्य शिक्षा कोर के जे सी ओ व अन्य पद; सहायक अध्यापक एवं पुस्तकालय प्रभारी बन सकते हैं। यदि सेना से सेवानिवृत्त अन्य किसी ट्रेड के सैनिक ने सैन्य सेवा में रहते हुए; सैन्य आदेश संख्या 156/60 जो बाद में सैन्य आदेश संख्या 89/80 में सशोधित द्वारा; अपने कमान अधिकारी से अनुमति लेकर; अथवा इंडियन आर्मी एजुकेशन प्रोग्राम के तहत बैचलर ऑफ एजुकेशन अथवा बैचलर ऑफ लाइब्रेरी साइंस की उपाधि प्राप्त की है; तो वह सेवानिवृत्त सैनिक उक्त पदों हेतु आवेदन करके अपने भविष्य को सुरक्षित कर सकता है।

(ड) शारीरिक शिक्षा अनुदेशक एवं योगा शिक्षक के रूप में सेवा के अवसर - सेना से सेवानिवृत्त सेना के शारीरिक शिक्षा अनुदेशक; सरकारी/अर्ध सरकारी एवं गैर-सरकारी शैक्षिक संस्थानों में आवेदन कर; शारीरिक शिक्षा अनुदेशक एवं योगा अनुदेशक बन सकते हैं। वह चाहें तो अपने स्वयं

के योगा अभ्यास केंद्र स्थापित करके अपनी कौशल प्रवीणता से अपने परिवार के लिए एक अच्छे भविष्य का निर्माण कर सकते हैं। इसके अतिरक्त वह यू ए ई, गल्फ, अमेरिका एवं यूरोप जैसे देशों के अन्तर्राष्ट्रीय विद्यालयों में योगा अनुदेशक बन कर अपनी योग्यता द्वारा भारतीय संस्कृति को विश्व पटल पर सुशोभित कर सकते हैं।

(ढ) प्राइवेट डिटेक्टिव के रूप में सेवा के अवसर - वर्तमान में देश के विभिन्न मेट्रोपोलिटन शहरों में प्राइवेट डिटेक्टिव कम्पनियाँ बहुत तेजी से विकसित हो रही हैं। उनका लाभ आज बड़ी-बड़ी कम्पनियां एवं पुलिस विभाग तक ले रहा है। सैन्य सेवा से सेवानिवृत्त इंटेलीजेंस कोर के जे सी ओ एवं अन्य पद इन प्राइवेट डिटेक्टिव कम्पनियों में अपनी सेवाएँ प्रदान कर सकते हैं। क्योंकि इंटेलिजेंस कोर के जे सी ओ एवं अन्य पदों को सेना में गुप्त सूचनाएँ एकत्र करने का कठिन प्रशिक्षण प्राप्त होने के साथ-साथ इसका बहुत लंबा अनुभव होता है।

(ण) चार्टर्ड एकाउंटेंट के रूप में सेवा के अवसर - सैन्य सेवा से सेवानिवृत्त अकाउंट क्लर्क; जिन्होंने अपनी पूरी सेवा के दौरान सैन्य यूनिटों, रेजिमेंटों एवं कोरों आदि के लेखा कार्यालयों में विभिन्न लेखा-जोखा को सम्भालते हुए अकाउंट क्लर्क के कर्तव्य को निभाया है। इसी के साथ वह सैनिक एवं अकाउंट क्लर्क; जिन्होंने सैन्य सेवा के साथ-साथ इंडियन आर्मी एजुकेशन प्रोग्राम इग्नू के तहत बी कॉम, एम कॉम, बी सी ए अथवा एम सी ए आदि उपाधियां प्राप्त की हैं। चार्टर्ड एकाउंटेंट के रूप में विभिन्न व्यवसाय, फर्मों, संगठनों, सरकारी एवं अर्ध सरकारी

कम्पनियों को अपनी सेवाएँ प्रदान कर अपने परिवार के सपने को पूरे कर सकते हैं।

(त) ऑनलाइन एयर टिकिट बुकिंग क्लर्क के रूप में सेवा के अवसर - वर्तमान में कई ऑनलाइन टिकिट बुकिंग कंपनियाँ; सेवानिवृत्त सैन्यकर्मियों एवं उनके आश्रितों को विभिन्न शहरों में स्थापित अपनी कम्पनी के टिकिट बुकिंग आउटलेट एवं काउंटर पर टिकिट बुकिंग क्लर्क के रूप में रोजगार के अवसर उपलब्ध करा रही हैं। जिसमें मुख्यत: उड़ चलो, सैनिक उड़ान एवं बामर एवं लारी जैसी ऑनलाइन टिकिट बुकिंग कंपनियाँ हैं।

(थ) उपरोक्त सेवा विकल्पों के साथ-साथ सेवानिवृत्त सैन्यकर्मियों के द्‌वितीय कैरियर/ व्यवसाय के अन्य बहुत से विकल्प खुले हुए हैं। जिनमें जिला सैनिक बोर्ड, स्टेशन हेडक्वार्टर सी एस डी, यूनिट रन कैंटीन, ई सी एच एस, दर्शनीय स्थलों के रख रखाव, ग्रिफ, बी आर ओ (बॉर्डर रोड ऑर्गेनाइजेशन), एम ई एस, सैनिक वेलफेयर एवं सैनिक आराम घरों के रख रखाव आदि सेवा के अवसर सेवानिवृत्त सैन्यकर्मियों के लियें उपलब्ध हैं। नर्सिंग सहायक ने यदि सेना द्‌वारा आयोजित अस्पताल प्रबंधन पाठ्‌यक्रम पूर्ण किया है। तो किसी भी अस्पताल में अस्पताल प्रबंधन सदस्य के रूप में उसकी नियुक्ति हो सकती है।

16. सेवानिवृत्त जे सी ओ एवं अन्य पदों के लियें उपरोक्त सेवा के अवसर उपलब्ध होने के उपरांत भी बहुत से पूर्व सैन्यकर्मी ऐसे होते हैं; जो सेना द्‌वारा उपलब्ध इन सुविधाओं का लाभ नही उठा पाते। महंगाई के इस वर्तमान समय में वह केवल अपनी पेंशन पर निर्भर

होते हैं। उस पेंशन का भी सही ढग से बजट नहीं बना पाने के कारण; वह दयनीय स्थिति में जीवन जीने के लिए मजबूर हो जाते हैं। इसका प्रथम कारण, सेवानिवृत्त जे सी ओ एवं अन्य पदों का समय रहते अपने भविष्य के लिए योजनाओं का निर्माण न कर पाना है; एवं द्वितीय कारण, सरकार द्वारा जारी वर्षों पुरानी योजनाओं का बिना सर्वेक्षण किए लगातार आगे बढ़ाते जाना है।

17. सेवानिवृत्त सैनिकों के विकास की वर्षों पुरानी व्यवस्था को हटा कर विकसित देशों की सेनाओं के समान नई व्यवस्था लागू करने की आवश्यकता - भारतीय सेना, भारत सरकार एवं राज्य सरकारों ने अपने सेवानिवृत्त सैनिको के व्यक्तिगत विकास एवं भविष्य निर्माण हेतु उपरोक्त बहुत सी योजनाओं का समय-समय पर क्रियान्वयन किया है। परन्तु वर्तमान समय में यह सारी योजनाएँ सेवानिवृत्त सैनिकों के लियें "ऊंट के मुँह में जीरा" जैसी साबित होती हैं। इसका कारण हमारे देश में सैनिक जिस आदर एवं सम्मान के हक़दार हैं। वह उन्हें कभी मिल ही नही पाता। जब एक सैनिक देश के लिए लड़ते हुए शहीद हो जाता; तो उस शहीद को देश से भर पूर सम्मान प्राप्त होता है। परन्तु जीवित रहते; उसे वह सम्मान कभी प्राप्त नही हो पाता। भारत में सैनिकों के प्रति पाए जाने वाले दृष्टिकोण, सैनिकों के व्यक्तिगत विकास एवं भविष्य के लिए बनाई गयी व्यवस्था एवं विकसित देशों की सेनाओं के समान नई व्यवस्था को भारतीय सैनिकों के लियें; लागू करने के सुझावों को हम निम्नलिखित प्रकार से देख सकते हैं -

(क) **सेवानिवृत्त सैनिकों के घर एवं संपत्ति को हड़प लेने की घटनाएँ** - हमें समय-समय पर समाचार पत्रों में खबरें पढ़ने के लियें मिलती हैं कि एक सेवानिवृत्त सैनिक के सगे चाचा ने धोखे से उसकी सम्पति हड़प ली; अथवा उसके

पुस्तैनी घर पर उसके पड़ोसी ने कब्ज़ा कर लिया। उसका और उसके परिवार का नाम वोटर लिस्ट और राशन कार्ड से यह कह कर कट दिया गया कि यह व्यक्ति अब यहाँ निवास नही करता है; आदि। क्योंकि सेवा में रहते हुए एक सैनिक के पास इतना समय नही होता कि वह अपने घर और सम्पति की देखभाल अच्छी प्रकार से कर सके; अथवा स्वयं से सम्बन्धित दस्तावेजों का नवीनीकरण करवा सके। एक दिन जब वह सैन्य सेवा समाप्त कर अपने घर लौटता है; तो पाता है कि उसके अपने परिवार के लोगों ने उसे धोखा देकर; उसका अपना घर और संपत्ति हड़प ली। जब वह अपनी शिकायत लेकर पुलिस अथवा प्रशासनिक अधिकारियों के पास जाता है; तो उसकी शिकायत पर अधिकारियों द्वारा कोई ठोस कार्यवाही नही की जाती। ऐसे में एक सैनिक सेवानिवृत्ति उपरांत शांति से अपने परिवार का प्रबंधन करे? अथवा अपने घर और संपत्ति को वापस पाने के लिए अदालतों के चक्कर लगाये? सेवानिवृत्ति उपरांत उसके जीवन में इस प्रकार के अनेक बड़े और गम्भीर प्रश्न चिन्ह खड़े हो जातें हैं?

(ख) **सेवानिवृत्त सैनिकों के साथ अपमान की घटनाएँ** - समय-समय पर सेवानिवृत्त सैनिकों के अपमान की खबरें भी समाचार-पत्रों एवं समाचार चैनलों पर प्रकाशित होती रहती हैं। पिछले दिनों समाचार चैनलों, समाचार पत्रों एवं सोशल मिडिया पर एक खबर छायी रही कि एक एस डी एम ने एक सेवानिवृत्त कर्नल साहब के साथ मार-पीट करने के साथ उनके ऊपर; अपने पद का दुरुपयोग करते हुए जाति सूचक शब्दों का प्रयोग करने का झूठा मुकदमा भी

दर्ज करा दिया। एक सैन्य अधिकारी जिसने धर्म और जाति से ऊपर उठकर केवल देश सेवा को सर्वोपरि माना; सेवानिवृत्त उपरांत उसके ऊपर इस प्रकार का आरोप उसे; किस प्रकार का अपमान और पीड़ा देता होगा। इस अपमान और पीड़ा को भुक्त-भोगी ही अच्छी प्रकार से समझ सकता है। इसलिए सेना मुख्यालय को चाहिये; कि वह अपने सेवानिवृत्त सैनिकों के लियें देश की संसद में विधेयक पारित कर कठोर से कठोर कानून बनाने की सिफारिश करे। जिस से सेवानिवृत्त सैनिकों के मूलभूत अधिकारों की रक्षा हो सके; और सेवानिवृत्ति उपरांत एक सैनिक सम्मान के साथ अपने परिवार का भरण-पोषण कर सके।

(ग) **सेवानिवृत्त सैनिकों के लियें विकसित देशों की सेनाओं के समान नई व्यवस्था लागू करने की आवश्यकता** - विकसित देशों जैसे अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ़्रांस, रूस, जापान, जर्मन, इस्राइल एवं सिंगापूर आदि देशों की सेनाओं में सेवा सेवानिवृत्त सैनिकों के लिए बहुत सी अत्याधुनिक मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध हैं। जैसे सेना में भर्ती होने के बाद उनके परिवारों को सरकार का पूर्ण संरक्षण प्राप्त होता है। आम जनता द्वारा उनको और उनके परिवारों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। हमारे देश में इसके लिए जनमानस की सोच में परिवर्तन लाना अति अवश्यक है। इस मानसिक परिवर्तन के आभाव में यह असंभव सा प्रतीत होता है। सरकार द्वारा इस हेतु जन जागृति अभियान चलाया जाना चाहिए। यदि हम विदेशों में देखे; तो देखते हैं कि यदि कोई सैनिक एअरपोर्ट अथवा रेलवे स्टेशन पर दिखाई देता है; तो वहां पर उपस्थित आम

जनता उस सैनिक का करतल ध्वनी से स्वागत करती हैं; लेकिन हमारे देश में ऐसी कोई परम्परा नही है। हमारे देश के माननीय प्रधानमंत्री मोदी जी एक मंच से ऐसी परम्परा बनाने का आह्वान भी कर चुके हैं। इसके उपरांत भी यदि एक सैनिक की ट्रेन में सीट कन्फर्म नही होती है; तो कोई भी आम जन उसे अपनी सीट पर बैठेने की अनुमति तक नही देता; अंततः या तो उसे टॉयलेट के पास बैठ कर यात्रा पूरी करनी पड़ती है; या फिर टिकिट कंडेक्टर को अतिरिक्त पैसा देना पड़ा है। कभी-कभी तो उसे टिकिट कंडेक्टर द्वारा अपमानित भी किया जाता है। परन्तु विकसित देशों की सेनाओं के सैनिक अथवा सेवानिवृत्त सैनिक जब चाहें; यात्रा करें। उन्हें और उनके परिवारों को कन्फर्म सीट देने के लिए; उन देशों के संविधान एवं कानून द्वारा इसकी व्यवस्था की गयी है। सरकार द्वारा कानून बना कर हमारे देश में भी ऐसी व्यवस्था लागू की जानी चाहिये। ऐसा कानून बनाये जाने के लिए; सेना मुख्यालय द्वारा सरकार से सिफारिश करके अनुरोध किया जाना चाहिए।

(घ) हमारे देश एवं राज्यों के उपरोक्त कुछ ही विभागों में पिछले सत्तर वर्षों से सेना के सेवानिवृत्त सैनिकों के लियें; द्वितीय कैरियर के रूप में छोटी-छोटी नौकरियों में आरक्षण देने की व्यवस्था की गयी है; परन्तु यदि हम अमेरिका एवं इंग्लैण्ड आदि विकसित देशों में किसी भी पद; चाहें वह किसी कार्यालय में चपरासी का पद हो, प्राथमिक विद्यालय के सहायक अध्यापक का पद, पुलिस विभाग के वरिष्ठ अधिकारी का पद, प्रशासनिक विभाग के वरिष्ठ अधिकारी का पद अथवा किसी विश्वविद्यालय में

किसी भी विषय के प्रोफ़ेसर का पद ही क्यों न हो; के लिए आवेदन करते हैं। तो देखते हैं; कि आवेदन फॉर्म में अनिवार्य रूप एक कॉलम अवश्य पाया जाता है। जिसमें लिखा होता है कि "क्या आप यू एस आर्मी अथवा ब्रिटिश आर्मी के (Veteran) पूर्व सैनिक हैं? परन्तु हमारे देश के संविधान एवं कानून में ऐसी कोई व्यवस्था नही पायी जाती। हमारे देश में 80% सेवानिवृत्त जे सी ओ एवं अन्य पद सुरक्षा एजेंसियों अथवा बैंकों में सुरक्षाकर्मी के रूप में सेवा करते हुए पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त पुलिस, प्रशासनिक सेवाओं में वरिष्ठ अधिकारियों के पद पर इनकी संख्या नगण्य सी ही है। सम्पूर्ण देश में पाए जाने वाले महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में हमें केवल 0.05% ही सेना से सेवानिवृत्त जे सी ओ एवं अन्य पद; अस्सिस्टेंट प्रोफ़ेसर, असोसिएट प्रोफेसर अथवा प्रोफ़ेसर के पद पर आसीन मिलेंगे। क्योंकि सरकार, संविधान, उच्च शिक्षा आयोग एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा उक्त उच्च पदों पर सेवानिवृत्त सैनिकों के लिए किसी प्रकार के आरक्षण की व्यवस्था नही की गयी है। जैसा की हम जानते हैं कि सेवा के दौरान जे सी ओ एवं अन्य पदों की आयु सेवानिवृत्ति तक अधिक बढ़ जाती है। इस कारण भी वह अन्य उच्च सेवाओं हेतु अयोग्य हो जाते हैं। यदि जे सी ओ एवं अन्य पदों को; इन उपरोक्त उच्च पदों हेतु आवेदन के लिए आयु में सरकार द्वारा कुछ छूट/ रियायत प्राप्त हो जाये; तो सेवानिवृत्त जे सी ओ एवं अन्य पद भी अपनी योग्यता द्वारा; इन उच्च पदों जैसे पुलिस, प्रशासनिक एवं प्रोफ़ेसर आदि पदों पर आसीन हो सकते हैं।

सैन्य मुख्यालय जिस प्रकार सैनिकों के आश्रितों को होटल मैनेजमेंट के पाठ्यक्रम आदि करवाती है; उसी प्रकार पूर्व सैनिकों (ट्रेडमैन) के लियें भी होटल मैनेजमेंट में हॉउस कीपिंग जैसे पाठ्यक्रमों को जोड़ा जाना चाहिये; जिस से सेना के पूर्व सैनिक (हॉउस कीपिंग, ट्रेडमैन) भी उनसे सम्बन्धित होटल मैनजमेंट के पाठ्यक्रमों को पूरा करके अपने भविष्य को उज्ज्वल बना सकें।

(ङ) सैन्य मुख्यालय को चाहिए कि वह अन्य विकसित देशों की सेनाओं के समान सेवानिवृत्त सैनिकों के विकास एवं भविष्य निर्माण हेतु सरकार से सिफारिश द्वारा अनुरोध करे; जिससे हमारी सेना के सेवानिवृत्त जे सी ओ एवं अन्य पदों के लिए भी अन्य प्रतिष्ठित सेवाओं में नौकरियों के और अधिक अवसर प्राप्त हो सकें। यदि सरकार उक्त अनुरोध को स्वीकार कर सेवानिवृत्त सैनिकों के हितों के लिए उपलब्ध सत्तर वर्ष पुरानी व्यवस्था का विश्लेषण करके विकसित देशों के समान नई व्यवस्था को लागू कर देती है; तो वह नई व्यवस्था सेवानिवृत्त सैनिकों के व्यक्तित्व के विकास एवं भविष्य निर्माण के लियें मील का पत्थर साबित होगी।

18. निष्कर्ष - निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि हमारी भारतीय सेना एवं सरकार द्वारा सेवानिवृत्त जे सी ओ एवं अन्य पदों के द्वितीय कैरियर/ व्यवसाय के लियें उपरोक्त बहुत सी योजनाओं का निर्माण किया गया है। एक सेवानिवृत्त सैनिक आज सम्मान का जीवन जीना चाहता है। यदि उसे समाज के द्वारा वह सम्मान प्राप्त नही होता है; जिसकी वह समाज से अपेक्षा करता है; अथवा

उसकी संपत्ति को कोई दूसरा हड़प जाता है। तो उसे कहीं न कहीं अपने जीवन से निराशा होती है। यदि वह अपनी योग्यता के अनुसार द्वितीय कैरियर की चाह रखता है; और यदि वह कैरियर उसे अपनी योग्यता के अनुसार प्राप्त नही होता; तो उसके मन को बहुत पीड़ा पहुँची है। इसलियें सरकार को चाहिए कि वह पूर्व सैनिकों को दी जाने वाली पुरानी योजनाओं एवं सुविधाओं का विश्लेषण करे। यदि वह सुविधाएँ एवं योजनाएँ वर्तमान समय में सेवानिवृत्त सैनिकों के हितों की रक्षा नहीं करती; और न ही उन्हें संरक्षण प्रदान करती हैं। तो ऐसी योजनाओं में सुधार एवं परिवर्तन करके इंग्लैण्ड, अमेरिका, फ्रांस, रूस, इस्राइल एवं सिंगापूर जैसे देशों के समान नई व्यवस्था एवं कानून लागू किया जाना चाहिए; साथ ही समय-समय पर सैन्य मुख्यालय द्वारा अलग-अलग विषयों पर अपने सेवानिवृत्त सैनिकों के हितों एवं उनके विकास एवं भविष्य निर्माण हेतु सरकार को सिफारिशें भेजी जानी चाहिये। इसी के साथ अन्य विकसित देशों के समान; हमारे देश के नागरिक भी अपने सैनिकों का सम्मान करें। इसके लिये राष्ट्रवादी जन जागरण द्वारा जनमानस की सोच में परिवर्तन लाना अति आवश्यक है। सरकार के साथ-साथ सभी राजनीतिक दलों एवं मीडिया द्वारा एक-मत और एक-मन होकर अपने सैनिकों के सम्मान हेतु पश्चिमी देशों के समान हमारे देश के माननीय प्रधानमंत्री के आह्वान पर एक नई परम्परा स्थापित की जानी चाहिए।

हिंदी-तमिल, तमिल-हिंदी अनुवाद परंपरा और प्रदेय

डॉ, राजरत्नम
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिंदी विभाग
सेंट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ़ तमिलनाडु
तिरुवरुर (तमिलनाडु)
ईमेल : rajaretnampdkt@gmail.com

सब प्रकार के कार्यों में समान रूप से भाग लेने का अधिकार तभी सार्थक माना जाता है, जब उनके साथ उनकी भाषा के माध्यम से संपर्क किया जाए। इससे बहुभाषिकता की स्थिति उत्पन्न होती है और उसके संरक्षण की प्रक्रिया में अनुवाद कार्य का आश्रय लेना अनिवार्य हो जाता है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न राष्ट्रों के बीच राजनीतिक, वैज्ञानिक साहित्यिक और सांस्कृतिक स्तर पर बढ़ते हुए आदान-प्रदान के कारण अनुवाद की अनिवार्यता महत्ता की नई चेतना प्रबल रूप से विकसित होती हुई दिखती है। उत्तर आधुनिक युग में अनुवाद की महत्ता व उपादेयता को विश्वभर में स्वीकारा जा चुका है। वैदिक युग में पुन:कथन से लेकर आज के ट्रांसलेशन तक आते-आते अनुवाद अपने स्वरूप और अर्थ में बदलाव लाने के साथ-साथ अपने बहुमुखी व बहुआयामी प्रयोजन को सिद्ध कर चुका है। प्राचीन काल में स्वांत: सुखाय माना जाने

वाला अनुवाद-कर्म आज संगठित व्यवसाय का मुख्य आधार बन गया है। आज विश्वभर में अनुवाद की आवश्यकता जीवन के हर क्षेत्र में किसी-न-किसी रूप में अवश्य महसूस की जा रही है और इस तरह से अनुवाद आज के जीवन की अनिवार्य आवश्यकता बन गई है। बीसवीं सदी के अवसान और इक्कीसवीं सदी के स्वागत के बीच आज जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जहाँ पर हम चिंतन और व्यवहार के स्तर पर अनुवाद के आग्रही न हों।

हमें ज्ञात है, अनुवाद के क्षेत्र में हिंदी, तमिल तथा तमिल-हिंदी की परंपरा व्यापक है। तमिल भाषा का प्राचीन और वर्तमान का साहित्य बहुत समृद्ध है और दूसरी शताब्दी से पाँचवी शताब्दी तक का तमिल साहित्य, संघ साहित्य के नाम से पुकारा जाता है एवं विविध विषयों (मुख्यत: श्रृंगार और वीर रसों) पर रचित फुटकर पद्यों के रूप में मिलता है। इस काल की कुछ लंबी कविताएँ पत्तुप्पाट्टु (गीतिदशक) नाम से संगृहीत है। पाँचवी शताब्दी में ही प्रसिद्ध लक्षण ग्रंथ तोल्काप्पियम की रचना हुई और छठीं में तमिलवेद के नाम से विख्यात महान नीति ग्रंथ तिरुक्कुरल की। छठीं से नवीं शताब्दी तक तमिल देश में भक्ति का प्रबल प्रवाह उमड़ा एवं आलवार (वैष्णव) तथा नायनमार (शैव) भक्तों ने महान भक्ति काव्यों का सृजन किया। शैव पदावली का संग्रह 'तिरुमुरै' कहलाता है जिसमें चार सहस्त्र पद हैं (नालायिरम = चार हजार)। नवीं शताब्दी में शिलप्पधिकारम (=नूपुर कथा) नामक विश्व विख्यात महाकाव्य की रचना के साथ महाकाव्यकाल का प्रारंभ होता है, जिसकी चरम परिणति बारहवीं शताब्दी में कंबरामायण की रचना के साथ होती है। इस काल की विशिष्ट उपलब्धि पंच महाकाव्य एवं पंच लघु काव्यों की दृष्टि के रूप में दीख पड़ती है। शुद्ध काव्य की दृष्टि से महाकवि कंबन प्रणीत रामायण तमिल का मूर्धन्य

महाकाव्य है। यद्यपि भारत की विविध प्रादेशिक भाषाओं में अपना-अपना रामायण विख्यात् हैं तथापि महर्षि वाल्मीकि के डॉ. चंद्रकांत मुदलियार ने काशी विश्वविद्यालय के लिए जो किया है वह दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा द्वारा प्रकाशित है।

डॉ. पी जयरामन का तमिल वैष्णव भक्ति आन्दोलन एवं साहित्य, सुब्रमण्य भारती तथा महाकवि निराला के काव्यों में अनुस्यूत राष्ट्रीय चेतना पर शोध कार्य उल्लेखनीय है।

डॉ. शेषन ने वृंदावनलाल वर्मा एवं कल्कि के ऐतिहासिक उपन्यासों की तुलना पर कार्य किया है। कंवन एवं तुलसी के नारी पात्र में भी तुलनात्मक कार्य इन्होंने किया है। तमिल एवं हिंदी श्रृंगार काव्य तुलना संस्कृति मंत्रालय, केन्द्र सरकार के Senior fellowship के अधीन में शेषण जी ने कार्य किया है

डॉ. पी. के बालसुब्रमण्यम, शिवमंगल सिंह सुमन के काव्यों में तथा डॉ. सुन्दरम ने मीरा और आंडाल पर तुलनात्मक कार्य किया।

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के उच्च शिक्षा एवं शोध संस्थान द्वारा भी हुए अनेक तुलनात्मक अध्ययन का कार्य शोध के जरिये हुए हैं।

तमिल हिंदी भक्ति साहित्य पर पी.एच.डी. की उपाधि मिली। तमिल साहित्य, संस्कृति एवं इतिहास पर एम. शेषन को शोधकार्य के लिए डी. लिट उपाधि मिली जिसका शीर्षक है।

तमिल सामाजिक इतिहास (1950 तक) साथ ही तोलकाप्पियम से लेकर भारती पर लिखे 35 ग्रन्थें डॉ. शेषन जी द्वारा हिंदी में अनूदित और 150 लेख भी विभिन्न हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशित है। संत कवयित्री मीराबाई एवं कृतित्व भी तमिल में इनके द्वारा अनुवाद किया गया है।

विगत सौ साल के हिंदी प्रचार-प्रसार के परिणामस्वरूप यहाँ तमिलनाडु में हिंदी और तमिल के मध्य, साहित्यिक क्षेत्र में हुए आदान-प्रदान के कार्यों में अभिरुचि जगी। अनेक हिंदी प्रेमी तथा मातृभाषा प्रेमी विद्वानों ने अपनी मातृभाषा तमिल साहित्य, संस्कृति, इतिहास आदि को हिंदी के पाठकों तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण काम किया है और आज भी निरंतर यह कार्य चालू है। आज तक हुए इस क्षेत्र के कार्यों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

तमिल साहित्य के क्रमबद्ध इतिहास का हिंदी अनुवाद सुप्रसिद्ध तमिल विद्वान डॉ. मु. वरदराजन द्वारा साहित्य अकादमी के लिए तमिल में लिखे तमिल साहित्य को इतिहास का हिंदी अनुवाद डॉ. एम. शेषन ने किया है जो साहित्य अकादेमी द्वारा प्रकाशित है।

तमिल के सर्वप्राचीन उपलब्ध संगम-साहित्य के कतिपय ग्रन्थों का हिंदी अनुवाद कुछेक हिंदी विद्वानों के सम्मिलित प्रयास द्वारा किया गया। हिंदी अनुवाद तंजाऊर तमिल विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित है।

संगम युगीन ''पुरनानूरू'' कुछ कथाओं का हिंदी अनुवाद ''पुरनानूरू की कथाएं'' नाम से प्रकाशित है, जिसके अनुवादक है - डॉ. पी. जयरामन।

तिरुवल्लुवर के तिरुक्कुरल में तीन-चार हिंदी अनुवाद हुए हैं। उनमें उल्लेखनीय है श्री एम.जी. वेंकट कृष्णन जी का अनुवाद। इस अनुवाद की विशेषता यह है कि यह हिंदी के दोहा छन्द में अनूदित है। पोल्लाच्ची महालिंगम द्वारा प्रकाशित है।

जमदग्नि नामक हिंदी विद्वान तथा कवि जो संस्कृत, तमिल के भी अच्छे ज्ञाता एवं कवि ने लगभग सत्तर साल पूर्व

हिंदी के एकमात्र शैव साहित्य ग्रंथ ‘कामायनी’ का काव्यानुवाद ‘कामन मकक’ के नाम से किया था।

रामचरितमानस का संपूर्ण तमिल अनुवाद डॉ. एम. शेषन ने किया है। वीरेन्द्र सिंह शोके नामक हिंदी कवि ने तमिल सीखकर बडे परिश्रम एवं निष्ठा से तमिल के प्रथम प्रबंध काव्य ‘शिलप्पदिकारम’ का हिंदी में काव्यानुवाद प्रस्तुत किया है।

डॉ. एस. एन. गणेशन एवं डॉ. शंकर राजू नायडू के संयुक्त प्रयास से शिलप्पदिकारम का काव्यानुवाद मद्रास विश्वविद्यालय के प्रकाशन द्वारा हुआ डॉ. एस. एन गणेशन ने मणिमेखलै का हिंदी काव्यानुवाद भी किया है।

डॉ. एन. वी. राजगोपालन ने कंब रामायण का हिंदी गद्यानुवाद प्रस्तुत किया है जो बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पट्ना से प्रकाशित हुआ। तमिल के राष्ट्रकवि सुब्रमण्य भारती के कतिपय राष्ट्रीय गीतों एवं कविताओं का काव्यानुवाद जो भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली से भारती की जन्मशताब्दी के अवसर पर प्रकाशित है।

तमिल भक्ति साहित्य एवं हिंदी भक्ति साहित्य का तुल्नात्मक शोध कार्य का विवरण निम्न प्रकार है। आदि काव्य के बाद भारत में दो ही रामायणों को सर्वाधिक गौरव प्राप्त हुआ। उत्तर में ‘रामचरित मानस’ को और दक्षिण में ‘कंब रामायण’ को। इन दोनों ग्रंथों का तुलनात्मक अध्ययन (हिंदी में) की उपादेयता एवं महत्व स्वयम सिद्ध है।

हिंदी और तमिल भाषा भाषियों के महान भावात्मक ऐक्य-घटन अनुवाद के द्वारा हुआ है जिसके उदाहरण हम निम्न प्रकार देख पाएँगे। समकालीन कविताओं के रूप में सुब्रमण्य भारती की कविताएं एवं गद्य का अनुवाद कृ. स्वामीनाथ ने हिंदी में किया है।

'भारती' की महान आत्मा भौगोलिक सीमाओं से बन्धकर नहीं रही। वे भारतवर्ष की संपूर्ण संलिष्ट संस्कृति के प्रतिबिंब थे जो सार्वभौमिक तत्वों का प्रकट करती थी।

उनकी एक कविता का भाव इस प्रकार है:

'भारत में समानता का अब लव युग आया है। छल-प्रपंच से पूर्णमुक्ति का युग आया है। सज्जन की महिमा गाने का युग आया है। दुर्जन विनाश का अब सत्युग आया है।

हम नाचेंगे और पल्लु गायेंगे

आजादी पाई है, हम खुशी मनायेंगे ।[2]

तिरुक्कुरल को हिंदी में अनुवाद किया है श्री वन्मीकनाथ ने जोमूल के अनुरूप पद्य में किया। कहीं कहीं हिंदी भाषी राज्यों में स्कूल पाठ्यक्रम में भी रखा गया है। इस ग्रन्थ में 'तिरुक्कुरल' का मूल तमिल में और उसका लिप्यंतर नागरी लिपि में दिया गया है। दोहों के साथ (कुरल) कठिन शब्दों की टिप्पणी तथा तिरुक्कुरल हिंदी कवियों की कविताओं का अनुवाद भी हुआ है।

हिंदी, तमिल के आदान-प्रदान के कार्य में द.भा.हि.प्र.सभा का योगदान प्रशंसनीय है। महात्मा गांधी जी ने 1918 में इंदौर के अधिवेशन में दक्षिण में हिंदी प्रचार योजना बनाकर गांधी जी ने अपने पुत्र देवदास गांधी को दक्षिण भारत में प्रथम हिंदी प्रचारक के रूप में भेजकर हिंदी साहित्य सम्मेलन के माध्यम से 1927 में द.भा.हि.प्र.सभा, मद्रास का नाम दिया जहाँ शुरु में ''हिंदी पत्रिका'', ''दक्षिण भारत'', (द्विमासिक) पत्रिका स्वाधीनता के पूर्व जो कुल नौ पत्रिकाएं प्रकाशित होती थीं जिनके जरिए तमिल भाषी एवं अन्य भाषा-भाषियों ने अपनी छोटी-मोटी कविता, कहानियाँ, निबंध आदि का अनुवाद करने लगे।

हिंदी तमिल के आदान-प्रदान के कार्य में श्रीनिवासशास्त्री, आक्कूर अनंताचारी, श्री. अंबुजांबाल, शिवरामशर्मा, महालिंगम, शारंगपाणी, शौरिराजन, सुब्रमण्यन विष्णुप्रिया, टी.ए.के कण्णन, रामसामी डॉ. श्रीधरन, टी.एस. राघवन, मा सुमतीन्द्र आदि के नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

डॉ. पी. के. बाल सुब्रमणियन, इंदिरा पार्थसारथी, कोयमूत्तूर ललिता, पोल्लाच्ची, ईरोड अन्बुमणि आदि नामों का भी सादर उल्लेख किया जा सकता है। उपर्युक्त विद्वान एवं विदुषियों के जरिए कविता, कहानी, एकांकी, विचारलेखन के साथ सभी प्रकार के पुराने और नई विधाओं में काव्य का भी सृजन हुआ है। जिसके कारण तमिल तथा हिंदी साहित्य समृद्ध हुए।

कुछ विद्वान हिंदी प्रदेश के होते हुए भी उनका जन्म, पढ़ाई, पेशा और निवास स्थान मद्रास में होने के नाते अनुवाद के क्षेत्र में उनका योगदान भी तमिलनाडु के प्रसिद्ध काव्यों को हिंदी में अनुवाद करके तमिल भाषा का प्रचार में उल्लेखनीय है।

श्रीमति अन्बुमणि ने कण्णदासन के अर्तमुल्ल इन्दुमतम, ''ओरू कुलन्दै अलुकिरतु'' और ''कड़क्सी पक्कम'' और एक उपन्यास का हिंदी में अनुवाद किए हैं।

डॉ. सुंदरम ने सुब्रमण्य भारती की राष्ट्रीय कविताएँ, श्रीहित हरिवंश का चौरासी पद भारतीय कहावत कोश, तिरुवल्लुवर, तिरुक्कुरल, तिरुवासगम, अर्धनारीश्वर एक ही रक्त, बिन्दु सिंधु की ओर, नट्पिनै और राधा आदि ग्रंथों का अनुवाद किया है।

डॉ. पी. के. बालसुब्रमणियन ने त्रिभाषा कोश, जी कांची, अचेयवाणी, शिवमंगल सिंह सुमन आदि का अनुवाद किया है।

डॉ. एल. वी के श्रीधरण साहित्यिक तमिल संस्थान की प्रार्थना स्वीकार कर अपने समकालीन हिंदी प्राध्यापकों के साथ

मिलकर तमिल भाषा के संघम साहित्य की पुस्तकों का अनुवाद गद्य रूप में किया। फिर केंद्रीय साहित्यिक तमिल संस्थान के लिए संघम साहित्य का अनुवाद पद्य रूप में भी किया। अलावा इनके आपने कण्णदासन रचित पुस्तक का 'सार्थक हिन्दू धर्म नाम से अनुवाद किया। कांची शंकराचार्य की पुस्तक का हिंदी में अनुवाद कर अध्यात्म पक्ष में भी अपना योगदान निरूपित किया। इतना ही नहीं, आप प्रशासनिक हिंदी पुस्तकों का भी अनुवाद करने में सिद्धहस्त रहे।

जैसे- कबीरदास, कालिदास, देव, रहीम तुलसीदास, मैथिलीशरण गुप्त, महादेवी वर्मा, गिरिधर शर्मा 'नवरत्न', बालकृष्ण शर्मा नवीन, तैत्तरीय उपनिषद, श्रीमद् भगवतगीता आदि।

रहीम के एक दोहे का तुलना तिरुवल्लुवर के कुरल के साथ इस प्रकार की गई है-

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ मांगन जाहिं ।
उनते पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं।। (रहीम)
नहीं शब्द सुन जायगी याचक जन की जान।
गोपन करते मनुज के, कहाँ छिपेंगे प्राण।।

उक्त 'कुरल' का अनुवाद तमिल से हिंदी में सुंदर ढंग से हुआ है। नेशनल बुक ट्रस्ट के जरिए निम्नलिखित किताबों का अनुवाद हुआ है।

प्रेमचन्द कदैगल नाम से प्रेमचन्द की कहानियों को तमिल में शौरिराजन ने, फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों को ''फणीश्वरनाथ रेणु कदैगल'' नाम से डॉ. एच. बालसुब्रमणियन ने अमृतलाल नागर की कहानियों को (बूंद और समुद्र) तुलियुम समुद्रमुम नाम से तुलसी जेयरामन ने, श्री लालशुक्ल के 'रागदरबारी' को 'दरबारी रागम' नाम

से सरस्वती रामनाथ ने, भगवतिचरण वर्मा के 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास को ''मरैन्द काट्चिकल'' नाम से एन.वी. राजगोपालन ने, कृष्णा सोबती की ''मित्रो मर जानी'' उपन्यास को ''मित्रावंती'' नाम से लक्ष्मी विश्वनाथन ने, पन्नालाल पटेल के ''जीवन एक नाटक'' उपन्यास को वालकै ओरु नाडगम नाम से तुलसी जेयरामन ने, राजेन्द्र यादव के ''सारा आकाश'' उपन्यास को ''वानम मुलुवतूम'' नाम से मु ज्ञानम ने, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की पुस्तक ''हिंदी एकांकी'' को ''हिंदी ओरंग नाडगम'' शीर्षक में एन.वी. वेंकटरामन ने, श्री बरसनाथ तिवारी ''कबीर'' नाम की रचना को "कबीर" शीर्षक में श्री पंजाब केसरी ने, देवेन्द्र सिन्हा की तुलसीदास पुस्तक को तुलसीदास नाम से ही एस. रजत ने मिथिलेश्वर की ''उस रात की बात'' कहानी संग्रह को ''अन्ड्रिवु नडन्ददु'' नाम से आनंदम कृष्णमूर्ति ने तमिल भाषा में अनुवाद किया है।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अलावा तमिल भाषा से हिंदी में अशोक मित्रन की ''तरकाल तमिल कदैकल'' को ''आधुनिक तमिल कहानियाँ'' नाम से के.ए जमुना ने श्राजम कृष्णन की ''कुरुँजी का शहद'' को विजयलक्ष्मी सुन्दरराजन ने कुरुंजित्तेन नाम से, जयकांतन के "मारुममुकंगल" को बदलते चेहरे नाम से एन.वी. राजगोपालन ने, जेग सिर्फियन के मन्निकुरल को राबिलिनादन ने बाहर के आदमी नाम से पेरियसामी तूरन की ''करिसलमण'' को ''कालीमाठी नाम से सरस्वती रामनाथन ने, पुदुवै चन्द्रहरि के ''इरुंड वीडु'' को भारत की लोक कथाएं नाम से श्री कैलाश कबीर ने, साहित्य अकादमी प्रकाशन के जरिए गिरिराज किशोर के ''दाई घर'' को मुज्ञानम ने "सदुरंग कुदिरैकल" नाम से, विष्णुप्रभाकर के 'अमृत और विष'' को "अमृतमुम विषमुम" शीर्षक में सरस्वती रामनाथ ने, अमृतलाल नागर के अर्धनारीश्वर को डॉ. सुंदरम ने अर्धनारीश्वर

नाम से, शिवप्रसाद सिंह के नीलाचांद को “नील निला” नाम से एन. शेषन जी ने, भीष्म-साहनी के ‘’तमस’’ को “तमस” नाम से श्री वेंकट स्वामीनाथन ने तमिल में अनुवाद किए हैं।

समकालीन अनुवादकों ने अनुवाद के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। डॉ. पद्मावती, कोवै लगातार उक्त क्षेत्र में लगी रहती हैं। वे कृष्ण नंबी की चट्टै (कुर्ता) कहानी का अनुवाद हिंदी में अनुवाद किया है। वे हरिवंशराय बच्चन और कण्णदासन की कविता में सौन्दर्य चेतना, मैथिलीशरण गुप्त और सुब्रमण्य भारती की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना, हिंदी और तमिल दलित कहानियों में संवेदना, हिंदी और तमिल उपन्यासों का विविध पड़ाव, हिंदी भाषा अनुवाद आज और आगे, हिंदी और तमिल मार्क्सवादी उपन्यासों में प्रमुख नारी पात्र, गोविंद मिश्र के कोहरे में कैद रंग का तमिल में ‘’मूड़पनि तैरैयिल वण्णंकल’’, शिल्पी बालसुब्रमणियन का ओरु ग्रामत्तु नदी का हिंदी में एक ‘’ग्रामीण नदी’’ नाम से, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की चयनित कविताओं के तमिल में ‘’पित्ताहिय नान’’ शीर्षक कविताओं के कालजयी महाकवि अनुवाद, सुब्रमण्य भारतीयार की चयनित कविताओं का हिंदी अनुवाद, भारतीयार से लेकर 2000 तक की सौ कहानियों का पांच संग्रह में हिंदी अनुवाद किए हैं। जिनमें सोधर्मन, विमलालिता-मामल्लन, दमयंती, कॉवेरी, लक्ष्मणपेरुमाल व.वे.सु अय्यर, मेलाण्मै पोन्नुसामी, मौनी, वण्णनिलवन, अ पै नांचिलनाडन आदि कहानिकारों की कहानियाँ शामिल हैं। अलावा इसके सत्तरोत्तर हिंदी तमिल कहानियों में नारी के विविध रूप और हिंदी और तमिल के जनवादी उपन्यासें में प्रतिनिधि नारी पात्र आदि शीर्षकों में कार्य किया है हालांकि तुल्नात्मक अध्ययन होते हुए भी अनुवाद की झलक उक्त विषयों में खूब मिलती है।

डॉ. राजरत्नम का लिखा ''माटी का कर्ज'', ''मण्णुक्कु नम कडन'', ''धीरज स्वास्थ्य के संदर्भ में'', ''धैरियम'', ''दयादृष्टि'', ''इरक्कम'' आदि शीर्षक में तमिल में अनुवाद किया गया। हरिशंकर परसाई की कहानी को ''मोट्टै'' शीर्षक में डॉ. तिल्लैसेल्वी ने तमिल में अनुवाद किया है। इन्होंने वी.जी संताषम की लिखी तमिल कविताओं को मनिदा उन मनक्कण तिरन्दु वै (108 कविताएं) ''मानव अपना मन द्वार खोल दें'' शीर्षक में अनुवाद किया।

डॉ. सरस्वती ने प्रेमचन्द के ''संग्राम'' नाटक को (हिंदी से तमिल में) अनुवाद किया। अलावा इसके साहित्यक अकादमी पुरस्कार प्राप्त राजनारायण की तमिल कहानियों को हिंदी में ''मृग मरीचिका नाम से और भगवानदास के उपन्यास ''मैं पायल'' को ''नान पायल'' नाम से तमिल में, प्रेमचंद की जीवनी इतिहास को ''प्रेमचन्द वाकै वरलायु'' नाम से तमिल में अनुवाद किया है। श्रीमति अमुदा ने शिशंकरी का लिखा ''ओरु मनिदनिन कदै'' उपन्यास को ''सुबह का भूला'' नाम से तमिल में अनुवाद किया ह। डॉ विजयलक्ष्मी ईरोड़ तमिलन्बन की कविता संग्रह ''वेंबिल ओरु शेण्पकम'' को हिंदी में ''नीम की चम्पा'' नाम से और अनेक विचार लेखों का हिंदी में अनुवाद हुआ है। डॉ रोहिणी पाण्डियन ने आर नटराजन की कहानी ''आइशा'', वरलोट्टी रंगसामी की कहानी ''नी एन्नुडन इरुन्दाल'' (अगर तुम मेरे साथ होते तो), मुत्तु तंग अय्यप्पन की ''इन्नोरु महाय'', (और एक एक महाय) नाम से अनुवाद किया है।

डॉ. रमेश (कोवै) ने हिंदी से प्रेमचन्द की गिनी-चुनी कविताओं को तमिल में ''मणवासल'' नाम से, विभिन्न कहानियों का अनुवाद संग्रह ''रजिया'' शीर्षक में और अग्नि शेखर की ''मेरी

प्रिय कविताएं'' को ''इरवोडु इरवाह एन नूरु ग्रामंकलिन पेयरकलै माट्री विट्टारकल'' नाम से तमिल में अनुवाद किए हैं।

डॉ श्रीनिवासन (वरिष्ठ अनुवादक) ने डॉ मुकेश गौतम हास्य व्यंग्य के कवि की तीन किताबों (प्रेम समर्थक हैं पेड, सच्चाइयों के रूबरू, लगातार कविता) का तमिल में अनुवाद एवं डॉ. पतसानी की तीन किताबों (अमरनाथ, यहीं से शुरु और मैं क्यों दिल्ली आया) का अनुवाद तमिल में किया है। इनके अतिरिक्त भारतियार की कविताओं का भी अनुवाद किए हैं।

डॉ. गोपालकृष्णन ने एम.एस उदयमूर्ति के "साधनैक्कोर पादै'' को 'साधना के पथ'' नाम पर हिंदी में 'कदै-कदैयाम' तमिल कहानी संग्रह को हिंदी से तमिल में और अनेक आलेख हिंदी में अनुवाद किए हैं।

इस प्रकार हिंदी-तमिल, तमिल-हिंदी अनुवाद कार्य, उसकी दशा एवं दिशा तीव्रगति प्राप्त कर राजनीतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक स्तर पर बढ़ते हुए आदान-प्रदान के कारण अनुवाद की अनिवार्यता और महत्व की नई चेतना प्रबल रूप से विकसित होती हुई दिखती है।

मोहन राकेश कृत नाटक ‘आषाढ़ का एक दिन’ में प्रेम और प्रभुता का द्वंद्व

रामायण प्रसाद विश्वकर्मा
(टी जी टी हिंदी)
आदित्य बिरला पब्लिक स्कूल, नागदा
उज्जैन म`प्र.
मो. 7987321220

स्कूली जीवन में ‘आषाढ़ का एक दिन’ पढ़ने का अवसर मिला। पढ़ने के बाद युवामन में जो सतही रूमानियत का अनुभव हुआ वह सिर्फ दिल को रोमांचित करने तक ही सीमित था। लेकिन परास्नातक स्तर पर ‘आधे-अधूरे’ को। पढ़ने और समझने के बाद उसे जीवन से जोड़कर देखने की जो समीक्षात्मक दृष्टि जाग्रत हुई, वह साहित्य को समाज का दर्पण कहने की परंपरा को प्रमाणित करतीसी प्रतीत हुई, फलस्वरूप यही शोध दृष्टि परास्नातक स्तर के अंतिम वर्ष में ‘लहरों के राजहंस’ पर लघु शोध लिखने की प्रेरणा बनीं तत्पश्चात बड़े शोध (पी.एच.डी.) तक विस्तार पा सकी। उसी के सहारे आज एक बार फिर मोहन राकेश पर लिखने के लिए लेखनी उठाई है लेकिन उक्त शीर्षक पर लिखने से पूर्व यह उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है कि- “हिंदी नाट्य साहित्य को ऊँचाइयों तक

ले जाने में मोहन राकेश ने जो योगदान दिया है वह किसी से छिपा नहीं है, विशेषकर स्वातंत्र्योत्तर हिंदी रंगमंच को। इसीलिए वे हिंदी जगत में नाटककारों की विशेष कोटि में स्वीकार किए जाते हैं। उनकी नाट्य उत्कृष्टता के विषय में यह कहा जाए कि हिंदी नाट्य जगत में प्रसाद के पश्चात् जो शून्य की स्थिति उत्पन्न हुई थी, उसकी पूर्ति मोहन राकेश के द्वारा हुई तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। **गिरीश रस्तोगी** के शब्दों में -"आज की आवश्यकता के अनुरूप नाटक के प्रति नई सोच,आत्मानुभव,मनन मोहन राकेश की ही देन है" ।**1**

आशय यह है कि आचार्य भरत के पूर्व नाट्य शास्त्र की उत्पत्ति भले ही मनु युग से मानी जाय और उसे पंचम वेद के रूप में स्वीकार किया जाए लेकिन युगानुरूप बदलते परिवेश के अनुसार नाट्य लेखन में मनोरंजन के साथ-साथ उसमे उचित उपदेश और सामाजिक, राजनैतिक, मानसिक यथार्थ का अंकन कर नाट्य साहित्य को मानव मनोभूमि पर खड़ा करने का जो कार्य मोहन राकेश ने किया है, वह नाट्य साहित्य में एक अद्भुत प्रयोग था। उसी यथार्थ की ऊष्मा को मैंने अपने इस शोध पत्र में खंगालने का प्रयास किया है।

मोहन राकेश कृत नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' कालिदास के जीवन पर आधारित उसके परिवेश, रचना प्रक्रिया। प्रेरणास्रोत और उसके चुक जाने की प्रक्रिया से सम्बद्ध नाटक है जो ऐतिहासिक तथ्यों को स्पर्श करते हुए भी ऐतिहासिकता से दूर है। नाटककार ने नायक को सामान्य मानव की भांति यथार्थ की भावभूमि पर खड़ा किया है जिसमें उन्होंने आधुनिक मनुष्य के अंतर्द्वंद्व और संशयों को खोजने का प्रयास किया है। हालांकि इतिहास प्रसिद्ध कालिदास को एक सामान्य मानव के रूप में प्रतिष्ठित कर उसमें मानव सुलभ

दुर्बलताओं को आरोपित करने का आलोचकों द्वारा घोर विरोध किया गया, लेकिन मोहन राकेश का मानना है कि कोई भी महान कवि पहले मनुष्य है बाद में कवि, तो उसमें भी कुछ मानवीय दुर्बलताएं हो सकती हैं। यह जरुरी नहीं कि जो उदात्तता उसकी रचनाओं में मिलती है वही उदात्तता उसके निजी जीवन में भी मिले और जहाँ तक प्रश्न आरोपों का है तो उनका खंडन करते हुए वे लिखते हैं कि **"**रूढिगत संस्कार ही जहाँ व्यक्ति का विवेक बन जाए वहां और आशा करना ही व्यर्थ है। हमारे यहाँ परंपरा ही कुछ ऐसी है कि हम अपने जातीय प्रतीकों को सदा अतिमानवीय धरातल पर ही देखना चाहते हैं उनमें मानवीयता का निदर्शन हमें चोट पहुंचाता है। इसका मुख्य कारण शायद यही है कि हमें स्वयं अपनी मानवीयता पर विश्वास नहीं है, अपने यथार्थ में आस्था नहीं है**"**। **2**

आगे और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "कालिदास मेरे लिए एक व्यक्ति नहीं हमारी सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक है। नाटक में वह प्रतीक उस अंतर्द्वंद्व को संकेतित करने के लिए है जो किसी भी काल में सृजनशील प्रतिभा को आंदोलित करता है। कवि कालिदास को उस अंतर्द्वंद्व से गुजरना पड़ा या नहीं यह बात गौण है, मुख्य बात यह है कि हर काल में बहुतों को उससे गुजरना पड़ा है। हम भी आज उससे गुजर रहे हैं। हो सकता है व्यक्ति कालिदास का नाम वास्तविक न हो पर हमारी आज तक की सृजनात्मक प्रतिभा के लिए इससे अच्छा दूसरा नाम, दूसरा संकेत मुझे नहीं मिला।" **3**

अतः मोहन राकेश ने अपने नाटकों में कालिदास या अन्य पात्रों के जो व्यक्तित्व गढ़े हैं वे रचनाकार के प्रतीक हैं उनमें कहीं न कहीं मोहन राकेश स्वयं प्रतिबिंबित होते हैं। आज का मानव जिस

व्यथा को भोग रहा है, जिस अंतर्द्वंद्व से गुजर रहा है उसे मोहन राकेश ने कालिदास की कहानी के माध्यम से व्यक्त किया है।

यदि नाटक के प्रथम अंक से प्रारंभ करें तो कालिदास अपने हिमालय स्थिति गाँव में एक कला प्रेमी युवक के रूप में शांतिपूर्वक जीवन जी रहा है। चूँकि साहित्य सृजन उन्मुक्त परिवेश एवं स्वतंत्र विचारों से ही संभव है। अतः कालिदास अपने इस ग्रामीण परिवेश, यहाँ के उन्मुक्त शैल शिखर, निश्छल झरने, विस्तृत हरियाली, हृदयहारी भावना एवं प्रेम की मसृण मूर्ति जो उसकी रचनात्मक प्रतिभा की प्रेरणा स्रोत है, के साथ अपने हृदय में बैठे नवोदित कवि को परिष्कृत करने का कार्य कर रहा है। चूँकि प्रत्येक सृजनशील प्रतिभा के विकास में एक शक्ति कार्य करती है तो यहाँ पर मल्लिका कालिदास की शक्ति है, उसकी प्रेरणा है । उसके प्रति मल्लिका का प्रेम निःस्वार्थ है, निरपेक्ष है। कालिदास से वह किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं करती। केवल भावना को वरण कर, जीवन की स्थूल आवश्यकताओं को नकार कर मात्र अपनी कोमल भावनाओं के आधार पर ही शेष जीवन जीने का संकल्प करती है। यद्यपि कालिदास के प्रस्थान के पश्चात् भविष्य में छाने वाली रिक्तता और सूनेपन की अनुभूति उसे मन ही मन भयभीत करती है तो भी वह कालिदास को अत्यंत उत्साहपूर्वक उज्जयिनी भेजती है क्योंकि वह हमेशा उसे ऊँचाइयों पर देखना चाहती है इसीलिए वह कहती है - "यह क्यों नहीं सोचते कि नई भूमि तुम्हें यहाँ से अधिक संपन्न और उर्वरा मिलेगी। इस भूमि से जो तुम ग्रहण कर सकते थे, वह कर चुके हो, तुम्हें आज नई भूमि की आवश्यकता है जो तुम्हारे व्यक्तित्व को पूर्ण कर दे ।"**4**

इतना ही नहीं विवाह के सम्बन्ध में माँ के उलाहना देने पर मल्लिका कहती है -"आज जब उसका जीवन एक नई दिशा

ग्रहण कर रहा है। मै उनके सामने अपने स्वार्थ का उद्घोष नहीं कर सकती।"**5**

यह मल्लिका के सच्चे प्रेम की पराकाष्ठा है कसौटी भी। प्रेम में त्याग और उदात्तता के ऐसे अनेक उदाहरणों से साहित्य भरा पड़ा है। जिनमें हमेशा अपने प्रिय पात्र को शिखर पर देखने की भावना निहित है। फिर चाहे कामायनी की श्रद्धा हो या साकेत की उर्मिला ।

कालिदास एक प्रकृति प्रेमी है तो वहीँ सहज मानवीय संवेदनाओं का वाहक भी। लेकिन निर्धनता का अभिशाप कवि के साथ हमेशा से जुड़ा रहा है और इस निर्धनता में समाज की उपहास करने की प्रवृत्ति किसी भी कवि को भटकाव के दो राहे पर लाकर खड़ा कर देती है। आर्थिक अभावों का जो दंश कालिदास ने अतीत में अनुभव किया वही दुःख **सरोज स्मृति** में महाप्राण निराला के मुख से 'धन्ये मैं पिता निरर्थक था।" के रूप में भी प्रकट हुआ। मोहन राकेश शायद इसीलिए प्रारंभ में ही यह संकेत दे चुके हैं कि यह कहानी सृजनात्मक शक्तियों के प्रतीक के द्वंद्व की कहानी है जिसमें वह सदैव झूलता रहता है ।

नाटक में कालिदास दरिद्रता और अभावग्रस्त परिस्थितियों के कारण मातुल,अम्बिका और ग्राम प्रांतर के लोगों के व्यंग्य वाणों से आहत थे । इसलिए जब अवसर आया तो उनके मन में संपन्न जिंदगी के प्रति मोह जागा। मल्लिका के समक्ष इस भाव को स्वीकार करते हुए वे कहते हैं तुम्हें बहुत आश्चर्य हुआ था कि **"**मैं कश्मीर का शासन सम्हालने जा रहा हूँ । तुम्हें यह बहुत अस्वाभाविक लगा होगा ! अभावपूर्ण जीवन की यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। संभवतः उसमें कहीं उन सबसे प्रतिशोध लेने की भावना भी थी जिन्होंने जब मेरी भर्त्सना की थी, मेरा उपहास उड़ाया था।**"6**

वर्तमान संदर्भों में रचनाकारों द्वारा राजकीय आश्रय प्राप्त करने के पीछे कहीं न कहीं वही परिस्थितियां काम करती हैं जो कालिदास के साथ थीं । मातुल भी एक स्थान पर कहता है कि **सम्मान नहीं मिला तो कविता का मूल्य ही क्या** ? अतः वर्तमान रचनाकार येन-केन-प्रकारेण राजसत्ता से विभिन्न पुरस्कार प्राप्त कर, प्रतिनिधि मंडलों के सदस्य और आयोगों के अध्यक्ष बनकर कवि होने का प्रमाणपत्र प्राप्त कर उस हीन भावना से मुक्त होने का प्रयास करते हैं जिससे कालिदास मुक्त होना चाहते थे। यह जानते हुए भी कि राजसत्ता का आकर्षण कवि को बाध्य करता है कि वह उसके अनुरूप विलासमय,रागमय,संगीतमय साहित्य का सृजन करे। वह साहित्य केवल राजतन्त्र की चहारदीवारी तक ही सीमित रहे एवं उसकी सत्ता मात्र राजसी वृत्तियों को ही परितृप्त करती रहे । वह साहित्य जनसामान्य एवं जनचेतना से न जुड़े, यही राजतन्त्र का अभीष्ट है। वह अपने अहं के नशे में चूर होकर प्रकृति के सान्निध्य में उन्मुक्त भाव से विचरण करने वाली काव्य प्रतिभा को अपनी तुच्छ भौतिकता से मंडित कर गौरव का अनुभव करना चाहता है। वस्तुतः वह प्रतिभा को महिमामंडित करने के बहाने उसे म्लान ही करता है महान नहीं बनाता ।

कवि कालिदास के अंतर्द्वंद्व का विकास मूलतः इन्हीं दो ध्रुवों के मध्य होता है। एक ओर वह अपनी प्रेरक शक्ति और प्रेरणा भूमि को छोडकर अन्यत्र नहीं जाना चाहता। इसीलिए वह कहता है कि “**मै राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूँ**।” परन्तु दूसरे ही क्षण सम्पन्नता और प्रभुता का मोह उसे अपनी ओर खींचता है। फलस्वरूप कवि की स्वतंत्रता राजतन्त्र की लौह श्रृंखलाओं में कैद हो जाती है। कलाकार की स्वतंत्र चेतना को पराधीन कर देती है परन्तु साहित्य के अनुष्ठान में कवि अपनी प्रेरणा शक्ति की उपेक्षा नहीं

कर पाता और वह स्वीकार करता है कि मल्लिका की प्रेरणा से ही उसकी रचना जीवंत हो सकी है- “लोग सोचते है मैंने उस जीवन और वातावरण में रहकर बहुत कुछ लिखा है,परन्तु मैं जानता हूँ कि मैंने वहां रहकर कुछ नहीं लिखा। वह वहां के जीवन का ही संचय था। **कुमारसंभव** की पृष्ठभूमि में यह हिमालय है और तपस्वनी तुम हो । **मेघदूत** के यक्ष की पीड़ा मेरी पीड़ा है और विरह विमर्दिता यक्षिणी तुम हो। यद्यपि मैंने स्वयं यहाँ होने और तुम्हें नगर में देखने की कल्पना की है। **अभिज्ञान शाकुन्तल** में शकुंतला के रूप में तुम्हीं मेरे सामने थी। मैंने जब-जब लिखने का प्रयास किया तुम्हारे और अपने जीवन के इतिहास को बार-बार दोहराया और जब उससे हटकर लिखना चाहा तो रचना प्राणवान नहीं हुई।” **7**

कहने का आशय यह है कि राजसी वैभव और प्रभुता के वातावरण में भी प्रेरणा शक्ति के अभाव में कालिदास की रचना शक्ति कुंद होने लगती है और दूसरी ओर सम्पन्नता को त्यागकर वह अपनी मल्लिका से मिलने भी नहीं जा पाता । उसका शरीर तो उज्जयिनी में है लेकिन आत्मा मल्लिका के पास। प्रेम और प्रभुता के इसी द्वंद्व के बीच कालिदास झूलता रहता है।

यही कारण है कि कालिदास चाहते हुए भी उज्जयिनी से अपने गाँव लौटने पर मल्लिका से नहीं मिलते क्योंकि वहां उनकी राजकीय गरिमा बाधा बनकर खडी हो जाती है। वे अपनी विवशता व्यक्त करते हुए कहते हैं कि **“**मै नहीं जानता था कि अभाव और भर्त्सना का जीवन व्यतीत करने के बाद प्रतिष्ठा और सम्मान के वातावरण में जाकर मैं वैसा अनुभव करूँगा ।मन में कहीं यह आशंका थी कि वहां का वातावरण मुझे छा लेगा और मेरे जीवन की दिशा बदल देगा और यह शंका निराधार नहीं थी।” **8**

वहीँ दूसरी ओर अपने प्रेम की रक्षा करते हुए कहते हैं कि “मै तुमसे मिलने के लिए नहीं आया क्योंकि भय था कि तुम्हारी आँखें मेरे अस्थिर मन को और अस्थिर कर देंगी। मै इससे बचना चाहता था।” **9**

इस प्रकार कालिदास प्रेम और प्रभुता के द्वंद्व में जीवन यात्रा को सुखद बनाने का प्रयास करते हैं लेकिन यह सत्य है कि मल्लिका की अनुपस्थिति भी उसे जीवन में संबल प्रदान करती है। निष्कर्षतः मैं यह कहना चाहता हूँ कि हर सामान्य मनुष्य का अपना एक कालिदास है और उसकी अपनी एक मल्लिका (प्रेरणा), जिससे वह बहुत प्रेम करता है।आज के सन्दर्भ में वह मल्लिका किसी भी रूप में हो सकती है-वह प्रेमिका हो सकती है, परिस्थितियां हो सकती हैं, माता-पिता हो सकते हैं या कोई अन्य। पहले तो वह अपनी अभावग्रस्त जिन्दगी, असफलताओं, निराशाओं और सामाजिक उपेक्षाओं से आहत होकर उनसे दूर जाकर सफलता या प्रसिद्धि पाना चाहता है। अनेक प्रयासों के बाद वह अपनी मंजिल पा भी लेता है। कुछ दिन तो वह अपनी मल्लिका (प्रेरणा) से जुड़ा रहता है लेकिन जैसे -जैसे उस पर सत्ता रूपी सफलता का प्रभाव होता है, वह अपने अतीत या यों कहें कि वह अपनी मल्लिका से नजरें मिलाने से कतराने लगता है क्योंकि उसका पद उसकी प्रतिष्ठा उसे ऐसा करने से रोकती है और वह प्रियुंग मंजरी रूपी अहं के साथ भी अकेला ही रह जाता है।

सन्दर्भ

1-मोहन राकेश का नाट्य साहित्य- पुष्प बंसल ।
2-लहरों के राजहंस -मोहन राकेश- भूमिका ।
3-लहरों के राजहंस- मोहन राकेश- भूमिका ।

4-आषाढ़ का एक दिन- मोहन राकेश पृष्ठ 48।
5-आषाढ़ का एक दिन- मोहन राकेश पृष्ठ 21।
6-आषाढ़ का एक दिन- मोहन राकेश -समीक्षा दृष्टि।
7-आषाढ़ का एक दिन- मोहन राकेश पृष्ठ 109।
8-आषाढ़ का एक दिन-मोहन राकेश पृष्ठ 106।
9 - आषाढ़ का एक दिन-मोहन राकेश पृष्ठ 108।

विद्यालय नेतृत्व और नेतृत्व विकास

डॉ. रमेश तिवारी
64 - बी, फेस - II, डीडीए फ्लैट
कटवारिया सराय, नई दिल्ली - 16
मो. 9868722444
ईमेल : vyangyarth@gmail.com

विद्यालय की जिम्मेदारियों के सम्यक निर्वहन के लिए सरकार प्रत्येक विद्यालय में प्रधानाध्यापक की नियुक्ति करती है| जहाँ विद्यालय-प्रमुख स्थायी रूप से उपलब्ध नहीं होते, वहाँ प्रधानाध्यापकों की जिम्मेदारी निभाने हेतु किसी वरिष्ठ अध्यापक/अध्यापिका को विद्यालय प्रमुख का कार्यभार सौंपा जाता है| विद्यालय के समस्त क्रियाकलापों की जिम्मेदारी इन विद्यालय-प्रमुखों अथवा प्रभारियों पर ही होती है| किसी विद्यालय को बेहतर बनाने की दिशा में विद्यालय-प्रमुख का क्या दायित्व हो सकता है? मेरे विचार से स्वयं को जानने से इस समझ की शुरुआत की जा सकती है| विद्यालय-प्रमुख जब तक स्वयं को, यानि अपनी खूबियों-खामियों को भली-भांति न जान लें, किसी अन्य को समझने-समझाने की कोशिश बेमानी है | इनके लिए स्वयं को, सहयोगियों को, व्यवस्था को, बच्चों और अभिभावकों को और सबको जानते-समझते हुए एक-एक कदम आगे बढ़न ही उचित है| विद्यालय प्रमुख के लिए यह जानना भी जरुरी है कि “एक अच्छे विद्यालय की क्या संकल्पना होती है?” स्वयं को पहचानना व्यक्तिगत कौशलों

के सन्दर्भ में, जो किसी को एक व्यक्ति के रूप में प्रभावशाली बनाते हैं| सामूहिकता की भावना जागृत करना कि मैं नहीं, हम महत्त्वपूर्ण है जो सामूहिक नेतृत्व का आधार है|"[1] इस सन्दर्भ में कुछ विद्यालय-प्रमुखों से चर्चा के द्वारा उनकी चुनौतियों, संभावित समाधानों और विद्यालय-प्रमुख के रूप में उनकी प्राथमिकताओं के बारे में जानने कि कोशिश की गई| इस प्रकार के संवाद से हमारे समक्ष कई विन्दु उभर कर आए| विद्यालय-नेतृत्व में आने वाली कुछ चुनौतियाँ का उल्लेख निम्नलिखित है :

1.विद्यालय प्रमुखों की सर्वप्रमुख समस्या फंड का कम मिलना, फंड समय पर न मिलना और इसका इस्तेमाल कैसे किया जाए, इसकी जानकारी का न होना है| अतः इसकी जानकारी अपेक्षित है|

2.आजकल कंप्यूटर पर ही कार्य करने की संस्कृति विकसित हो रही है| जबकि प्रधानाध्यापक को इसके इस्तेमाल की न कोई जानकारी दी गई है, न ही विद्यालय में किसी कम्प्यूटर ऑपरेटर की नियुक्ति की गयी है| ऐसी स्थिति में कंप्यूटर सम्बन्धी कार्य में अक्सर गलतियों की संभावना बनी रहती है| अतः कंप्यूटर साक्षरता अत्यंत अनिवार्य है| इसका एक निदान कंप्यूटर ऑपरेटर की नियुक्ति भी हो सकता है|

3.आवश्यकतानुसार शिक्षणेतर कर्मचारियों का अभाव| जो उपलब्ध हैं उनके द्वारा समुचित सहयोग का अभाव| मेरे विचार से इस दिशा में विद्यालय-प्रमुख को अपनी ओर से निरंतर संवाद बनाने की जरुरत है| अपनी ओर से पहल करने पर अधिकतर मामलों में कुछ न कुछ सफलता अवश्य मिलती है| हाँ, कई बार अपेक्षा के अनुरूप

सफलता नहीं भी मिल सकती है| किन्तु इससे निराश-हताश होकर हाथ पर हाथ धरकर बैठ जाना फिर भी उचित नहीं कहा जा सकता| अतः इस दिशा में आवश्यक कार्यवाही सुनिश्चित करनी होगी| और जब तक योग्य सहकर्मी की व्यवस्था नहीं होती, उपलब्ध साथियों एवं संसाधनों से ही काम चलाना ठीक होगा|

4. अक्सर देखा जाता है कि विद्यालय प्रमुख और शिक्षण कर्मचारी शिक्षण कार्य से इतर कार्यों में लगा दिए जाते हैं जिससे शिक्षण कार्य प्रभावित होता है| शिक्षकों से शिक्षणेतर कार्य लेना हमारी व्यवस्था सम्बन्धी विसंगति है| वर्तमान नयी शिक्षा नीति के मसौदे में इस विसंगति पर ध्यान दिया गया है और उम्मीद है कि वर्तमान सरकार शीघ्र ही इस खामी को दूर कर लेगी|

5.अभिभावकों द्वारा असहयोग और बच्चों की कक्षा में अनुपस्थिति परस्पर जुड़े मुद्दे हैं| अभिभावकों से निरंतर संवाद किया जाए तो उनके द्वारा असहयोग और बच्चों की कक्षा से अनुपस्थिति की समस्या स्वत: दूर हो सकती है| इस सन्दर्भ में यह विद्यालय-प्रमुख की जिम्मेदारी बनती है कि वह निरंतर अभिभावकों से संपर्क कर संवाद के अवसर बनाए| व्यावहारिक तौर पर हमारा अनुभव यह कहता है कि प्रधानाध्यापक अपने कार्यालय के बाहर स्वयं से मिलने का समय निर्धारित कर खुश हो जाता है जबकि इसका असर यह होता है कि अभिभावकों में प्रधानाध्यापक को लेकर एक अनावश्यक भयमिश्रित दूरी उत्पन्न हो जाती है| मेरा मानना है कि प्रधानाध्यापक की सफलता इस बात में है कि कोई भी अभिभावक या छात्र-छात्रा कभी भी बिना किसी पूर्व सूचना के उनसे मिलकर अपनी समस्या बता सके| इन बच्चों को अध्यापक/अध्यापिका अथवा

विद्यालय नेतृत्व पर इतना भरोसा होना चाहिए कि यदि वे अपनी किसी भी समस्या को साझा करेंगे तो उनकी हरसंभव मदद की जाएगी| प्रत्येक विद्यालय-प्रमुख को इसी तर्ज पर अपनी कार्यप्रणाली निर्धारित कर सार्वजनिक रूप से जगह-जगह इसकी सूचना प्रदर्शित करना चाहिए|

6.दिल्ली के विद्यालयों में मध्याह्न भोजन निर्धारित एजेंसियों से बनकर आता है और विद्यालय में वितरित होता है| हालाँकि कुछ विद्यालय प्रमुखों ने बताया कि बर्तन के अभाव में पहले कई बच्चे मध्याह्न भोजन नहीं ले पाते थे और भोजन बर्बाद हो जाता था| एक प्रधानाध्यापक ने अपने निजी प्रयास से इसका कारण जानने की कोशिश की तो ज्ञात हुआ कि सभी बच्चे भोजन हेतु बर्तन घर से नहीं लेकर आते हैं| ऐसे बच्चों की संख्या को ज्ञात करके प्रधानाध्यापक ने निजी सूत्रों का इस्तेमाल कर उतनी प्लेटें खरीद कर कार्यालय में रखवा दी हैं| अब जब भी भोजन वितरण हेतु आता है प्लेटें भोजन के पास ही रख दी जाती हैं| जिन बच्चों के पास अपने बर्तन नहीं होते, वे इन प्लेटों में भोजन लेकर करते हैं और भोजन के बाद प्लेटों को धोकर पुनः वहीँ रख देते हैं| बाद में ये सारी प्लेटें वापस विद्यालय-प्रमुख के कार्यालय में रख दी जाती हैं| मुझे यह एक अच्छा तरीका प्रतीत हुआ| अन्य विद्यालय प्रमुख भी अपने निजी प्रयासों से ऐसी पहल कर सकते हैं|

7.एक अन्य चुनौती जिसके बारे में विद्यालय प्रमुखों ने चिंता व्यक्ति की, वह विद्यालय प्रबंधन समिति के अधिकारियों की कार्यप्रणाली से जुड़ी है| प्रायः ऐसा देखने में आया है कि इस प्रकार की समितियों में कई स्थानों पर राजनीतिक सदस्यों का प्रवेश हो

जाता है| ऐसे सदस्य विद्यालय में गाहे-बगाहे अपना रोब झाड़ते रहते हैं, जिससे विद्यालय-प्रमुखों को कार्य-निष्पादन में समस्या होती है| यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि विद्यालय प्रबंधन समिति के सदस्य शैक्षिक आधार पर ही नियुक्त किए जाएँ न कि राजनीतिक आधार पर| ऐसा करके हम इन समस्याओं से मुक्ति की पहल कर सकते हैं|

चुनौतियों के संभावित समाधान के बाद विद्यालय-प्रमुखों ने अपनी प्राथमिकता के कुछ कार्य भी बताए हैं| मैं इन सभी विन्दुओं के अध्ययन-विश्लेषण के उपरांत निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ -

- बच्चों का सर्वांगीण विकास
- विद्यालय में साफ़-सफाई
- स्कूल में सुधार
- विद्यालय में क्लर्क की व्यवस्था
- बच्चों में पढ़ाई के प्रति भय को दूर करना|

शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बच्चों का सर्वांगीण विकास है| विद्यालय में साफ़-सफाई के द्वारा साफ़-सफाई की भावना का विकास किया जाना उचित है| स्कूल में सुधार को प्राथमिकता में प्रायः सभी विद्यालय प्रमुखों ने रखा है किन्तु उसका स्वरूप क्या होगा, इस बारे में विस्तार से कोई खाका अथवा रोडमैप नहीं दिया गया है| विद्यालयों में सुधार के स्वरूप पर हमें ध्यान केन्द्रित करने की जरूरत है| बच्चों में पढ़ाई के प्रति भय को ख़त्म करना विद्यालय-प्रमुखों की प्राथमिकता में देखना सुखद है| हालाँकि यहाँ भी इसके स्वरूप अथवा रोडमैप का प्रश्न उठ सकता है किन्तु यदि लक्ष्य निर्धारित कर लिया गया है तो रास्ता भी देर-सबेर मिल जाएगा, यह तय है|

एक विद्यालय-प्रमुख से हम क्या अपेक्षा रखते हैं? यही कि वह हमारी कसौटियों पर निरंतर खरा उतरे| वे कसौटियाँ क्या हैं? विद्यालय-प्रमुख को हमेशा व्यवस्था सम्बन्धी सरोकारों और उसके प्रभाव क्षेत्रों को स्मरण रखना चाहिए| अंग्रेजी में इसे सर्किल ऑफ़ कंसर्न एवं सर्किल ऑफ़ इन्फ्लुएंस कहते हैं| इसके साथ ही मानव के तीन प्राकृतिक क्षेत्र (कम्फर्ट जोन, चैलेंज जोन, फ्रस्टेशन जोन) को भी सदा स्मरण रखना चाहिए| हमारा प्रत्येक शिक्षण योजना मॉडल अनुभव योजना और आकलन आधारित होना चाहिए| इसका लक्ष्य अधिगम लक्ष्य कहा जाएगा| इसके अतिरिक्त हमें यह भी स्मरण रहे कि हमारी मान्यताएँ ही हमारे व्यवहार का निर्देशन करती हैं| सीखने-सिखाने के लिए हमें परिप्रेक्ष्य-अभिवृत्ति-कौशल/हुनर-जानकारी एवं समझ के क्रम एवं महत्त्व को स्मरण रखना चाहिए|[2] जरूरी नहीं है कि सभी विद्यालय-प्रमुख इन तथ्यों से रूबरू हों| कुछ जानते होंगे, कुछ आंशिक रूप से जानते होंगे, कुछ धीरे-धीरे अभ्यास से जान जाएँगे| इसी क्रम के अनुसार 'विद्यालय विकास योजना चक्र' कार्य करता है| विद्यालय विकास योजना चक्र कुल मिलाकर हमारे भावी कार्यक्रमों का एक कैलेंडर है| जिसमें विद्यालय विकास हेतु हमारी दृष्टि क्या है, हमारे मिशन वाक्य, मूल्य, आदर्श क्या हैं ? छात्रकेंद्रित, नेतृत्व गुणवत्ता, समुदाय आधारित कसौटी पर हम क्या अच्छा कर पा रहे हैं? आगामी एक से तीन वर्ष में हम और क्या प्राप्त करना चाहते हैं? इसे साकार करने हेतु हमें क्या करना चाहिए? योजना क्रियान्वयन एवं प्रगति समीक्षा| इन तमाम क़दमों के केंद्र में सभी छात्रों का शैक्षिक उन्नयन है|[3] हमारे ज्ञान की एक प्रक्रिया है| विद्यालय प्रमुख यदि उसे हासिल कर लें तो बहुत सारी चुनौतियों का समाधान बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के हो सकता है| यह सूत्र है अनुभव आधारित अधिगम प्रक्रिया|[3] इसमें

अनुभव के बाद प्रतिक्रियात्मक अवलोकन, अवधारणात्मक एवं तार्किक विश्लेषण, क्रियाशील प्रयोगीकरण के क्रम से जब सभी परिचित होते हैं तो अनुभव आधारित अधिगम प्रक्रिया की समझ भली-भांति हो जाती है| यह समझ सभी प्रधानाध्यापक/ प्रधानाध्यापिकाओं को समृद्ध करेगी| वास्तव में किसी भी व्यक्ति को जब आप जिम्मेदारी देते हैं तो उसके साथ-साथ आपको उसके कार्यों का समुचित प्रशिक्षण देना भी अनिवार्य करना चाहिए| विद्यालय प्रमुखों में कुछ तो सीधे-सीधे प्रधानाध्यापक पद पर नियुक्ति पाते हैं किन्तु एक बड़ा तबका अध्यापक पद से प्रोन्नत होकर अथवा प्रतियोगी परीक्षाओं में अपना स्थान बनाकर इस जिम्मेदारी भरे पद पर नियुक्ति पाता है| “वर्षों से भाषा, गणित, विज्ञान अथवा अन्य विषय पढ़ाने वाले शिक्षक को बिना किसी नेतृत्व व प्रबंधन कौशल की जानकारी के प्रधानाध्यापक अथवा विद्यालय प्रमुख की भूमिका में डाल दिया जाता है, तब अगले ही दिन से उससे समाज और संस्था की अपेक्षाओं का स्वरूप बदल जाता है|”[4] हमें यह ध्यान रखना होगा कि प्रत्येक व्यक्ति को उचित मार्गदर्शन एवं प्रशिक्षण के द्वारा ही समुचित कार्य निष्पादन की प्रक्रिया में कुशल बनाया जा सकता है| “जिस तरह आवश्यक कौशलों से दक्ष एक कुशल नेतृत्व की आवश्यकता अनिवार्य समझी जाती है, उसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में भी कुशल शैक्षणिक नेतृत्व की आवश्यकता को स्वीकार करना ही होगा|”[5]

निष्कर्ष व समाधान

विद्यालय प्रमुखों से किए गए विमर्श और प्राप्त चुनौतियों, संभावित समाधानों और प्राथमिकता सूची के अध्ययन-विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष और समाधान निम्नलिखित हैं -

1.विद्यालय-प्रमुखों के लिए निरंतर वार्षिक-अर्धवार्षिक-द्विवार्षिक आधार पर नेतृत्व क्षमता-संवर्धन कार्यशाला का आयोजन सरकार के द्वारा किया जाना चाहिए| इन कार्यशालाओं में वित्तीय प्रबंधन, तकनीकी (आईसीटी) के साथ-साथ नेतृत्व प्रबंधन पर भी अनिवार्य रूप से फोकस रखना चाहिए|

2.प्रत्येक विद्यालय-प्रमुखों के सहयोग के लिए कम से कम एक कंप्यूटर साक्षर कर्मचारी प्रदान किया जाए, जो लिपिकीय कार्यों के कुशल निष्पादन में विद्यालय-प्रमुख का सहयोग कर सके|

3.विद्यालय की साफ़-सफाई और सुरक्षा के लिए आवश्यकतानुसार चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की उपलब्धता सुनिश्चित की जाए और नियुक्ति के साथ-साथ उन्हें कम से कम 15 दिनों का गहन प्रशिक्षण प्रदान किया जाए ताकि वे बेहतर ढंग से अपना कार्य-निष्पादन कर सकें|

4.शिक्षकों को शिक्षणेतर कार्यों में न लगाया जाए|

5.बच्चों के सर्वांगीण विकास में अभिभावकों की भूमिका पर विद्यालय-प्रमुखों द्वारा प्रायः पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है| बच्चे अधिकतम छह घंटे ही विद्यालय में रहते हैं| शेष अठारह घंटे उन्हें अपने परिवार में गुजारना होता है| अतः हम यदि सही मायने में बच्चों में परिवर्तन चाहते हैं तो बच्चे, उसके परिवार व परिवेश को भली-भांति जानने की आवश्यकता है| बच्चे की पृष्ठभूमि और परिवेश को जाने बगैर हम बच्चे के बारे में पूर्ण जानकारी नहीं प्राप्त कर सकते हैं| अतः इस दिशा में बच्चे के साथ-साथ अभिभावकों से निरंतर संवाद बनाए रखना अत्यंत कारगर उपाय है|

6.यह विन्दु भी सामने आया कि आज का अभिभावक बच्चे की शिक्षा को लेकर बहुत जागरूक नहीं है| अभिभावक के लिए बच्चे का विद्यालय जाना मात्र छात्रवृत्ति, पोशाक, किताब, मध्याह्न भोजन

पाने का साधन बन गया है| अतः एक ऐसा वातावरण निर्मित करने की जरूरत है, जिसमें बच्चे की शिक्षा को लेकर अभिभावकों में निरंतर जागरूकता का भाव बने| इस पहल के लिए भी रोडमैप बनाने की जिम्मेदारी विद्यालय-प्रमुख को ही निभाने की जरूरत है|

8.अभिभावकों के साथ संवाद बनाने की दृष्टि से मासिक-द्वैमासिक-त्रैमासिक आधार पर अवकाश के दिन विद्यालय-प्रमुख की नेतृत्व में 'शिक्षक-अभिभावक संगोष्ठी' सुनिश्चित की जाए, जिससे सभी अभिभावक निर्बाध रूप से सहभागिता कर सकें| इस कार्यक्रम के द्वारा हम अभिभावकों से जुड़ते हुए पहले उन्हें अधिक से अधिक सुनने की कोशिश करें| इसके बाद आवश्यक हो तो अभिभावक का मार्गदर्शन मित्रवत भाव से करें| इस पहल से अभिभावकों के असहयोग और बच्चों की कक्षा से अनुपस्थिति दोनों ही चुनौतियों का समाधान ढूँढा जा सकता है|

9.मध्याह्न भोजन की गुणवत्ता और वितरण के प्रति विद्यालय-प्रमुख को निरंतर सजग रहने की आवश्यकता है| यदि किसी विद्यालय में मध्याह्न भोजन वितरण सम्बन्धी कोई परेशानी आती है तो विद्यालय प्रमुख को निजी प्रयासों से भी आवश्यकतानुसार हल करने की कोशिश करनी चाहिए, जैसा ऊपर एक विद्यालय-प्रमुख का उदाहरण दिया गया है|

10.विद्यालय प्रबंधन समिति के चुनाव में शैक्षिक पृष्ठभूमि के लोगों को विशेष तरजीह देनी चाहिए न कि अन्य पृष्ठभूमि के व्यक्तियों को| राजनीतिक पृष्ठभूमि के लोगों को प्रायः शिक्षण संस्थाओं की प्रबंधन समिति से दूर रखने की हरसंभव कोशिश अपेक्षित है| तभी विद्यालय-प्रमुख समिति के अधिकारियों के सहयोग से विद्यालय के कार्यों को कुशलतापूर्वक निष्पादित कर पाएँगे|

हमारी कोशिश होनी चाहिए कि हम विद्यालय-प्रमुखों में वह जज्बा भर सकें कि वे सीमित संसाधनों एवं विपरीत परिस्थितियों में भी अपना बेहतर प्रदर्शन कर सकें| जिस प्रकार किसी कार्य की सफलता के लिए आवश्यक कौशलों से दक्ष एक कुशल नेतृत्व की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में कुशल शैक्षणिक नेतृत्व की आवश्यकता को स्वीकार कर विद्यालय-प्रमुखों के लिए अनुकूल अवसर उपलब्ध कराना होगा| इस प्रयास के द्वारा ही हम विद्यालय-प्रमुखों के नेतृत्व गुणों में प्रभावी विकास कर सकते हैं और भारतीय शिक्षा-व्यवस्था को सही दिशा प्रदान कर सकते हैं|

संदर्भ

1.प्रवाह : अजीम प्रेमजी फाउंडेशन का प्रकाशन, अक्तूबर 2018-जनवरी 2019 अंक, पृष्ठ 7|

2.प्रवाह : अजीम प्रेमजी फाउंडेशन का प्रकाशन, जनवरी-अप्रैल 2013, पृष्ठ 19 |

3.वही - जनवरी-अप्रैल 2013, अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन का प्रकाशन, जनवरी-अप्रैल 2013, पृष्ठ 19 |

4.वही, पृष्ठ 3 |

5.वही|

मानसिक परिवर्तन, शिक्षक प्रशिक्षण, कौशल विकास एवं प्रौद्योगिकीः नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के कार्यान्वयन में प्रमुख मुद्दे

- प्रो. (डा.) एस. बी. शर्मा
कुलपति
मिलेनियम विश्वविद्यालय,
ब्लैंटायर, मलावी

सार

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने शिक्षा प्रणाली को लचीला व समग्र बनाने तथा वैश्विक शिक्षा की जरूरतों को पूरा करने पर जोर दिया है लेकिन इन लक्ष्यों को पूरा करने के लिए हमें कुछ प्रमुख मुद्दों और चुनौतियों से पार पाना होगा। इस लेख में ऐसे प्रमुख मुद्दों जैसे कि मानसिक परिवर्तन, शिक्षक प्रशिक्षण में गुणवत्ता, योग्यता, समर्पण तथा शिक्षा में कौशल विकास एवं प्रौद्योगिकी के समावेश के बारे में चर्चा की गई है। नीति में शिक्षकों को सशक्त बनाने के लिए कई सुधारों का प्रस्ताव है जिसमें उच्च सम्मान और स्थिति को बहाल करना भी शामिल है जो केवल तभी किया जा सकता है जब शिक्षक शिक्षार्थियों को राष्ट्र निर्माण के रूप में तैयार करने की भावना रखते

हों। इसके लिए सभी हितधारकों को आराम व सुविधा की पारंपरिक सीमाओं से बाहर आना होगा और युवा पीढ़ी के भविष्य को बनाने के लिए सर्वोत्तम प्रतिभाओं को आकर्षित करना होगा। भारत एक उभरती हुई अर्थव्यवस्था है जिसे मात्र अपनी युवा शक्ति को मजबूत करने की आवश्यकता है और इस शक्ति की जड़ें शिक्षा के आधार में निहित हैं।

आज भारत के समस्त शिक्षाविदों, राजनेताओं तथा नागरिकों में भारत को विश्वगुरू के रूप में देखने की प्रबल चाह फिर से प्रकट हो रही है। यही कारण है कि वर्तमान समय में कौशल विकास एवं प्रोद्योगिकी संबंधित आश्यकताओं को देखते हुए शिक्षण की परिभाषा बदल चुकी है और उसमें केवल परंपरागत विषय, वयवहारिक विषयों जैसे विज्ञान अथवा दो चार हस्तकला से संबंधित कौशल ही शामिल नहीं है अपितु आज कौशल विकास के साथ साथ प्रौद्योगिकी संबंधित ज्ञान भी उसमें निहित होकर शिक्षा के स्वरूप को नई दिशा व पहचान दे रहे हैं। इतने तत्वों के मध्य आपसी तालमेल न होने के परिणामस्वरूप माता-पिता, शिक्षक तथा विद्यार्थी, दिशाहीन, उद्देश्यविहीन तथा सरपट दौड़ती जिंदगी में उलझ से गये हैं। समय की कमी, आर्थिक अव्यवस्थायें, सामाजिक तथा राजनैतिक बदलावों के चलते शिक्षण को प्रभावित करने वाले कारको में सामंजस्य बैठाने पर आधारित यह प्रपत्र अवश्य ही उसमें मूलभूत सुधारों की आवश्यकता पर प्रकाश डालने में कारगर सिद्ध होगा।

मुख्य शब्दः. शिक्षा, नीति, शिक्षक प्रशिक्षण, कौशल विकास एवं प्रौद्योगिकी।

प्रस्तावना

किसी भी देश के आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए कौशल व ज्ञान दो प्रेरक बल हैं। वर्तमान वैश्विक माहौल में

उभरती अर्थव्यवस्थाओं की चुनौतियों से निपटपने में वही देश सफल हैं जिन्होंने कौशल विकास का उच्च स्तर प्राप्त कर लिया है। किसी भी देश में कौशल विकास के लिए मुख्य केंद्र युवा ही होते हैं। युवा पीढ़ी, जिनकी मेहनत व सतकर्मों पर ही देश का भविष्य टिका होता है, ये ही देश की जड़े हैं। भारत के पास एक अतुलनीय युवा जनसंख्या है यानि एक बड़ा हिस्सा उत्पादक आयु समूह में है।

यूं तो यह बात भारत को एक विश्वशक्ति के रूप में उभरने में एक सुनहरा अवसर प्रदान करती है किंतु साथ ही एक बड़ी चुनौती भी देती है। हमारे देश में 60.5 करोड़ लोग 25 वर्ष से कम आयु के हैं। ये युवा शक्ति रोजगार के लिए उपयुक्त कौशल प्राप्त करके परिवर्तन की लहर तो ला सकते हैं लेकिन यह तभी संभव होगा जब वे स्वस्थ, शिक्षित व कुशल भी हों। इससे ना केवल वे अपने जीवन को सफल बनाने में सक्षम होंगे अपितु दूसरों के जीवन में भी बदलाव ला सकेंगे।

सभी संयुक्त राष्ट्र सदस्य देशों ने गरीबी खत्म करने, पृथ्वी की रक्षा करने और 2030 तक सभी लोगों की शांति और समृद्धि सुनिश्चित करने के लिए वर्ष 2015 में ग्लोबल गोल्स यानी सतत् विकास के लक्ष्यों को अपनाया। सभी 17 स्थायी लक्ष्यों में से गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है। भारत में सकारात्मकता इस तथ्य में निहित है कि युवाशक्ति जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा है, जबकि सबसे बड़ी समस्या बेरोजगार युवाओं की बढ़ती संख्या है। अब नई शिक्षा नीति 2020 के साथ शिक्षा के स्तर में सुधार के लिए एक मंच तैयार किया गया है और यह एक आधुनिक, प्रगतिशील और न्यायसंगत शिक्षा प्रणाली के लिए मार्ग प्रशस्त करता है।

सरकार को नई शिक्षा नीति को सफलतापूर्वक लागू करने और सभी स्तरों पर सभी युवाओं को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए एक व्यवस्थित दृष्टिकोण की आवश्यकता है। यह विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विभिन्न ईकाईयों के गठन का प्रस्ताव करता है जैसेः.

- गहन अनुसंधान विश्वविद्यालय-.शिक्षण और अनुसंधान पर एकसमान ध्यान देने के लिए,
- गहन शिक्षण विश्वविद्यालय.शिक्षण उन्मुखी किंतु शोधपर्यक, तथा
- स्वायत्त डिग्री देने वाले कॉलेज– मुख्य रूप से स्नातक शिक्षण पर केंद्रित

उच्च शिक्षा संस्थानों को शिक्षार्थियों और नियोक्ताओं की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए। एक विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा के एक बहु–विषयक संस्थान के रूप में उच्च गुणवत्ता वाले शिक्षण, अनुसंधान और सामुदायिक सहभागिता के साथ स्नातक और स्नातकोत्तर कार्यक्रमों की उपलब्धता सुनिश्चित करता है।

नई शिक्षा नीति 2020 को लागू करने के तरीके के मुद्दे और चुनौतियाँ

हालांकि कई समस्याएं हैं जो नई शिक्षा नीति 2020 के कार्यान्वयन करने में सामने आती हैं, लेकिन उसमें एक प्रमुख मुद्दा है. ठहरी हुई मानसिकता। नीति अपने उद्देश्यों के बारे में स्पष्ट है और नीति निर्धारण के इरादे भी काफी हद तक स्पष्ट हैं, लेकिन अपने गंतव्य तक पहुंचने और उद्देश्यों को प्राप्त करने का तरीका काफी अनिश्चित है। मानसिकता एक ऐसा विश्वास व सोच है जिससे हम परिस्थितियों से निपटते हैं, जिससे हम यह देखते हैं कि क्या चल रहा है और हमें क्या करना चाहिए। वर्तमान शिक्षा प्रणाली पुरानी है, लेकिन

यह हितधारकों के दिमाग में इस तरह घर कर चुकी है कि इससे थोड़ा. सा विचलन बहुत सारी समस्याएं और अधीरता पैदा करता है।

तय अथवा सीमित मानसिकता	विकसित मानसिकता
शिक्षण के पारंपरिक तरीकों से पाठ्यक्रम का पूरा होना	व्यावहारिक ज्ञान और कौशल प्रदान करते हुए शिक्षण के नवीन और दिलचस्प तरीके प्रयोग करना
मात्र लिखित परीक्षा का आयोजन	व्यक्तित्व का समग्र मूल्यांकन, मिश्रित तरीकों द्वारा परीक्षा आयोजित करवाना,
केवल स्मृति का मूल्यांकन	समझ, ज्ञान, प्रयोज्यता व कौशल का मूल्यांकन
छात्रों को केवल डिग्री देकर अगले स्तर पर पदोन्नत करना	छात्रों को कौशल, ज्ञान और डिग्री के साथ अगले स्तर पर पदोन्नत करना
शिक्षण का लक्ष्य मात्र वेतन लेने के लिए नौकरी करना	अंतिम लक्ष्य छात्र को राष्ट्र निर्माण के लिए तैयार करना
कभी भी आत्म–ज्ञान और नए शिक्षण कौशल सीखने हेतु खुद को तैयार नहीं रखना	स्व-ज्ञान और शिक्षण के नए कौशलों का अद्यतन करना
छात्रों के साथ कोई भावनात्मक लगाव नहीं होना	छात्रों के साथ मजबूत भावनात्मक संबंध

सक्षम शिक्षक

कोविड&19 महामारी के दौरान अनेकों प्रतिकूल परिस्थितियां देखी गई। शिक्षकों को पढ़ाने के नए तरीकों का सहारा लेना पड़ा और अभिभावकों को अपने बच्चों की सुविधा के लिए ई-संसाधनों का सहारा लेना पड़ा। अगर हम कुछ देर के लिए कमजोर नेटवर्क को अलग रखें तो यह भारतीय शिक्षण प्रणाली में एक नवीन प्रयोग था और और छात्रों ने भी इसका आनंद लिया। सूचना प्रौद्योगिकी की बदलती गतिशीलता उच्च शिक्षा में ई-लर्निंग के एकीकरण को लेकर शिक्षक की पारंपरिक मानसिकता पर प्रहार करती है।

शिक्षक वह सामान्य कारक है जो शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। वह शिक्षक ही है जो अंत में नई शिक्षा नीति के

माध्यम से कक्षा में राष्ट्र की भविष्यनिधि को आकार देगा। नीति में कहा गया है कि शिक्षक वास्तव में हमारे बच्चों के भविष्य को आकार देते हैं और इस प्रकार हमारे राष्ट्र के भविष्य का भी। इसका अर्थ यह है कि शिक्षक कक्षाओं में उच्च गुणवत्तापूर्ण मानव संसाधन का निर्माण करके राष्ट्र निर्माण में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

न्यायमूर्ति जे एस वर्मा समिति की रिपोर्ट, 2012 के अनुसार, एक बिखरे हुए शिक्षक शिक्षा क्षेत्र से 370 लाख से अधिक बच्चों को जोखिम में डाल दिया गया है। निजी शिक्षक शिक्षा संस्थानों (टीईआई) के निरीक्षण में बुनियादी ढांचे के नाम पर केवल एक नींव का पत्थर पाया गया था व 99 प्रतिशत उत्तीर्ण दर। रिपोर्ट में यह भी पता चला है कि औसतन 85 प्रतिशत शिक्षक उत्तर–योग्यता योग्यता परीक्षा यानि केंद्रीय शिक्षक पात्रता परीक्षा को उत्तीर्ण करने में असफल रहे।

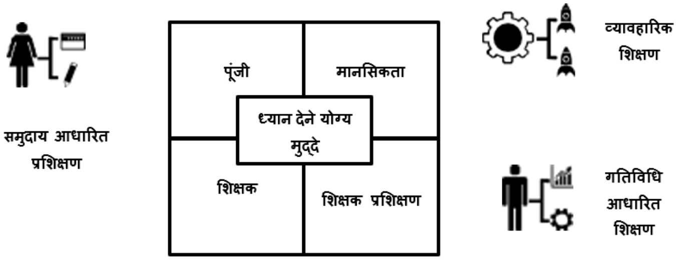

ज्यादातर सरकारी स्कूलों में शिक्षकों की अच्छी संख्या अनुपस्थित है जबकि वे जो उपस्थित हैं उनका एक बड़ा अनुपात शिक्षण के बजाय वेतन प्राप्त करने पर अधिक ध्यान केंद्रित करते हैं क्योंकि वे परिणामों के प्रति जवाबदेह और जिम्मेदार नहीं हैं। यह दृष्टिकोण छात्रों के बीच ड्रॉपआउट दरों को बढ़ाता है। नतीजतन, लगभग 50 प्रतिशत छात्र, जिनके माता–पिता मुश्किल से फीस का

भुगतान कर पाते हैं, निजी स्कूलों में नामांकित होते हैं, जहां शिक्षण की गुणवत्ता भी ज्यादातर उप–मानक है। अच्छे निजी स्कूल आम लोगों के बस की बात नहीं हैं। इसलिए शिक्षकों की मानसिकता में क्रांतिकारी बदलाव की आवश्यकता है।

शिक्षक शिक्षा और प्रशिक्षण

शिक्षक शिक्षा और प्रशिक्षण पर नई शिक्षा नीति की सिफारिशों के आधार पर, शिक्षक शिक्षा के लिए एक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा– NCFTE 2021 को अकादमिक, व्यावसायिक और विशेष शिक्षा में कार्यरत शिक्षकों की शिक्षक शिक्षा मार्गदर्शन करने के लिए तैयार किया जाएगा। 4-वर्षीय एकीकृत बी.एड., स्कूली शिक्षकों के लिए न्यूनतम डिग्री योग्यता को शिक्षा में तथा एक विशेष विषय के रूप में एक बहु-विषयक और एकीकृत दोहरे स्नातक की डिग्री के रूप में माना जाता है। इस पाठ्यक्रम में प्रवेश उपयुक्त विषयों और राष्ट्रीय परीक्षण एजेंसी द्वारा आयोजित योग्यता परीक्षणों के माध्यम से होगा।

सभी बहुविषयक विश्वविद्यालयों को शिक्षा विभाग स्थापित करने और शिक्षाशास्त्र में स्नातक की उपाधि को मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र, तंत्रिका विज्ञान, भाषा, कला, संगीत, इतिहास, साहित्य, शारीरिक शिक्षा, विज्ञान और गणित जैसे अन्य विभागों के साथ संचालित करने का प्रावधान रखा गया है। इसके अलावा ये संस्थान शिक्षाशास्त्र की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए शिक्षा के विभिन्न पहलुओं में अत्याधुनिक शोधकार्य भी संचालित करेंगे।

निजी संस्थानों द्वारा उचित प्रशिक्षण दिए बिना D.El.Ed., B.Ed., M.Ed. की डिग्री दी जा रही है। शिक्षकों के चयन के दौरान कौशल को मापदंड नहीं बनाया जाता और यही कारण है कि तमाम शिक्षण संस्थान इन पाठ्यक्रमों को लापरवाही से लेते हैं और केवल

अंतिम परीक्षा आयोजित करवाने तक सीमित रखते हैं। यदि हम चाहते हैं कि नई शिक्षा नीति सफल हो तो हमें स्थापित मानदंडों को बाधित करने से सावधान रहना होगा। राज्य, जिला, उप-जिला और ब्लॉक स्तर पर प्रत्येक हितधारक को नई शिक्षा नीति को सफल बनाने में योगदान देना होगा। यहां तक कि स्कूल और कॉलेज के प्राचार्यों को भी पहले से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। इससे पहले कि नीति वास्तव में लागू की जाए, शिक्षकों के संसाधनों और कौशल के मानचित्रण की योजना बनाना महत्वपूर्ण है। केवल कार्यशालाएं आयोजित करवाना पर्याप्त नहीं होगा अपितु लगातार प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी।

लगभग 1.35 करोड़ की आबादी वाले भारत में लगभग 800 विश्वविद्यालय हैं, जिनमें से कुछ 360 निजी और 39,000 कॉलेज हैं, इनमें से अधिकांश कॉलेज सार्वजनिक विश्वविद्यालयों से संबंधित गैर–डिग्री देने वाले संस्थान हैं। इसका सकल नामांकन अनुपात (GER) वर्तमान में लगभग 26 प्रतिशत है और 2035 तक इसे बढ़ाकर 50 प्रतिशत करने का प्रस्ताव है। जबकि संस्थानों की एक अच्छी संख्या विशेष रूप से भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, NIT और IIM उत्कृष्ट है, लेकिन इसके बावजूद अनेक संस्थान खराब गुणवत्ता से ग्रस्त है।

कौशल विकास एवं प्रौद्योगिकी

भारतीय युवाओं को कौशल विकास के नाम पर उच्च शिक्षा से वंचित करना खतरनाक होगा क्योंकि सीखे हुए खास कौशलों के अप्रचलित होने पर वे युवा नये कौशलों को रातों–रात नहीं सीख पाऐंगे। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कौशल विकास के साथ–साथ प्रोद्योगिकी का समावेश। प्रोद्योगिकी के बिना कौशल विकास उस खादी उद्योग तथा अनेक स्थानीय ग्रामीण रोजगारों की तरह हो जाएगा जिसमें मेहनत और गुणवत्ता तो होगी लेकिन

आर्थिक व्यवस्था सुधारना न के बराबर होगा। यह प्रोद्योगिकी का ही प्रभाव है कि उत्तर भारत के सुदूर क्षेत्र में बैठा व्यक्ति भी अपने हुनर को दक्षिण भारत के गांव में पहुंचा सकता है। ऑनलाइन व्यापार कौशल विकास तथा प्रोद्योगिकी के तालमेल का अनूठा उदाहरण है। मात्र कुछ वर्ष पूर्व तक कहा जाता था सूचना एवं संचार प्रोद्योगिकी द्वारा एक क्लिक में ही घर बैठे सारी सूचना प्राप्त की जा सकती है और आज कहते हैं कि मात्र एक क्लिक से हम घर बैठे क्रय – विक्रय कर सकते हैं।

भारत के ग्रामीण युवाओं में जोश व ताकत है, कुछ कर दिखाने का ज़ज्बा भी है लेकिन केवल कौशल विकास से उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद भी वे बेरोजगार ही रहते हैं। अर्जित करते हैं तो मात्र एक डिग्री।

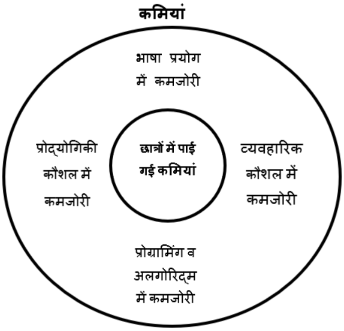

इंग्लैंड और अमेरिका जैसे विकसित देशों की तुलना में भारत में व्यवसायिक कौशल प्राप्त युवाओं का अनुपात काफी कम है। अगले सात वर्षों में भारत के पास करीब ***5*** करोड़ श्रमिक होंगें। देश विदेश में नौकरी के अवसर भी होंगे लेकिन इसके लिए कौशल विकास तथा प्रौद्योगिकी होना आवश्यक है।

यदि ग्रामीण क्षेत्रों के संदर्भ में शिक्षा पर विस्तार से बात की जाये, तो इससे पूर्ण एक बुनियादी सवाल पर सबसे पहले विचार करना होगा।

संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था का ध्येय व साध्य क्या है?

इस सवाल का दार्शनिक उत्तर देने की बजाय यदि ग्रामीण पृष्ठभूमि की वास्तविकता को ध्यान में रखकर उत्तर दिया जाये तो मैं कहना चाहूगा–कि भूखे आदमी का तो सबसे बड़ा तर्क 'रोटी' है। हम सब भली भांति जानते हैं कि जब बिना 'रोटी', 'दिमाग' काम ही नहीं कर सकता, तो क्या हम ऐसी शिक्षा व्यवस्था को श्रेष्ठ कह सकते हैं जो इस मोर्चे पर ही असफल साबित हो जाये। नि:संदेह इसका जवाब न में ही हो सकता है।

भारत में डिग्रीयों की चमक–दमक वाली यह शिक्षा प्रणाली एक ऐसी व्यवस्था है जो साल दर साल बेरोजगारों की लंबी चौड़ी फौज पैदा कर रही है। भारत में ऐसे लाखों नवयुवक मिल जायेंगे जो इस शिक्षा के कारण पैतृक काम करने में भी अक्षम हो चुके हैं और कोई हुनर न होने की वजह से नौकरी के लिए भी तरस रहे हैं क्योंकि इस कौशल विहीन शिक्षा प्रणाली में उन्हें यह सब नहीं सिखाया।

सरकार द्वारा मिड डे मील योजना तब हंसी का पात्र बनती है जब उसमें भी भ्रष्टाचार नेतागण अथवा स्कूल अधिकारी मिलावट करते हैं और जहरीला खाना परोस देते हैं। मिड डे मील योजना ग्रामीण लोगों को अपने बच्चों को खाना खाने के लालच में स्कूल भेजने तक तो अच्छा विकल्प है, लेकिन स्कूल के बाद क्या? एक समय का अच्छा भोजन दूसरे समय की भूख तो नहीं

मिटा सकता बल्कि पूरी जिंदगी के लिए भूखा व आपाहिज कर रहा है।

ग्रामीण क्षेत्रों में ही नहीं अपितु समस्त शिक्षा पद्घति ऐसी होनी चाहिए जो विद्यार्थी को केवल यह न बताये कि अकबर के पिता का नाम क्या था बल्कि यह भी सिखाये कि उनकी मां द्वारा बने शाल को शहरों में किस प्रकार अच्छे दामों में बेचा जाये तथा घर में पाली जा रही मुर्गियों के अंडों को केवल खाने के लिए नहीं, बल्कि उसके चूज़ों को बाजार में बेचकर, कैसे आय अर्जित की जा सकती है। यह एक छोटी किंतु महत्वपूर्ण बात है। गांधी जी द्वारा शुरू की गई 'नई तालीम' शिक्षा पद्घति को प्रोत्साहन मिलने का कारण, छात्रों को पढ़ाई के साथ–साथ रोजगार को आगे बढ़ाने के अवसर हेतु प्रशिक्षण प्रदान करना भी था। सोच कर देखिये, यदि बालक अपने पिता के व्यवसाय को बढ़ाने के नये गुर व तकनीक विद्यालय में सीखता है, तो उसके पिता को यह जागरूक करने की आवश्यकता नहीं कि उसे उच्च शिक्षा भी दिलवायें, अपितु वह स्वयं अपने बच्चे को प्रोत्साहित करेंगे तथा गांव के अन्य लोगों को भी अपने बच्चों को पढ़ाने की प्रेरणा देंगे।

भारत को ऐसी ही शिक्षा पद्धति की आवश्यकता है जो विद्यार्थी को विभिन्न स्तरों के उत्तीर्णता प्रमाण पत्र व डिग्रीयां देने के साथ-साथ कुछ विशेष तकनीक व प्रबंधन कार्यकलापों में इस तरह दक्ष बनाये कि डिग्री स्तर एवं उसके आगे की उच्चतर शिक्षा अध्ययन के समय वे अपना समस्त खर्च स्वयं वहन कर सके तथा कैरियर के दृष्टिकोण से स्थायी तौर पर अपने पैरों पर खड़े हो सके। वर्ष 2007 में 50 करोड़ युवाओं को प्रशिक्षित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया, लेकिन वर्षों बाद भी यह काफी दूर है।

निष्कर्ष

शिक्षा वह कुंजी है जिसमें समाज, राजनीति, राष्ट्र, अर्थव्यवस्था तक सभी विवादित प्रश्नों के हल पाये जा सकते हैं। शिक्षा वह दवा है जिससे गरीबी, कुपोषण, भ्रष्टाचार, आंतकवाद जैसी बीमारियों को दूर किया जा सकता है। शिक्षा वह दीपक है जो फसल खराब होने के डर से सताये किसानों की अंधियारी कुटिया में रोशनी कर दे। शिक्षा तो वह समुद्र है जिसमें जब–जब जिस देवता रूपी शिक्षक,चाण्क्य, श्री राम कृष्ण परमहंस ने मंथन किया तो महान चंद्रगुप्त, स्वामी विवेकानंद सरीखे रत्न अवतरित हुए। शिक्षा वह मार्ग है जो भटके हुए मनुष्यों को उनके सही लक्ष्य तक पहुंचाता है। भारतीय शिक्षा प्रणाली को समर्थ बनाने का यह मंथन, शंखनाद है उस पुरानी, पारंपरिक, अंको तथा ग्रेड पर आधारित शिक्षा प्रणाली को खंडित करने का, जो इंसान नहीं, मानवीय संवेदनाओं रहित मशीन तैयार करती है और आगाज है, ऐसे सुदृढ़, फौलादी तथा आत्मविश्वास से लवरेज व्यक्तित्वों का, जिनकी लौहे की नसें, वज्र से मजबूत शरीर और इंसानियत भरे मासूम हदय फिर से समूचे विश्व को एकता के सूत्र में पिरोयेंगे और भारतवर्ष को समर्थ राष्ट्र बना विश्वगुरू का सम्मान दिलायेंगे।

संदर्भ

- बालाचंदर, के.के. (1986) हायर एजूकेशन इन इंडियाः क्वेस्ट फॉर इक्वैलिटी एंड इक्विटी. मेनस्ट्रीम।
- ब्रिटिश काउंसिल, (2014). अंडरस्टैंडिंग इंडिया-द फयूचर आफ हायर एजूकेशन एंड ओपरच्यूनिटीज़ फार इंटरनेशनल कापरेशन।

- ड्वेक, सी. एस. (2006). माइंडसेटः द न्यू साइकालोजी आफ सक्सेस, न्यूयॉर्क, एनवाई, यूएसः रैंडम हाउस।
- भारत में उच्च शिक्षाः बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-17) और उससे आगे फिक्की उच्च शिक्षा शिखर सम्मेलन (2012)।
- कुमार अनुज और अंबरीश. (2015). उच्च शिक्षाः विकास, चुनौतियां और अवसर, अंतर्राष्ट्रीय जर्नल ऑफ आर्ट्स, मानविकी और प्रबंधन अध्ययन, खंड 01, नंबर 2, फरवरी 2015।
- नेक्सस नोवस: ए हायर एजूकेशन ओपरच्यूनिटीज इन इंडिया. https://nexusnovus.com/higher&educationopprotunites-India. 2013 को एक्सेस किया गया।
- शर्मा, साहिल और शर्मा, पूर्णेंदु, भारतीय उच्च शिक्षा प्रणालीः चुनौतियां और सुझाव, इलेक्ट्रॉनिक जर्नल फार इंक्लूसिव ऐजुकेशन, वॉल्यूम 3, नंबर 4, 2015, पृष्ठ सं. 3-4।

सूचना प्रौद्योगिकी और हिंदी भाषा

डॉ. सचिन गपाट
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग,
मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई

वर्तमान युग सूचना प्रौद्योगिकी का युग है । सूचना विस्फोट इसका बीजमंत्र है। आज सारा संसार सूचनाओं के निरंतर प्रेषण पर टिका है । यह सूचना प्रौद्योगिकी एक विशाल शक्ति के रूप में उभर कर आई है। नए सहस्त्रक में इसका आश्चर्यजनक विकास हुआ है । इसकी परिधि व्यापक, विशाल और विस्तृत हुई है। सूचनाओं के संकलन से लेकर उसके प्रेषण तक की क्रिया में आमूलचूल परिवर्तन हुआ है। कम्प्यूटर, इन्टरनेट, ई-मेल, प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, टेलिप्रिंटर, फ़ैक्स, मोबाईल, एस एम एस, एम एम एसआदि साधनों के बलबूते पर सूचना प्रौद्योगिकी ने सशक्त रूप धारण कर लिया है । इसमें सूचनाओं का उत्पादन, विश्लेषण, भंडारण, संचरण नई तकनीक के आधार पर हो रहा है । इसकी विकास प्रक्रिया दिन-प्रतिदिन तीव्रतर हो रही है।

सूचना विस्फोट के इस युग में हिंदी भाषा नई दिशा की ओर अग्रसर हो रही है। नए अनुसंधान के अनुसार बोलनेवालों की दृष्टि से हिंदी विश्व स्तर पर प्रथम भाषा का दर्जा पा चुकी है।

जानने वालों की संख्या अधिक होने के कारण हिंदी अब संचार, प्रचार-प्रसार की भाषा बन रही है। भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने अब सरकारी दफ्तरों में प्रयुक्त होने वाली हिंदी को बदलने केलिए अवश्य प्रयास तेज कर दिए हैं । "दफ्तरों में इस्तेमाल होने वाले कठिन हिंदी शब्दों की जगह उर्दू, फ़ारसी, सामान्य हिंदी और अँग्रेज़ी के शब्दों का उपयोग करने के निर्देश दिए हैं।" जनसामान्य तक ज्ञान और सूचना पहुँचाने की दृष्टि से हिंदी को सहज, सरल और प्रेषणीय बनाने की ज़ोरदार पहल हो रही है।

कम्प्यूटर के कारण आज सूचनाओं का संकलन, विश्लेषण, भंडारण और संप्रेषण आसान हो गया है । हिंदी भाषा का प्रयोग व्यापक रूप में कम्प्यूटर पर हो रहा है । टंकण, मुद्रण और कम्प्यूटर का नियंत्रण हिंदी में सहज संभव हो रहा है । हिंदी में वर्तनी संशोधक विकसित हुआ है और हो रहा है । इन्टरनेट और ई-मेल भेजने और प्राप्त करने की सुविधा हिंदी में उपलब्ध हो गई है। हिंदी भाषा में आज अनगिनत वेबसाईट उपलब्ध हैं। इन वेबसाईटों पर हिंदी की समस्त विधाएँ, पुस्तकें, पत्रिकाएँ और ब्लॉग प्रस्तुत हैं । फेसबुक में भी अब हिंदी का प्रयोग हो रहा है । वर्तमान समय में हिंदी की ऑनलाईन पुस्तकों का प्रकाशन, विज्ञापन तथा ख़रीद इन्टरनेट के माध्यम से हो रही है । इन्टरनेट के माध्यम से आज हिंदी भाषा को किसी भी स्थान से सीखा जा सकता है । विश्व के किसी भी कोने में हिंदी की किताबों, पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ा जा सकता है और उनका संपादन, लेखन भी किया जा सकता है । हिंदी अनुवाद की दृष्टि से भी इन्टरनेट महत्त्वपूर्ण बन गया है। विविध भाषाओं से हिंदी में तथा अनेक लिपियों को देवनागरी लिपि में परिवर्तित करने की सुविधा इन्टरनेट मुहैया कर रहा है। अनेक हिंदी शब्द कोश और विश्वकोश इन्टरनेट पर उपलब्ध हैं। विकीपीडिया के

प्रारंभ से तो हिंदी की अकूत सामग्री इन्टरनेट पर प्राप्त हो रही है । इससे एक ओर हिंदी का विकास, प्रचार-प्रसार हो रहा है तो दूसरी ओर हिंदी व्यापक रूप में संप्रेषण की भाषा बन रही है ।

सूचना क्रांति के इस दौर में हिंदी भाषा संचार की भाषा बन गई है । जनसंचार के माध्यमों ने हिंदी को व्यापक भूभाग पर फैलाया है । संचार माध्यमों के कारण हिंदी बोलनेवालों की तथा ग्रहण करनेवालों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है । कम्प्यूटर, इन्टरनेट, ई-मेल, फ़ैक्स, पेजर, उपग्रह इन नव इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में हिंदी का प्रयोग निरंतर बढ़ रहा है । टी.वी, फ़िल्म औरएफ. एम. रेडियो की भाषा के रूप में हिंदी को पहचान मिल रही है। "हिंदी भाषा का अंतरर्राष्ट्रीय रूप बनाने में इन संचार माध्यमों का बहुत बड़ा योगदान है।"

आज टी.वी. पर लगभग दो सौ चैनल हैं जिनमें अधिकांश हिंदी के हैं । दूरदर्शन तो हिंदी के प्रचार-प्रसार वाला सशक्त माध्यम सिद्ध हुआ है । आज हिंदी की बढ़ती लोकप्रियता के कारण स्मॉल वंडर जैसे विदेशी कार्यक्रम हिंदी में डब हो रहे हैं । समाचार, डिस्कवरी, नेशनल ज्योग्राफिक और कार्टून चैनल अपना प्रसारण हिंदी में कर रहे हैं । टी. वी. से प्रसारित होनेवाले हिंदी धारावाहिक विश्व में लोकप्रिय हो रहे हैं । ये विशेष रूप से हिंदी भाषा को लोकप्रिय बनाने में बहुत सफल रहे हैं । इससे हिंदी की शब्द संपदा बढ़ रही है । समाचार, लेखन वार्ता, कथा, साक्षात्कार आदि का महत्त्व बढ़ रहा है । हिंदी की भाषिक व लिखित समृद्धि हो रही है। हिंदी अनुवाद की भाषा बनकर पूरे विश्व को जोड़ रही है । हिंदी भाषा की शैली व प्रस्तुति में परिवर्तन हो रहा है। उद्योगपति अपने बाज़ार की संभावना को देखकर हिंदी को प्रयोग में ला रहे हैं ।

इससे बहुतों को हिंदी के बलबूते पर रोज़ी रोटी मिल रही है । हिंदी अब रोज़गार की भाषा बन गई है ।

जनसंचार के क्षेत्र में हिंदी नयी ढली हुई करेंसी की तरह आकर्षक और उपयोगी बन गयी है। इसी के चलते इसका प्रचलन बढ़ रहा है । सारे टी.वी. चैनलों को यह बात समझ में आ गई है कि यदि हिंदी का सहारा नहीं लिया तो टिक नहीं पाएँगे । विज्ञापन और समाचार जगत से जुड़े लोगों का मानना यह है कि एक बहुत बड़ा दर्शक वर्ग है जो अपनी बात हिंदी में सुनता-समझता है और चाहता भी है । इस कारण टी. वी. पर हिंदी चल रही है और उसका विस्तार हो रहा है ।

प्रभावी विद्युतीय संचार माध्यम फ़िल्म ने हिंदी की स्थिति को विश्व स्तर पर मज़बूत कियाहै । फ़िल्म उत्पादन में भारत का पूरे विश्व में दूसरा स्थान रहा है । इन फ़िल्मों में अधिकांश फ़िल्में हिंदी की होती हैं । अंतरर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी फ़िल्म उद्योग को 'बॉलीवुड' के नाम से जाना जाता है। बॉलीवुड की 'लगान' जैसी हिंदी फ़िल्में प्रतियोगिता में शामिल होना हिंदी की दृष्टि से सुखद है। 'दो आँखें बारह हाथ', ' शोले', 'अंकुर', 'प्रेम रोग', 'कामसूत्र', 'ख़ूबसूरत', 'चाँदनी', 'ज़ंजीर', 'बॉर्डर', 'तारे जमी पर' आदि हिंदी की अविस्मरणीय फ़िल्में हैं। इन फ़िल्मों ने हिंदी प्रेमी दिए हो या नहीं किंतु इस संचार माध्यम ने भारत वर्ष के साथ ही साथ पूरे विश्व में हिंदी को पहुँचाने का कार्य किया है ।

रेडियो ने अपना पुराना रूप बदल दिया है । एफ. एम. पर बजने वाले गीत-संगीत से हिंदी का प्रचार प्रसार हो रहा है । हिंदी एफ. एम. के लोग दीवाने हो गए हैं । आकाशवाणी ने तो अपना अलग हिंदी प्रभाग -'समाचार व सूचना संग्रहण' के लिए प्रारंभ कर

दिया है । आकाशवाणी से प्रतिदिन इकतीस हिंदी समाचार बुलेटिन प्रसारित किए जाते हैं । जिनमें से छः तो अंतरर्राष्ट्रीय चैनल पर भी प्रसारित होते हैं । आकाशवाणी पर स्थानीय रंगत के साथ ही साथ हिंदी के ज्यादातर कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है।

हिंदी के प्रति प्रिंट मीडिया भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है । प्रिंट मीडिया ने हिंदी को लिखित रूप दिया है । आज प्रिंट मीडिया का बहुत विस्तार हुआ है । सूचनाओं को लोगों तक पहुँचाने के लिए इसने इन्टरनेट को अपनाया है । आज सर्वाधिक समाचार पत्र हिंदी में प्रकाशित हो रहे हैं और इन्हें इन्टरनेट पर पढ़ना भी संभव हो गया है । "हिंदी भाषा आज प्रिंटमीडिया में भी अपनी शब्द संपदा बढ़ा रही है । नये शब्दों का निर्माण एवं वाक्य रचनाएँ, कई स्तरों पर भाषा को परिष्कृत व संस्कृत कर रही हैं।"

सूचना प्रौद्योगिकी के चलते हिंदी राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहुँच गई है । इन्टरनेट के साथ ही साथ वह अब मोबाईल और एस एम एस और एम एम एस की भाषा बन गई है। अपने उत्पादनों को लोगों तक पहुँचाने के लिए हिंदी विज्ञापन की प्रमुख भाषा बन गई है। इससे एक नई व्यावसायिक हिंदी प्रचलित हो रही है। विज्ञापनों के माध्यम से हिंदी घर-घर पहुँच रही है ।

सूचना क्रांति के प्रभाव से अब हिंदी की संरचना पूरी तरह से बदल गई है । संचार माध्यमों के आधार पर हिंदी के नए-नए रूप बन रहे हैं। माध्यमों के अनुसार हिंदी में परिवर्तन हो रहा है। माध्यमों को प्रभावी रूप में अभिव्यक्त करने के लिए हिंदी ने अनेक कुशलताओं को प्राप्त कर लिया है । किंतु इससे हिंदी का रूप बदल गया है । उसमें कई भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हो रहा है । अँग्रेज़ी

का प्रयोग तो इतना बढ़ गया है कि हिंदी हिंग्लिश बन रही है । लेकिन हिंदी के विकास के लिए यह आवश्यक भी लग रहा है । क्यों कि अँग्रेज़ी ऑक्सफोर्ड शब्दकोष ने हिंदी के 'किसान', 'बंद', 'मज़दूर', 'धरना', 'गुरु' आदि शब्दों को अपनी डिक्शनरी में शामिल कर लिया है। सूचना प्रौद्योगिकी के युग में हिंदी के विकास हेतु हमें शुद्धतावाद की हठवादी भूमिका को छोड़ना पड़ेगा। "नहीं तो शुद्धतावाद के लिए हठवादी भूमिका लेना हिंदी का गला घोंटने के समान होगा।"

हिंदी की अपनी लिपि देवनागरी है किंतु आज रोमन लिपि का प्रयोग हो रहा है । अर्थात् लोग हिंदी में बोल रहे हैं किंतु देवनागरी के स्थान पर रोमन लिपि का प्रयोग कर रहे हैं । हिंदी की लिपि में यह बदलाव सूचना प्रौद्योगिकी के कारण आया है जो नए अनुसंधान की माँग करता है ।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि सूचना प्रौद्योगिकी के कारण हिंदी का केवल भारतमें ही नहीं तो विश्व में प्रचार-प्रसार हो रहा है । हिंदी अब कम्प्यूटर, इन्टरनेट, ई-मेल और जनसंचार माध्यमों की भाषा बन गई है। दूरदर्शन और टी.वी. के अनेक चैनल हिंदी को लोगों तक पहुँचा रहे हैं। हिंदी फ़िल्में भी यह भूमिका निभा रही हैं । प्रिंट मीडिया के कारण हिंदी का लिखित रूप अमर बन गया है ।

हिंदी भाषा अब अंतरराष्ट्रीयता की ओर चल पड़ी है विज्ञान, चिकित्सा, व्यवस्थापन का ज्ञान अब हिंदी में आ चुका है । किंतु हिंदी के रूप में परिवर्तन हो रहा है। उसकी लिपि बदल रही है। 'टाइम्स न्यू रोमन' की तरह हिंदी में कोई वैश्विक फॉंट तैयार नहीं हो रहा है। टंकण की दिक्कत के कारण लोग हिंदी के लिए रोमन

लिपि का प्रयोग कर रहे हैं। सूचना प्रौद्योगिकी से एक ओर हिंदी का विस्तार हुआ है तो दूसरी ओर उसका रूप परिवर्तित हो रहा है । किंतु हिंदी को राष्ट्रभाषा, विश्व भाषा और राष्ट्रसंघ की भाषा बनाने की दृष्टि से सूचना प्रौद्योगिकी का यह कार्य अनूठा है, इसमें कोई शक नहीं ।

सामाजिक विज्ञान में शिक्षण एवं मूल्यांकन : एक विश्लेषण

डॉ .संजय प्रसाद श्रीवास्तव
जूनियर रिसोर्स पर्सन/लेक्चरर ग्रेड
(हिंदी) राष्ट्रीय परीक्षण सेवा-भारत
भारतीय भाषा संस्थान, मानसगंगोत्री,
मैसूर 570006, कर्नाटक

सामाजिक विज्ञान में मानव समाज का अध्ययन किया जाता है। प्राकृतिक विज्ञान के अतिरिक्त अन्य विषयों की एक सामूहिक विधा का नाम सामाजिक विज्ञान है। इसके अंतर्गत नृविज्ञान (Anthropology), पुरातत्व (Archaeological), अर्थशास्त्र (Economics), भूगोल (Geography), इतिहास (History), विधि (Law), भाषा विज्ञान (Linguistics), राजनीति-शास्त्र (Political Science), समाज-शास्त्र (Sociology), अंतरराष्ट्रीय अध्ययन (International Studies) और संचार (Communication) आदि विषय सम्मिलित होते है। कभी-कभी मनोविज्ञान (Psychology) को इसके अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है।

वस्तुतः सामाजिक विज्ञान का प्रारंभ संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ। प्रारंभ में इस विषय को सामाजिक अध्ययन के

रूप में जाना जाता था। अतः इस विषय के अंतर्गत इतिहास अर्थशास्त्र और राजनीति शास्त्र आते थे। यह नामकरण सन् 1982 में किया गया।

सामाजिक विज्ञान शिक्षण का उद्‌देश्य बच्चों को एक नैतिक और मानसिक उर्जा को प्रदान करना है। इससे छात्र स्वतंत्र रूप से चिंतन कर सके। साथ ही सामाजिक व्यवहार में विमर्श कर सके।

सामाजिक विज्ञान वह विज्ञान है, जो मानव के सामाजिक व्यवस्था एवं संस्थानों के संबंध का अध्ययन करता हो।

शिक्षा मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाती है। शिक्षा समाज में संस्कृति एवं मूल्य पद्‌धति के संरक्षण हेतु महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। किसी भी राष्ट्र और समाज को विकसित करने में शिक्षा व्यवस्था सबसे अधिक सहायक सिद्‌ध होती है।

सामाजिक विज्ञान में शिक्षण की रूपरेखा

- सामाजिक विज्ञान के शिक्षण में समाज की संरचना एवं शासन साथ ही जिस समाज में हम रहते है, आदि को समझने में सहायक होती है।
- सामाजिक विज्ञान के शिक्षण द्‌वारा हम भारतीय संविधान में निहित मूल्यों को समझ सकते है; जैसे–न्याय, स्वतंत्रता, समानता, एकता, राष्ट्रीय एकीकरण, लोकतंत्र।
- समाज का एक सक्रिय, जिम्मेदार नागरीक बन सकते है। साथ ही जीवन शैली, सांस्कृतिक रीति-रिवाज को समझने में सहायक होता है।

- अगर प्राथमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञान शिक्षण की बात करें तो बच्चों में प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण की समझ को विकसित करना।
- सामाजिक विज्ञान शिक्षण के अंतर्गत वैश्विक संदर्भ में अपने क्षेत्र, प्रदेश और देश का अध्ययन करने के लिए छात्रों को प्रेरित किया जाता है।

अतः सामाजिक विज्ञान में मानवीय संबंधों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्षों का वर्णन मिलता है। सामाजिक विज्ञान, भाषा एवं साहित्य से संबंधित कौशलों एवं योग्यताओं के विकास हेतु विषयवस्तु प्रदान करता है। जे.एफ. फोरेस्टर के अनुसार, "जैसा कि नाम से संकेत मिलता है, सामाजिक अध्ययन समाज का अध्ययन है और इसका मुख्य लक्ष्य बालकों को अपने चारों ओर के संसार को तथा इसका निर्माण कैसे हुआ समझने में सहायता करता है ताकि वे उत्तरदायित्वपूर्ण नागरिक बन सके।" दूसरी ओर मानवीय संबंधों के निर्माण में सामाजिक विज्ञान की भूमिका महत्वपूर्ण है। जेम्स हैमिंग के अनुसार, "यह वर्तमान का अतीत से, स्थानीय का दूरवर्ती से तथा व्यक्तिगत जीवन का राष्ट्रीय जीवन से संबंध जोड़ने के अतिरिक्त संसार के विभिन्न भागों में बसे लोगों के जीवन व संस्कृति से भी हमारा संबंध स्थापित करता है।"

सामाजिक विज्ञान के शिक्षण में प्रश्नावली के माध्यम से अध्यापक छात्रों से विषय से संबंधित प्रश्न पूछते है। अतः उनके आधार पर वह छात्रों के विषय संबंधी ज्ञान को और अधिक सुदृढ़ करता है। कक्षा में अध्यापक द्वारा तत्कालीन घटनाओं से संबंधित चार्ट, मानचित्र आदि के माध्यम से विषय के प्रति आकर्षित किया जाता है। सामाजिक विज्ञान द्वारा छात्रों में परिवार, समाज, राष्ट्र

तथा राष्ट्र संबंधी सामाजिक बातों और समस्याओं की समझ विकसित होती है। साथ ही छात्रों को समस्या का समाधान ढूँढ़ने के योग्यता को भी विकसित करता है। छात्रों में आलोचनात्मक चिंतन को भी विकसित किया जाता है। सामाजिक अध्ययन के द्‌वारा छात्रों में तर्क-वितर्क एवं वाद-विवाद विकसित होता है।

मूल्यांकन शिक्षण प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है। मूल्यांकन दो शब्दों के मेल से बना है, मूल्य तथा अंकन। अतः मूल्य का अंकन करना ही मूल्यांकन कहलाता है। एडम्स के अनुसार, "मूल्यांकन निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया विद्‌यर्थियों की औपचारिक शैक्षणिक उपलब्धि तथा विकास संबंधी परिवर्तनों की व्याख्या करता है।" सामाजिक विज्ञान की शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में मूल्यांकन की महत्वपूर्ण भूमिका है।

मूल्यांकन प्रक्रिया में व्यक्तित्व संबंधी परिवर्तनों एवं शैक्षिक कार्यक्रम के मुख्य उद्‌देश्यों पर ध्यान दिया जाता है।

मूल्यांकन का उद्‌देश्य

- मूल्यांकन छात्रों के व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों का ज्ञान कराता है।
- शिक्षण के उद्‌देश्यों का ज्ञान मूल्यांकन द्‌वारा ज्ञात किया जाता है।
- मूल्यांकन द्‌वारा छात्रों की क्षमताओं को ज्ञात किया जाता है।
- मूल्यांकन द्‌वारा शिक्षक की क्षमता एवं योग्यता को ज्ञात किया जा सकता है।
- मूल्यांकन द्‌वारा पाठ्‌यक्रम में संशोधन एवं सुधार किया जा सकता है।

- मूल्यांकन का उद्देश्य निर्णय करना होता है।
- पाठ्यक्रम की समाप्ति पर छात्रों की उपलब्धि को ग्रेड अथवा अंक के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है।

मूल्यांकन की पद्धतियाँ

- निरीक्षण प्रविधि
- घटनावृत
- प्रश्नावली
- साक्षात्कार एवं परीक्षा प्रविधि

पाठ्यक्रम तथा मूल्यांकन में अभिन्न संबंध को देखते हुए स्करीवन (Scriven) ने 1967 रचनात्मक मूल्यांकन (Formative) तथा संकलनात्मक मूल्यांकन (Summative) के बारे में चिंतन किया।

रस्किन के अनुसार, "रचनात्मक अंकन पूरे शिक्षण सत्र में चलनेवाली प्रक्रिया है, जिससे इस तथ्य का निर्धारण किया जाता है। किसी निश्चित कार्य को पूर्ण करने में छात्र ने कितनी प्रगति की है।"

अत: रचनात्मक मूल्यांकन का सम्बन्ध कार्यक्रम के अभिकल्प और विकास से होता है जो कार्यक्रम के पूर्व संशोधन एवं सुधार की निर्देशित किए जाते हैं ।

रचनात्मक मूल्यांकन (Formative Evaluation) की विशेषताएँ

- रचनात्मक मूल्यांकन शैक्षिक कार्यक्रम तथा नीति निर्धारण में सहायक सिद्ध होता है।
- इसके माध्यम से शिक्षण प्रक्रिया में परिवर्तन एवं सुधार किया जाता है।

संकल्पनात्मक मूल्यांकन (Summative Evaluation)

संकल्पनात्मक मूल्यांकन सत्र के अंत में किया जाता है। इसमें छात्र ने वर्ष भर जो भी क्रियाकलाप करता है, साथ ही ज्ञान प्राप्त करता है, उस निर्धारित विषय में उसने कितना ज्ञान अर्जित किया है, साथ ही उसकी प्रगति क्या है, इन सभी को हम संकल्पनात्मक मूल्यांकन के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।

संकल्पनात्मक मूल्यांकन का संबंध पाठ्यक्रम मूल्यांकन से भी है। अतः छात्रों का सर्वांगीण विकास इस पर निर्भर करता है। पाठ्यपुस्तक की सभी इकाइयों का शिक्षण कराने के बाद संकल्पनात्मक मूल्यांकन किया जाता है, इससे चात्रों की सफलता के आधार पर शिक्षण व शिक्षणकार्य को और अधिक प्रभावशाली बनाया जाता है।

संकल्पनात्मक मूल्यांकन की विशेषताएँ

- संकल्पनात्मक मूल्यांकन का संबंध पाठ्यक्रम के परिणाम का मूल्यांकन करना है।
- यह मूल्यांकन शैक्षिक-सत्र के अंत में किया जाता है।
- इससे शिक्षक के द्वारा किये गये संपूर्ण प्रयासों के प्रभावों का अध्ययन किया जाता है।

अतः छात्र की सीखने की क्षमता, योग्यता, रुचि आदि का निर्धारण मूल्यांकन के द्वारा किया जाता है। सामाजिक विज्ञान में जैसे–सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन, सत्रांत परीक्षा, स्व-आकलन, समूह आकलन होता है।

सामाजिक विज्ञान में शिक्षण एवं मूल्यांकन का महत्वपूर्ण कार्य है। शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में शिक्षक आंकलन (Assessment) एवं मूल्यांकन (Evaluation) को शिक्षण कार्य में

उपयोग करता है। सामाजिक विज्ञान में चार प्रकार के मूल्यांकन द्वारा शिक्षण व अधिगम प्रक्रिया को समझा जा सकता है।

- स्थापन मूल्यांकन : इस मूल्यांकन के द्वारा विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान को मापने हेतु शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के पूर्व किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य छात्र के पूर्व ज्ञान से संबंधित है। अतः स्थापन मूल्यांकन का प्रयोग "प्रवेश व्यवहार" में होता है। इस मूल्यांकन से शिक्षण-अधिगम गतिविधियों को आयोजित करने में सहायता करता है।
- रचनात्मक मूल्यांकन: सर्वप्रथम सन् 1967 में माइकेल स्क्रीबेन पाठ्यचर्या मूल्यांकन के क्षेत्र में रचनात्मक मूल्यांकन की अवधारणा को प्रयोग में लाया जाता है। रचनात्मक मूल्यांकन के द्वारा छात्रों के अधिगम प्रक्रिया में ध्यान रखना है। इससे यह पता चलता है अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। उदाहरण स्वरूप शिक्षकों के नियमित कक्षा कक्ष, अवलोकन, इकाई के अंत में परीक्षा, मासिक परीक्षा, त्रैमासिक परीक्षा, अर्द्ध वार्षिक परीक्षा आदि। यह सतत एवं व्यापक मूल्यांकन का अभिन्न अंग है।
- नैदानिक मूल्यांकन: नैदानिक मूल्यांकन अधिगम कठिनाइयों की पहचान करने तथा समाधान करने हेतु प्रयोग में लाया जाता है। उदाहरण स्वरूप यदि एक छात्र सामाजिक विज्ञान विषय में किसी पाठ के विषय वस्तु को नहीं समझ पाया है, तो उन्हें इन अवधारणाओं को समझने में सहायता करने हेतु नैदानिक मूल्यांकन के माध्यम से उपचार प्रदान किया जाता है।

- योगात्मक मूल्यांकन : योगात्मक मूल्यांकन द्वारा छात्रों के अंतिम व्यवहार को जानने के लिए किया जाता है। योगात्मक मूल्यांकन में प्रमुख शब्द "प्रमाण-पत्र" होता है। संपूर्ण पाठ्यक्रम के समाप्ति के बाद योगात्मक मूल्यांकन का सहयोग लिया जाता है। योगात्मक मूल्यांकन के आधार पर विद्यार्थी प्रमाण-पत्र प्राप्त करते है और अगली कक्षा के लिए प्रोन्नत किए जाते है।

  इस प्रकार सामाजिक विज्ञान में सहपाठी एवं समूह मूल्यांकन, खुली पुस्तक परीक्षा, पोर्टफोलियों एवं ई-पोर्टफोलियों आदि की सहायता ली जाती है।

अतः सामाजिक विज्ञान की शिक्षा को अधिक सार्थक, सुसंगत और प्रभावी बनाने के लिए वर्तमान में विश्व की समस्याओं एवं ज्वलंत मुद्दों का सर्वाधिक महत्व दिया जाना चाहिए। इससे छात्रों में समकालीन विश्व की समस्याओं की समझ विकसित होगी। सामाजिक विज्ञान में मानवीय संबंधों के निर्माण का अद्यतन किया जाता है। जैसा हेमिंग के अनुसार, "यह वर्तमान का अतीत से, स्थानीय का दूरवर्ती से तथा व्यक्तिगत जीवन का राष्ट्रीय जीवन से संबंध जोड़ने के अतिरिक्त संसार के विभिन्न भागों में बसे लोगों के जीवन व संस्कृति से भी हमारा संबंध स्थापित करता है।"

संदर्भ

1. पाठ्यक्रम शिक्षण-शास्त्र एवं मूल्यांकन-सुमन लता, एच.एल. खत्री, शिप्रा प्रकाशन, दिल्ली संस्करण-2018।
2. मापन/आकलन एवं मूल्यांकन, डॉ. हंसराज पाल, संस्करण-2009, मंजुलता शर्मा, शिप्रा प्रकाशन, दिल्ली।
3. पाठ्यचर्या और शिक्षण की विधियाँ, एच.एस. श्रीवास्तव, शिप्रा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2014।

समकालीन हिंदी उपन्यास : आदिवासी समाज

डॉ. सविता डहेरिया
टाईप 4, ए 6,
विश्वविद्‌यालय परिसर,
इ.गा.रा.ज.वि.वि.,
अमरकंटक

देश की अनेक जनजातियाँ तथा आदिवासी आज भी आदिम अवस्था में जी रहे हैं। आज भी मध्यप्रदेश का 'पाताल कोट' भारत में शेष है जो चारों ओर पर्वत मालाओं से घिरा दो-ढ़ाई किलोमीटर नीचे गड्‌ढे में बसा है। यहाँ पहाड़ी कंदराओं में आदिवासियों के कई समूह रहते हैं, सभ्यता ही नहीं, सभ्य समाज भी इनसे कोसों दूर है। कई गुफाएं ऐसी हैं, जिनमें प्रकाश की किरणें भी शायद कभी पहुँचती हों । पहाड़ पर बड़े- बड़े वृक्ष हैं, जिनकी जड़े नीचे तक जाती हैं। नमक के बदले महंगी वन की उपज देते हैं। नमक और वन की कीमती उपज की अदला-बदली की व्यवस्था, विषमता, अन्याय और शोषण की कहानी कहती है। कभी घुमन्तु, कभी अपराधी तो कभी असभ्य बनकर गुमनाम जीवन जीने को मजबूर है।

जब तक हर व्यक्ति को उसका जन्मसिद्‌ध अधिकार नहीं मिल जाता, तब तक कथा साहित्य मनुष्य के पक्ष में प्रतिपक्ष की

भूमिका निभाता रहेगा, उसका हक नागरिकता तथा आत्म सम्मान पाने का है। अभिव्यक्ति की ताकत अगर मनुष्य को पशु से अलग करती है तो साहित्य उसे दिशा देता है। आज सूचना और प्रौद्योगिकी के युग में जब हम विश्वग्राम के निवासी हैं। उसके हर कोने की जानकारी से पूर्ण ज्ञानी होने का दंभ पाले हैं, किसी भी हिस्से में घटने वाली घटना से दुखी और करूणार्द्र होने का नाटक करते हैं, ऐसे में अपने आसपास के जीवन को कितना जानते हैं? आज आवश्यकता जरूरी सवालों को नए-नए ढंग से उठाने की है, वरना नकली सवालों की भीड़ लगाकर असली को दरकिनार करने वालों की भारी भीड़ है। दुनिया की तेज रफ्तार में हमारे देश में, देश का एक बड़ा वर्ग पीछे छूट गया है। देश की अनेक जनजातियाँ तथा आदिवासी समाज आज भी आदिम अवस्था में जी रहे हैं। देश कुल जनसंख्या का लगभग पंद्रहवां भाग (आदिवासी एवं जनजाति) आजादी के बहत्तर वर्ष बाद भी गुमनाम जीवन जी रहा है। इन्हीं के नाम पर करोड़ों, अरबों रूपये आवंटित हुए हैं, और हो रहे हैं, लेकिन इनकी दशा में अभी भी गुणात्मक विकास दिखाई नहीं पड़ता । शासन इन्हें बसने की जगह मुहैया नहीं करता, तंबुओं और गाड़ियों में इनके डेरे हैं, आजीविका का कोई साधन नहीं है। आजादी के साथ ही इनकी गूंज सुनाई पड़ी थी, जब रांगेय राघव ने 1949 में 'कब तक पुकारूँ' लिखा था, किन्तु धीरे-धीरे यह स्वर लुप्त हो गया। पिछले पैंतीस-चालीस वर्षों से हाशिए के जीवन में एक क्रांतिकारी बदलाव आया है। और उसकी अभिव्यक्ति भी उसके अनुरूप हो रही है अब आदिवासी जीवन पर बहुतायत लिखा जा रहा है, सोचा जा रहा है, बहस और संवाद की गुंजाइश बन गई है। जंगलों में ठेले गए या वहां से खदेड़े जा रहे आदिवासी या वंचित, भटके, बंजारे, विस्थापित जो प्रकृति के मित्र और सहचर हैं।

आदिवासी जीवन सम्बन्धी उपन्यास लिखने वालों में सबसे पहला नाम जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का लिया जाता है, जिन्होंने सन् 1899 में 'बसंत मालती' उपन्यास लिखा, जो मुंगेर जिले के मलयपुर अंचल के मल्लाहों के आदिवासी जीवन पर आधारित है। हिंदी के प्रारंभिक उपन्यासकारों ने आदिवासी जीवन सम्बन्धी उपन्यास साहित्य के लिए घना जंगल, पहाड़ों और पहाड़ों की खोहों में बसने वाले आदिवासी जीवन को भी खोज निकाला । ऐसे रचनाकारों में ब्रजनंदन सहाय मूर्धन्य स्थान के अधिकारी हैं, उन्होंने 'अरण्यबाला' (1904) उपन्यास लिखकर विंध्याचल के पहाड़ी आदिवासी जीवन-संस्कृति का ताजा चित्र खींचा है। इसी परम्परा में मन्नन द्विवेदी का नाम लिया जाता है, जिन्होंने 'रामलाल' (1904) नामक उपन्यास लिखकर गोरखपुर जिले के बांसगांव तहसील के एक गांव के आदिवासियों की जीवंत घटनाओं को उजागर किया है, उसके बाद अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की कृषि' 'अध खिला फूल' (1907) आती है, जो कहीं-न-कहीं आदिवासी जीवन के कुछ अंशों को लेकर लिखी गई रचना है। वृंदावन लाल वर्मा ने 'कचनार' (1947) के माध्यम से गौंडों अथवा राजगौंड़ों की संस्कृति को हिन्दी साहित्य में एक नया सोपान दिया है। कचनार एक साधारण आदिवासी गौंड नारी है, जो सतत् संघर्षशील एंव व्यथाजनित परिस्थितियों में अपने स्वत्व और स्वाभिमान की रक्षा कर नारी जाति की विलक्षण शक्ति का परिचय देती है। अंग्रेज सरकार के दीर्घकालीन इतिहास में आदिवासियों को हक और नवीनता मिली तो दूसरी ओर शोषण भी सहना पड़ा । धर्म के नाम पर गरीब आदिवासियों को मनचाहे तरीके से लूटा गया। ऐसे उपन्यासों में फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' (1954) का स्थान महत्वपूर्ण है। पूर्णिया जिले के मेरी गंज नमक पिछड़े गांव को लेखक अंकित करते

हैं, जिसमें चारों ओर अवमूल्यन, विघटन, गिरावट और नैतिक मूल्यों के प्रति विद्रोह की पुकार है। आदिवासी विमर्श को आगे बढ़ाने में योगेन्द्रनाथ सिन्हा के उपन्यास 'वनलक्ष्मी' (1956) का महत्वपूर्ण योगदान है, जो बिहार की 'हो' आदिवासी जाति पर आधारित श्रेष्ठ उपन्यास है। उपन्यास धर्मान्तरण की प्रवृत्ति को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। आदिवासी कन्या 'बुदनी' ईसाई धर्म के जेफरन के प्यार में फंस जाती है, उसे 'हो' जाति से निष्कासित किया जाता है, परन्तु माता-पिता के जुर्माना भरने पर मामला दब जाता है। सिन्हा जी का दूसरा उपन्यास 'वन में मन में' भी 'हो' आदिवासी जाति पर आधारित है। 'हो' आदिवासी जीवन पर केन्द्रित अन्य उपन्यासों में गुरूचरण सिंह का 'वनपाखी', कान्हजी तोमर का 'तमाम','जंगल', रामदीन पांडेय का 'चलता पिटारा', भालचन्द्र ओझा का 'सांवला पानी', मनमोहन पाठक का 'गगन घटा घहरानी' आदि उल्लेखनीय हैं। रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूं' (1957) आदिवासी यायावर जाति करनट पर आधारित बड़ा ही मार्मिक उपन्यास है, इसकी कथावस्तु में राजस्थान और ब्रज प्रदेश की सीमा पर बसे गांव 'बैर' के इर्द-गिर्द का प्रदेश उभारा गया है। समाज का सर्वथा उपेक्षित वर्ग जरायम पेशा करनटों के जीवन दर्शन का समग्र चित्रण करने वाली कृति है। 'सुखराम' की चार पीढ़ियों की कथा के माध्यम से लेखक ने उनके रीति-रिवाज, विश्वास, संस्कृति के चित्रण को यथार्थ रूप से प्रस्तुत किया है। हिन्दी के यथार्थवादी उपन्यासकार नागार्जुन का 'वरूण के बेटे' (1957) नये दौर का पहला उपन्यास है। इसमें मिथिला प्रदेश के गरोखर अंचल के मछुआरों की बस्ती की वास्तविकता को उजागर किया है। बलभद्र ठाकुर ने 'मुक्तावली' (1958), 'नेपाल की वो बेटी' (1959), 'देवताओं के दिश में' (1960), 'घने और बने' (1961) तथा 'आदित्य

नाथ' (1962) और 'लहरों की छाती पर' (1962), आदि उपन्यासों में मणिपुर, कुलू, नेपाल, अंडमान निकोबार अंचल के आदिवासियों के सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थिति को सामने रखा है। देवेन्द्र सत्यार्थी के आदिवासी जीवन पर केंद्रित उपन्यास 'ब्रह्मापुत्र' (1956) उपन्यास असम के लोक जीवन पर आधारित है। इसमें 'ब्रह्मापुत्र' नदी के तट पर स्थित पिसांगमुख के निवासियों की सामाजिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों एवं संबंधों का जीवंत चित्र खीचा है। राजेन्द्र अवस्थी के 'सूरज किरण की छाँव' (1958) उपन्यास की कथाभूमि चित्रकूट के पार्श्ववर्ती आदिवासी क्षेत्र को बनाया गया है। शानी के 'साँप और सीढ़ी' (1960) उपन्यास में बस्तर अंचल की हल्बा जाति की एक आदिवासी बाल-विधवा के संघर्षमय जीवन को उठाया गया है। शैलेष मटियानी का 'हवलदार' (1960), सतीश दुबे का 'कुरॉटी,' राजेन्द्र अवस्थी का 'जंगल के फूल' (1969), और 'जाने कितनी आँखें' (1970) तथा राजीव सक्सेना का 'धर्मपुत्री सोमा' (1972), हिमांशु जोशी के 'महासागर' (1973) मणि मधुकर का 'पिंजरे में पन्ना' (1981), राजेन्द्र वत्स का 'जंगल के आस-पास' (1982), बटरोही का 'महर ठाकुरों का गांव' (1984), संजीव का धार' (1990), वीरेन्द्र जैन का 'पार' (1994), भगवान दास मोरवाल का 'काला पहाड़' (1999), मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी' (2000), श्रवण कुमार का 'चक्रव्यूह' राकेश कुमार का 'जहाँ खिले हैं रक्त पलाश' और 'पठार पर कोहरा' मनमोहन पाठक का 'गगन घटा घहरानी' (1991), संजीव का 'पांव तले की दूव' (1995) आदि उपन्यास आदिवासी समाज की गरिमा को प्रदान करते हैं।

गोपालराय ने 'रथ के पहिये' और देवेन्द्र सत्यार्थी को आदिवासी जीवन का पहला उपन्यास मानते हुए लिखा है कि, "आजादी के बाद आदिवासियों के जीवन का चित्रण करने वाले प्रथम

उपन्यासकार देवेन्द्र सत्यार्थी हैं, जिन्होंने रथ के पहिये में मध्यप्रदेश के गौंड़ जनजाति के जीवन यथार्थ का प्रामाणिक और संवेदना सिंचित अंकन किया है।"[1] भले ही इस उपन्यास में आदिवासी चेतना का अभाव रहा हो परन्तु लेखक की दृष्टि उस समुदाय की तरफ निश्चित गई जो समुदाय आदिवासी होते हुए भी उपेक्षित हैं। "हिन्दी के आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यासों को सही दिशा तो झारखंड में लिखे गए उपन्यासों से प्राप्त होती है। झारखंड में लिखे जा रहे कथा साहित्य को अगर कोरे कलावादी रूझान से नहीं जोडें और आदिवासी जाति को कथा भूमि को बानगी के रूप में भी परखने की कोशिश करें तो साहित्य की उस सार्थक भूमिका से परिचय बन सकता है, जहाँ वह देश-काल की सांस्कृतिक समालोचना का कार्य करता हुआ दिखलाई पड़ता है। बेशक, यह वही क्षेत्र है जो देश की भौगोलिक सीमाओं में न केवल खनिज संपदा की दृष्टि से सर्वाधिक सम्पन्न है, बल्कि जहां उन्तीस कबीलों में बंटी वैविध्य पूर्ण आदिवासी संस्कृति चौतरफा दबावों के बीच अपनी अस्मिता की पहचान की लड़ाई लड़ रही है।"[2] झारखंड के आदिवासी साहित्य और साहित्यकारों की बात की जाए तो हम देखते हैं कि "पिछले चार दशकों से हिंदी कथा में, और विशेष तौर पर झारखंडी पठार के कथाकारों में आदिवासी समाज और संस्कृति के प्रति नया रूझान विकसित होता दिखलाई पड़ रहा है। बेशक, इस जन-पक्षीय रूझान और बदलाव का स्वागत होना चाहिए, किंतु इसके समांतर जारी छद्म लेखन और अपलेखन के खतरों के प्रति सतर्कता बरतने की भी उतनी ही जरूरत है। ऐसे भी कथाकार हैं, जिनके पास आदिवासी समाज की समझ व छवि कोलाज शैली की है। कहीं धुधली, कहीं रूमानी, वे आदिवासी समाज की कथा लिख रहे होते हैं, मगर यह जानने-समझने की जहमत नहीं उठाते कि उरांव और मुंडा समाज

हो, गौंड समाज हो या खड़िया या फिर विरहोर या संथाल समाज की जीवन शैली। परिवार, संस्था या आस्था विश्वास में कोई फर्क भी है। सच तो यही है कि जनजातीय समाज और उनका सामुदायिक जीवन भीतर से चाहे जितना उन्मुक्त और खुला हुआ हो, बाहरी लोगों के लिए एक बंद समाज ही है। ऐसे समुदायों के बारे में कथा लेखक की चुनौती यही है कि वह उनकी सामाजिक मान्यताओं, सांस्कृतिक परंपराओं, राजनीतिक, आर्थिक दबावों और बुनियादी संरचनाओं के अंतरंग से गहन साक्षात्कार के बिना संभव नहीं। यही कारण है कि विभिन्न कला रूपों में भी इन समुदायों की उपस्थिति अक्सर सतही और रूमानी हो जाती है।'' [3]

हम यहां कुछ आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों का चित्रण कर रहे हैं -

1. वनलक्ष्मी - योगेंद्रनाथ सिन्हा - वनलक्ष्मी उपन्यास 1956 में हंस प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था। उपन्यास में सिंहभूमि के 'हो' आदिवासियों के जीवन के उपार्जन का साधन एक अंग्रेजी कंपनी मुल हाउस है। यह कंपनी जंगलों की कीमती लकड़ी काटकर उससे फर्नीचर एवं अन्य सामग्री बनाकर बेचती है। इस कंपनी में आदिवासी मजदूर, कम मजदूरी पर काम करने को मजबूर हैं, क्योंकि इसके अलावा उनके पास और कोई रास्ता जीवकोपार्जन का नहीं है। कंपनी में दुख सहकर ये लोग काम पर लगे रहते हैं, और कंपनी के खिलाफ कुछ भी बोलना मतलब नौकरी से हाथ धोना है। कंपनी का मुख्य कार्य, शाल के मोटे -मोटे पेड़ों को पीटकर रेल स्लीपर या नाव बनाकर कलकत्ता भेजता है। इन ताकतों ने आदिवासियों के परम्परागत मूल्यों को नष्ट कर दिया है, लेखक ने उपन्यास में कम्पनी के मैनेजर जेफरन साहब तथा सुपरवाइजर शिवदत्तराना को अनेकानेक योजनाओं द्वारा अपने व्यक्तिगत स्वार्थों

की पूर्ति करने हुए चित्रित किया है। वह शोषितों को मनुष्य नहीं समझता । सिर्फ अपना लाभ देखता है - ''किसी बात का किसी वर्ग विशेष पर या संपूर्ण समाज पर क्या प्रभाव पडेगा, इसकी उसे चिन्ता नहीं होती ।'' कंपनी के मैनेजर जेफरन साहब मालिक होने की हैसियत से हर चीज पर अपना पूर्ण अधिकार समझते हैं। काम से अधिक वे प्रेम व्यवहार में रूचि दिखाते हैं। जब जेफरन, इथेल के प्रेम से ऊब जाते हैं, तो उनका ध्यान एक आदिवासी युवती बुदनी की ओर जाता है। आदिवासी स्त्री का वन कारखानों तथा जंगल संबंधी विविध कार्यक्रमों में मजदूरी के लिए आना एक विवशता है। उनकी आर्थिक स्थिति उन्हें इस बात के लिए विवश कर देती है, इस मजबूरी का वन-अधिकारी, कंपनी के ठेकेदार आदि पूरा फायदा उठाते हैं, तथा अपनी काम तृप्ति करते हैं।

2. कब तक पुकारूं (1957) - डॉ. रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूं' उपन्यास नटलोक जीवन पर आधारित आदिवासी जीवन केंद्रित है। इसमें राजस्थान और ब्रज प्रदेश की सीमा पर बसे गाँव 'बैर' के इर्द-गिर्द की कथावस्तु है। समाज का उपेक्षित वर्ग जरायमपेशा करनटों के जीवन दर्शन का समग्र चित्रण करने वाली कृति है। सुखराम की चार पीढ़ियों की कथा के माध्यम से लेखक ने उनके रीति-रिवाज, विश्वास, संस्कृति के चित्रण के साथ उनके दुख-दर्द, पीड़ा-पतन, अपमान-तिरस्कार भरे जीवन को भी खोलकर रख दिया है। कथा का सूत्रधार स्वयं कथा नायक सुखराम है।

3. वरूण के बेटे (1957) -'वरूण के बेटे' (1957) में आदिवासी मछुआरों के जीवन की कथा है। इसमें मछुआरों के जीवन संघर्ष और जागरण की कहानी कही गई है। उनके रीति-रिवाज, भाषा, गीत

सभी उनके जीवन-यथार्थ को सजीवता से उभारते हैं। नागार्जुन की दृष्टि यथार्थवादी है, अतः वह आदिवासी जातियों का चित्र खीचकर आदिम रस-चाह की तृप्ति नहीं करते, वरन् उन्हें आधुनिक चेतना, जागरण और शक्ति से संपन्न कर उनके मानवीय अधिकारों से उन्हें जोड़ते हैं। इसीलिए मधुरी अपने शराबी ससुर का घर छोड़ देती है। पिता के घर राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेती हुई गिरफ्तार होती है।

4. सूरज किरण की छाँव (1958) - प्रस्तुत आंचलिक उपन्यास में राजेन्द्र अवस्थी जी ने आदिवासी क्षेत्रों में ईसाई मिशनरियों के बढ़ने प्रभाव को शोषित आदिवासियों के दर्द को और आदिवासी समाज की परम्पराओं, रूढ़ियों, रीति रिवाजों को चित्रित किया है। ग्रामीण जीवन की सहज नौसर्गिकता की ओर संकेत करना लेखक का अभीष्ट है। एक तरफ शहरी जीवन की विरूपता का उद्घाटन हुआ है, तो दूसरी तरफ आँचलिक जीवन के पुराने मूल्यों के प्रति अदम्य विश्वास एवं उत्साह व्यक्त किया गया है। श्याम परमार ने 'मोरझाल' (1963) उपन्यास लिखकर मालवा क्षेत्र के भीलों की जीवन-शैली को एक प्रेम कथा के जरिए प्रस्तुत किया है। कभी भीलों को अपने उपन्यास का केन्द्र बनाया तो कभी अन्य आदिवासी जातियों को।

5. सागर लहरें और मनुष्य (1964) - प्रस्तुत उपन्यास में बंबई महानगर के पश्चिमी तट पर बसे आदिवासी मछुआरों के ग्राम बरसोवा का जीवन चित्रित हुआ है। कथानक अन्य आंचलिक उपन्यासों के कथानकों के प्रतिरूप एक अंचल से ही सम्बद्ध नहीं रहता, वह बंबई महानगर के बीच भी संचरण करता है अर्थात् उसका

क्षेत्र दोहरा है। अन्य आंचलिक उपन्यासों में कथानक कुछ देर के लिए बाहर निकलता सा लगता है, किन्तु अपने को प्रभावित करने वाली बाहरी संगतियों, विसंगतियों, शक्तियों, सीमाओं को समेटकर पुनः अपने आदिवासी क्षेत्र में आ जाता है, किन्तु 'सागर, लहरें और मनुष्य' में ऐसा नहीं हुआ है। ऐसा लगता है जैसे दोनों क्षेत्र लगभग समानान्तर चलते हैं।

6. 'जंगल के फूल' (1969) - राजेंद्र अवस्थी का 'जंगल के फूल' बस्तर के आदिवासियों के जीवन को केंद्र में रखकर लिखा गया या एक सशक्त आदिवासी जीवन पर केंद्रित दूसरा आंचलिक उपन्यास है। सुलकसाये, गढ़बंगाल के मुखिया का बेटा तथा घोटुल का सरदार है। वह गढ़बंगाल की ही लड़की महुआ से प्रेम करता है, दोनों एक-दूसरे को चाहते हैं और आजीवन देश की सेवा के लिए विवाह न करने का प्रण लेते हैं। अंग्रेजों द्वारा आदिवासियों पर अत्याचार किया जाता है। यह अत्याचार भोले-भाले आदिवासियों के मन में अंग्रेजों के प्रति विद्रोह पैदा करते हैं। इस प्रकार के अत्याचार और तानाशाही आदिवासियों में चिंता पैदा करते हैं। अंग्रेज, आदिवासियों को आपस में झगड़ाते हैं। अंत में विद्रोह हो जाता है। भोले-भाले आदिवासी उनकी कूटनीति से पराजित होकर भी खुद को नये संघर्ष के लिए समर्पित करते हैं। उपन्यासकार की दूसरी कृति 'जाने कितनी आँखें' भी कुछ अंशों में बुंदेलखंड के आदिवासी जीवन को चित्रित करती हुई दृष्टिगोचर होती है।

7. 'अरण्य (1973) - हिमांशु जोशी द्वारा लिखित यह उपन्यास कूमांचल के उदास घरों में बसने वाले आदिवासियों के मलीन चेहरों एवं उदास आंखों की व्यथा-कथा है। अनाथ कावेरी अपने मामा

माधव प्रधान के यहां रहकर एक खामोश भरी जिन्दगी जीती है। हिरदेराम का बिगड़ैल बेटा मानिक अपने दुर्व्यसनों में भी उसकी सहानुभूति पाता है। एक दिन मानिक अपने अपराध के लिए कावेरी से तिरस्कृत होकर गांव छोड़कर भाग जाता है। बाद में कावेरी की शादी बूढ़े ठेकेदार के साथ हो जाती है। मानिक, कावेरी के विवाह के बाद फौजी बन गाँव लौटता है। मानिक, कावेरी की सोयी पीड़ा जगाकर वापस फौज में चला जाता है। वह कावेरी की सहायता करता है, और युद्ध में एक दिन शहीद हो जाता है। कावेरी का पति भी आत्महत्या कर लेता है। कावेरी उपन्यास के अंत तक मानिक की प्रतीक्षा करती है।[4]

8. कांछा (1973), अंधेरा और (1973), सुराज (1973) - 'सुराज' हिमांशु जोशी की कथा एवं शिल्प की दृष्टि से नई उपलब्धि है। इसने 'सु-राज,' 'अंधेरा' और-'काँछा' यह तीन लघु उपन्यासिकाएं संकलित हैं। 'सु-राज' में कुमाऊं का पर्वतीय अंचल, 'अंधेरा और' में तराई का आदिवासी जीवन तथा 'कांछा' में भारत के सीमावर्ती क्षेत्र का अंकन हुआ है।

9. कगार की आग (1978) - यह पर्वतीय आदिवासी जीवन पर आधारित लघु उपन्यास है। इसमें अंचलीय प्रवेश तो हैं, लेकिन सही अर्थों में यह अंचल जीवन पर लिखा गया उपन्यास न होकर पारिवारिक यथार्थ का उपन्यास लगता है। परिवार के केन्द्र में पहाड़ी गोमती नामक एक स्त्री है जो परिवार और भ्रष्ट सामाजिक तत्वों से पीड़ित होती है। वास्तव में गोमती बहुत दूर तक पहाड़ी नारी की पारिवारिक और सामाजिक यातना का प्रतिनिधित्व करती है, किन्तु यह भी कहा जा सकता है कि काफी दूर तक उसे अपनी नियति ने

अकेला बना दिया है। लगता है कि अधिक करूणा उपजाने के लिए उसे अनेक प्रकार की यातनाओं से सायास जोड़ दिया गया है, उसकी प्रतिकूल परिस्थितियों और पात्रों को कहीं भी मानवीय होने का अवसर नहीं दिया गया है, इसलिए यह उपन्यास यातना या अनुभव को गहराई से उभारता है, किन्तु कोई नई सामाजिक भूमिका नहीं निर्मित कर पाता है। गोमती के अन्त में उभरा हुआ आक्रोश भी व्यक्तिगत धरातल का आक्रोश बनकर रह जाता हैं।[5]

10. अल्मा कबूतरी (2000) - उपन्यास के केन्द्र में खानाबदोश कबूतरा जनजाति की जीवन गाथा है। कबूतरा जनजाति खानाबदोश है, लेकिन उसे लेकर जो परिधि बनती है, उसके भीतर आज के उत्तर भारतीय जन-जीवन और राजनीति के यथार्थ का एक बड़ा हिस्सा आता है।

11. जंगल जहां शुरू होता है - संजीव के उपन्यास 'जंगल जहां शुरू होता है' के केंद्र में बिहार के पश्चिमी चंपारण क्षेत्र में थारू जनजातियों के जीवन गाथा का चित्रण मिलता है। जनजाति की इतिहास गाथाएं, भौगोलिक सीमाओं की गहरी सूझ बूझ बौद्धिक वैज्ञानिक समझ के बलबूते संजीव, डाकू समस्या को कई कारणों से उठाते हैं और धर्म, वर्ग, राजनीति के अंतःसंबंधों को व्यंग्य भाषा के पैने औजारों के सहारे साहसिक ढंग से उकेरते हैं।

12. पिंजरे में पन्ना (1981) - यह उपन्यास राजस्थान के गाड़िया लुहार आदिवासी जाति के जीवन को केन्द्र में रखकर लिखा गया मणि मधुकर का लघु उपन्यास है। रेगिस्तान जिसकी जन्मभूमि है, ऐसे गाड़िया लुहार और उनके द्वारा निर्मित कला को प्रस्तुत

उपन्यास में विशेष स्थान दिया है। आदिवासियों में स्थित इन जातियों की अपनी निजी पहचान, मूल्य, परंपरा, रीति-रिवाज और संस्कृति है। आधुनिकता से यह जीवन पूर्णत: बेखबर है।

13. वनतरी (1986) - सुरेश चंद्र श्रीवास्तव का यह उपन्यास आदिवासी जीवन पर केन्द्रित है। जिसकी कथाभूमि बिहार राज्य के होयहात् प्रखंड का डुमरी अंचल है। डुमरी अंचल में भुइयां, तुरी, महरा, महतो आदि आदिवासी बसते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने केवल परहिया आदिवासी जीवन को केन्द्र में रखा है। वनतरी पढ़ी-लिखी होने के कारण उसमें अधिकार बोध एवं चेतना संक्रमित होती है। अपनी आदिवासी जाति के लिए अन्याय एवं शोषण का डटकर विरोध करती है। ठाकुर परमजीत सिंह गाँव के जमींदार हैं। जमींदारी टूटने के बावजूद भी वे पूरी तरह से अपनी सत्ता और स्थान कायम बनाए हुए हैं। अपनी राजनीति का प्रयोग करके बड़े-बड़े अधिकारियों से हाथ मिलाकर सामान्य गरीब गाँव की भोली-भाली जनता को लूटते हैं, उनमें मानवीय संवेदना का अभाव है। वनतरी इन सारी समस्याओं का सामना करती, इनका हल खोजती है। वस्तुत: उपन्यास में उपन्यासकार ने वनतरी के माध्यम से एक आदिवासी युवती के विद्रोह को व्यापक फलक पर चित्रित किया है।[6]

14. धार (1990) - संजीव के 'धार' आँचलिक उपन्यास में पूर्णतः अछूते क्षेत्र और विषय का उद्‌घाटन हुआ है। बिहार संथाल परगना में कोयला अंचल की खदानों में काम करने वाली श्रमजीवी आदिवासियों की व्यथा को इसमें व्यापक फलक पर परिभाषित किया है। उपन्यास के केन्द्र में संथाल परगना का बांसवाड़ा अंचल और संथाल आदिवासी नारी 'मेना' है। उसी के परिप्रेक्ष्य में

आदिवासी जीवन, संघर्ष और चेतना का विस्तार होता है। संथाल परगना की कोयला खदानें आदिवासियों के श्रम पर खड़ी हैं। वे खदानों में कड़ी मेहनत कर कोयला उत्पादन करते हैं, लेकिन पूंजीपति महेंद्र बाबू -ठेकेदार, माफिया, पुलिस, अधिकारी और सदोष व्यवस्था के कारण उनका जीवन शोषित, आतंकित, अभावग्रस्त और असुरक्षित मिलता है।

15. जहां बांस फूलते हैं (1997) - श्री प्रकाश मिश्र द्वारा रचित इस उपन्यास में आदिवासी लुशेइयों की जीवन पद्धति, उनके रीति-रिवाजों, परंपराओं, रूढ़ियों, आदर्शो को रेखांकित किया है। लुशेइयों की समस्याओं को उनके-जीवन संदर्भों के बीच से उभारकर और जन तथा सरकार दोनों के दृष्टिकोण को सामने रखकर एक बड़ी जरूरत, एक बड़ी मांग को पूरा किया है।

16. नदी के मोड़ पर - यह दामोदर सदन का आदिवासी जीवन संबंधी उपन्यास है, जिसकी कथावस्तु का केंद्र मध्यप्रदेश और उसकी आदिवासी भील जाति है। उपन्यासकार ने मध्यप्रदेश के भीलों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक गतिविधियों को बताते हुए किस प्रकार पुलिस एवं व्यापारी इन पिछड़े गरीबों का शोषण करते हैं, इसका ताजा चित्र खींचा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आदिवासी समाज आज के युग में भी दयनीय स्थिति में अपना जीवन यापन कर रहा है। इन उपन्यासों के माध्यम से जो चीजें सामने आई हैं, उन्हें ध्यान में रखकर इस समाज की दिशा और दशा को सुधारने का काम हम सबका है।

संदर्भ

1. गोपाल राय, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, पृ. 428।
2. हंस पत्रिका, राजेन्द्र यादव, अगस्त, 1999।
3. हंस पत्रिका, राजेन्द्र यादव, अगस्त, 1999।
4. हिंदी उपन्यास के सौ वर्ष, डॉ. विवेकी राय, पृ. 429।
5. हिंदी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा, डॉ. रामदरश मिश्र, पृ. 260।
6. नवम् दशक के आंचलिक उपन्यास, डॉ. पांडुरंग पाटील, पृ.119।

आदिवासी कविता में पर्यावरण विमर्श

श्रीलेखा के. एन.
शोध छात्रा
कोचीन विश्वविद्यालय, केरल
ईमेल: sayinith@gmail.com
मोबाइल: 8330013928

शोध सारांश

संपूर्ण मानव जाति अपने आविर्भाव से ही प्रकृति के कण-कण में व्याप्त समस्त वस्तुओं के प्रति सहचारी भाव प्रकट करती आई हैं। आदिमानव के भक्ति भाव में प्रकृति एक मुख्य हिस्सा थी। किन्तु आधुनिकता की संकल्पना ने हाशियेकृतों की धारा के अंतर्गत प्रकृति को भी शामिल कर दिया। मनुष्य के कुकर्मों के परिणाम स्वरूप प्रकृति में आए परिवर्तन ने आदिवासी जनजातियों के जीवन को भी नकारात्मक ढंग से प्रभावित किया। इसका यथार्थ चित्रण हिन्दी के आदिवासी जीवन पर आधारित कविताओं से प्राप्त होती है। इन कविताओं के माध्यम से कवियों ने प्रकृति में घुलमिलकर जीवन बिताने वाले आदिवासी समाज और प्रकृति के बीच का अटूट संबंध उनकी पारिस्थितिक सजगता, प्राकृतिक सुषमताओं को बनाए रखने के लिए संघर्षरत जनता और प्रकृति के शोषण से संपूर्ण आदिवासी समाज की त्रासदीपूर्ण पतन आदि को मुख्य विषय का

रूप प्रदान किया है। प्रकृति केंद्रित आदिम दृष्टि सबकी बराबरी की माँग करने वाली है।

की वर्ड: आदिवासी. सामाजिक जीवन. प्रकृति प्रेम. प्रकृति की मृत्यु. संस्कृति

शोध आलेख

हिंदी के प्रत्येक आदिवासी साहित्यकारो की रचनाओं में प्रकृति एक महत्वपूर्ण मुद्दे के रूप में उभरकर आती है। इसका मुख्य कारण आदिवासियों के जीवनयापन में निहित प्रकृति की प्रासंगिकता है। इसलिए आज आदिवासी जीवन पर बात करते वक्त या उस पर कुछ लिखते वक्त प्राकृतिक दर्शन को शामिल करके देखना अनिवार्य बन गया है। प्रकृति के बिना मनुष्य का अस्तित्व खतरे में है। क्योंकि प्रकृति शोषित होने पर मनुष्य का जीवन भी दुस्साहसपूर्ण बन जाती हैं। इसलिए जंगलों की ओर लौटना वर्तमान में और भविष्य में एक महत्वपूर्ण बात है। यहाँ आदिवासी जीवन के कुछ ऐसे पक्षों पर विचार किया गया है जहाँ प्रकृति उनके साथ सहभागिता की भूमिका निभाती है और उसी के साथ शोषित हो जाती है। इसका मुख्य कारण मनुष्य की शोषण दृष्टि है। आदिवासी अपने सामाजिक जीवन में प्रकृति को अलग करके नहीं बल्कि निकट से देखते-परखते है। इसलिए प्रकृति के साथ उनका संबंध आदि मध्य और आधुनिक समय तक बनी रहती हैं। वे साहित्य सृजन के द्वारा अपने समाज को अस्मिता पड़ाव की ओर ले जाते है जहाँ प्रकृति भी उनकी दृष्टि में सहचारी है। जलएजंगल और ज़मीन को साथ लेकर बहना आदिवासी साहित्यिक परंपरा का मूल सिद्धान्त है। आदिवासी लेखन में मुख्यतः पेड़ जंगल और पहाड़ जैसे कई प्राकृतिक वस्तुएँ प्रतीकात्मक रूप ग्रहण करते हुए उसकी

शोभा बढ़ाती रहती हैं, इससे यह बात सच साबित होती है कि प्रकृति ही उनके जीवनयापन का केंद्रीय तत्व है। आदिवासी साहित्य में प्रकृति मानव के समान शोषित होने का चित्रण देखा जा सकता है। इन कविताओं के द्वारा कविगण अपनी संवेदना को सहजीवी प्रेम का नाम देकर उसे एक साथ ले जाने का निरंतर प्रयत्न में हैं। वर्तमान आदिवासी जीवन केंद्रित कविताओं में अभिव्यक्त प्रकृति-प्रेम इसी का ही परिणाम है। प्राकृतिक सुषमाएँ नष्ट हो जाने से आदिवासी जीवन भी समस्याग्रस्त हो जाता हैं। इसलिए आदिवासी साहित्यकारों की अधिकांश कविताएँ जंगल और ज़मीन से बिछुडकर रहने की व्यथा को प्रस्तुत करने वाली हैं। प्यारी टूटी की कविता "पर्यावरण' इसी दर्द को दर्शाती है। वे लिखती हैं :

"हे पहाड़ देवता
हे नदी माता
हे जंगल राजा
पहाड़ टूट गए
नदी सूख गई
जंगल कट गए
किसकी मैं पूजा करूँ
किससे मैं प्यास बुझाऊँ
किसकी मैं सेवा करूँ
पहाड़ की आड़ में थी
नदी की धारा में खेली
जंगल के फलों में पली
हवा का रुख बदल गया
नदी की धारा कट गई
जंगल वीरान हो गया

मैं अनाथ हो गई।
मैं प्यासी हो गई
मैं भूखी रह गई।"

इस कविता में प्रकृति की अनुपस्थिति में कवयित्री का मन किस प्रकार कुंठा और निराशाग्रस्त हो जाता है इसी का चित्रण है। यहाँ एक सजग मनुष्य ही नहीं बल्कि एक छत के नीचे अपनी संस्कृति और समाज को बनाए रखने केलिए संघर्षरत एक यथार्थ मानव का रूप भी देखा जा सकता है। पारिस्थितिक संतुलन को नष्ट करने वाली कई चीज़ें हैं। यह मिट्टी, जल और वायु को प्रदूषित करते हुए मनुष्य के जीवन को और अधिक संकटपूर्ण स्थितियों के बीच धकेल लेते हैं। इसका परिणाम इन वस्तुओं का पतन ही हैं, जो धीरे.धीरे इस धरती का संतुलन को भी नष्ट कर देती हैं। सुषमा असुर की कविता "पहाड़ का घर खतम हो गया है", में प्रकृति अपने सभी अंगों को खोकर रोती रहती है और उनकी वेदना में असुर आदिवासी जनता भी व्याकुल हो जातेहै। कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :-

"पहाड़ रो रहा है
नदी सिसक रही है
रो रहे हैं झारखंड के झरने
धरती-पहाड़ सब रो रहे हैं
रो रहे हैं असुर सारे
झरने में पानी नहीं है
पहाड़ में फूल फल नहीं है
नदी में बहने के लिए पानी नहीं है।"

यहाँ सब अपनी नियति को कोस कर और मनुष्य के कर्मों का परिणाम को भोगकर अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा में रोते रहते

हैं।झरने में पानीएपहाड़ की शोभा बढ़ाने वाले फल-फूल और नदी में बहने वाला पानी सब गायब हैं। धरती इन सबकी अनुपस्थिति में रो रही है। कवयित्री का कहना है कि प्रकृति की मृत्यु मनुष्य के विनाश का ही सूचक है। रामदयाल मुंडा ने भी अपनी कविता 'विरोध" में नदी प्रदूषण की समस्या को अभिव्यक्त किया है। कविता की पंक्तियाँ नदी के अंतिम क्षण की वाणी को रेखांकित करने वाली हैं:

"उसे बाँधकर ले जा रहे थे
राजा के सेनानी
और नदी
छाती पीटकर रो रही थी
लौटा दोएलौटा दो
मुझे मेरा पानी।"

प्रगतिशीलता की प्रवृत्ति ने मनुष्य के जीवन धरातल को भी प्रभावित किया। इसलिए प्राकृतिक वस्तुओं की तुलना में वे कृत्रिम पदार्थों की ओर मुड़े, इस्ससे प्रकृति के संतुलन की गति में बाधा डाली। यहीं नहीं मनुष्य ने कूड़ा.कचरा फेंककर और प्लास्टिक जैसे ज़हरीली पदार्थों से प्रकृति की सौंदर्य को भी नष्ट किया। आज मनुष्य अपने जीवन में सफलता की खोज करते हुए जिस स्तर तक पहुंचा है वहाँ प्रकृति एक उपभोग की वस्तु बनकर मनुष्य के स्वार्थ भावों की पूर्ति कर रही है। "अघोषित उलगुलान" नामक कविता में अनुज लुगुन ने मनुष्य की इस नकारात्मक प्रवृत्ति का भोज उठाने वाला आदिवासी समाज का ज़िक्र किया है।इस कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:

"बोलते हे लोग केवल बोलने के लिए
लड़ रहे हैं आदिवासी
अघोषित उलगुलान में

कट रहे हैं वृक्ष

माफिया की कुल्हाड़ी से

और बढ़ रहे हैं कंक्रीट के जंगल

दान्डू जाये एतो कहाँ जाये घ्

कटते जंगल में

या

बढ़ते जंगल में”

कवि ने इस कविता में सच्चाई का पर्दाफाश किया है जहाँ प्रकृति और आदिवासी एक ही समय में, एक ही समस्या के बीच पड़ कर सही रास्ता खोज रहे है। कंक्रीट के बड़े बड़े मकानों से युक्त इस जीवन परिवेश में न आदिवासी का कोई अस्तित्व है या न प्रकृति की कोई भूमिका। वंदना टेटे द्वारा संपादित ‘कवि मन जनी मन’ नामक पुस्तक की भूमिका में प्रो. रोहिणी अग्रवाल ने प्रकृति को बचाने की आवश्यकता की ओर संकेत किया है। उनके अनुसार “बचाना है जलर जंगल और ज़मीन को तमाम प्राकृतिक सम्पदा और सौंदर्य के साथ ताकि नदियों और झरनों से पानी न छिन पाए और धरती माँ की गोद से” बाघ, वराह, भूत-दरहा, गौरैया, भूवा,चोरदेंवा, गुतरू” नहीं तो क्या पता माँ बनकर सबको पालती धरती कातर प्रणयिनी बनकर भीतर ही भीतर सूखने लगे कि मेरा जूड़ा बहुत सूना लगता है संगी,सरहुल के फलों के बिना।

आदिवासी अपने भूतकाल को ही नहीं बल्कि वर्तमान और भविष्य के प्रति भी सतर्क रहने वाला हैं ऽ इसलिए परंपरा के साथ ही वे भविष्य निर्माण की संकल्पना को भी आगे ले जाते है ऽसाथ ही पारिस्थितिक समस्याओं के दुष्परिणामों से वर्तमान युवापीढ़ी किस प्रकार तड़पती है या उनके भविष्य में बाधा डालने वाली समस्याएँ क्यारूक्या है आदि पर भी इस कविता में गहराई से

विचार हुई है ऽ इस सच्चाई से आदिवासी जनता काफी हद तक परिचित है कि रू मानवराशि की विकास यात्रा का अगला चरण उनकी अनुपस्थिति ही रहेंगीऽ इसलिए वे वर्तमान समाज को चेतावनी देते हुए बताना चाहते है कि‘ तुम्हारी पीढ़ी के सुनहले भविष्य तुम्हारे हाथों में ही सुरक्षित है, इसलिए कर्म का फल जानकर ही आगे बढ़ो’, इस कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:-

“एक बूंद पानी के लिए
तड़परूतड़प जायेंगी
हमारी पीढ़ियाँ

इसलिए

मैं सच कहती हूँ
हे समय के पहरेदारो ॐ
तुमने अवश्य सुना होगा
एक वृक्ष की जगह
लगाओ दूसरा वृक्ष
क्या कभी सुना है
एक पर्वत के बदले
उगाओ दूसरा पर्वत”

आदिवासी संस्कृति की शुरुआत जंगलीय जीवन परिवेश में ही हुई थी। इसलिए मिट्टी की महक और प्रकृति का ताल बोध से वे अपनी रचनाओं को एक ऐसे धरातल पर ले जाती है जहाँ प्रकृति से अलग होना उनके लिए काफी मुश्किल है। ग्रेस कुजूर ने अपनी कविता ‘गाँव की मिट्ठी ’में ज़मीन से जुड़े रहने की अधक इच्छा को प्रकटइस प्रकार प्रकट किया है कि:

“पगडंडियों से होकर चलते वक्त
पाँवों से लिपटी

गाँव की मिट्टी ने कहा था -
रहने देना चरणों में यह धूल
शहर की कोलतार भरी सड़कों पर
चलते वक्त
यह बचाएगी तुम्हें
कालिख चिपकने से”

आदिवासी समाज प्रकृति के समस्त पदार्थों से परिचित हैं, क्योंकि उनकी जीवन की पृष्ठभूमि जंगलीय वातावरण है ऽइसी कारण से सभ्य कहे जाने वाले मुख्यधारा ने उन्हें ‘वनवासी ’ कहकर समाज के हाशिये तक सीमित कर दियाऽ महादेव टोप्पो की कविता ‘आप क्यों हँसते हैं’ में मुख्यधारा को संबोधित करते हुए और उनके इस व्यवहार के प्रति व्यंग करते हुए कवि लिखते है कि:

“आप क्यों हँसते हैं ऋ
आइये,यहाँ आइये
जंगल का यह कौनरूसा पत्ता है ऋ
कौनरूसा पेड़ है ऋ बताइये।।
जानिये, फुटकल भी दवाई है, ब्राह्मी बूटी भी
और भी ऐसी अनेक औषधियाँ हैं जंगल में
क्या आप बता सकते हैं यह
इनके पत्ते देखकर
या इनकी जड़े सूँघकर”

पृथ्वी के प्रति आदिवासी समाज की दृष्टि सदैव मातृप्रेम का रहा है। इसलिए उनके अनुसार - ‘धरती माँ है और वे उनका पुत्र है। कभी-कभी स्त्री और प्रकृति को एक ही स्तर पर रखकर उनकी समस्याओं की कारणों को ढूँढने की प्रवृत्ति आदिवासी साहित्यिक जगत में सशक्त रूप से देखा जा सकता है। जसिन्ता केरकेट्टा की

‘प्रकृति और स्त्री’ नामक कविता इसका उदाहरण है। इस कविता में भारतीय समाज या संस्कृति में स्त्री और प्रकृति के प्रति प्रचलित भक्ति भाव और बाद में पुरुष केन्द्रित अधिकार सत्ता का आगमन से दोनों की स्थितियों में आए परिवर्तन आदि को मुख्य मुद्दे के रूप में रखा गया हैं। कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:-

“सदियों से तुम डरते रहे प्रकृति से
सोचकर
वह है सृजन के साथ विनाश की भी देवी
तुम उसे कभी समझ नहीं पाए

जैसे

कभी समझ नहीं पाए तुम स्त्री को
औजार और सत्ता हाथ में आते ही
पहले किया प्रकृति को तबाह
करने को उस पर एकछत्र राज
कभी न सुनी स्त्री की आह
सृजनशीलता की जादुई डिबिया में बंद
कैद रह गयी हमेशा उसकी आवाज़”

आज समाज में स्त्री और प्रकृति दोनों ही शोषण और गुलामी मानसिकता से मुक्त नहीं हैं। पुरुषवर्चस्ववादी दृष्टि ही उनके अस्तित्व को लुटानेवाले है। इस विषय पर कविता में विचार करने की कोशिश कवयित्री ने की है। आदिवासी कवियों की कविताएँ आदिवासी जीवन का ही नहीं बल्कि अपने सहजीवियों के प्रति संवेदनात्मक दृष्टि का भी परिणाम है। इसलिए सारांश में कहा जा सकता है कि प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखने के लिए दोनों की सामाजिक उपस्थिति का होना अनिवार्य है।

संदर्भ

1. कवि मन जनि मन - वंदना टेटे (संप्र) राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ. 89।
2. कवि मन जनि मन - वंदना टेटे (संप्र) राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ. 32 ।
3. कलम को तीर होने दो - रमणिका गुप्ता (संप्र) वाणी प्रकाशन, पृ. ।32 ।
4. कलम को तीर होने दो - रमणिका गुप्ता (संप्र) वाणी प्रकाशन, पृ. .
5. कलम को तीर होने दो - रमणिका गुप्ता (संप्र) वाणी प्रकाशन, पृ. ।15 ।
6. कलम को तीर होने दो - रमणिका गुप्ता (संप्र) वाणी प्रकाशन, पृ. 106 ।
7. कलम को तीर होने दो - रमणिका गुप्ता (संप्र) वाणी प्रकाशन, पृ. 108 ।
8. कलम को तीर होने दो - रमणिका गुप्ता (संप्र) वाणी प्रकाशन, पृ. 121 ।
9. कलम को तीर होने दो - रमणिका गुप्ता (संप्र) वाणी प्रकाशन, पृ. 191 ।

एनईपी : सशक्त भारत में शिक्षा का योगदान

डॉ. सुरुचि भाटिया
एसोसिएट प्रोफेसर, डिपार्टमेंट ऑफ़ एप्लाइड साइकोलॉजी,
श्यामा प्रसाद मुखर्जी कॉलेज
यूनिवर्सिटी आफ दिल्ली, नई दिल्ली।
अनिका यादव
ग्रेस हाओकिप
शोधार्थी
डिपार्टमेंट ऑफ साइकोलॉजी
यूनिवर्सिटी ऑफ दिल्ली, नई दिल्ली

"ज्ञान और विज्ञान के आधार पर ही हर्ष और आनंद का जीवन संभव है।"

- डॉ एस. राधाकृष्णन

भूमिका

शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जो न केवल व्यक्ति के ज्ञान को बढ़ाता है अपितु पूरे समाज की बेहतरी और उत्थान में भी अहम भूमिका निभाता है। भारतवर्ष प्राचीन काल से ही शिक्षा और इसके महत्व को लेकर सजग रहा है। हमारे वेदों और पुराणों में समग्र शिक्षा के महत्व का वर्णन है जिसमें मैट्रिक्स (metrics), अनुष्ठान (rituals), व्याकरण (grammar), व्युत्पत्ति (etymology) को

सम्मिलित किया गया है। इस विचारधारा को आगे बढ़ाते हुए, आधुनिक समय में राष्ट्र के अधिनायकों ने अपने शब्दों एवं अपने कार्यों के माध्यम से शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति के लिए अथक प्रयास किए। दयानंद सरस्वती, श्री अरबिंदो, स्वामी विवेकानंद, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, महात्मा गांधी, डॉ. एस. राधाकृष्णन, डॉ बी. आर. अंबेडकर, जवाहरलाल नेहरू, इन सभी ने शिक्षा पर हमेशा जोर दिया है और देश के शिक्षा-स्तर को परस्पर बढ़ाने के लिए अपना योगदान दिया है। स्वतंत्रता उपरांत भारतीय संविधान में भी शिक्षा के अधिकार को एक मौलिक अधिकार के रूप में स्थापित किया गया।

समय अनुसार बदलना जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। बदलते समय और समाज के साथ शिक्षा के क्षेत्र में भी निरंतर बदलाव होना आवश्यक है। इस क्षेत्र में परिवर्तन करते समय एक बात का ध्यान रखना चाहिए कि यह परिवर्तन सकारात्मक और परिव्यापक हो, और इसमें सीखने और सिखाने के नवीन तरीके शामिल किए गए हो। विकास और समृद्धि की दृष्टि से भी परिवर्तन अत्यावश्यक है और यह बदलाव हमारे संस्थानों और नीतियों का भी अहम हिस्सा है। जरूरी है कि समय के साथ संस्थागत ढांचे और नीतियों पर पुनर्विचार किया जाए व उन्हें पुनर्गठित किया जाए ताकि जिन उद्देश्यों के लिए उन्हें स्थापित किया गया था उन्हें सर्वोत्तम रूप से पूरा किया जा सके।

भारत की शिक्षा नीति

एक शैक्षिक प्रणाली का ढांचा निर्धारित करने में शिक्षा नीतियां मुख्य भूमिका निभाती है। इसी कारण दुनिया की सभी सरकारें शिक्षा नीतियों पर केंद्रित रहती है और उन पर निरंतर काम

करती रहती है। शिक्षा नीति में पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और शैक्षणिक अभ्यास को सम्मिलित किया जाता है।

भारतीय संविधान के निर्माता इस बात से अवगत थे कि जब किसी राष्ट्र के लोग शिक्षित होंगे तभी वे अपने राष्ट्र की वृद्धि और विकास में सक्रिय योगदान दे सकेंगे। इसी बात को ध्यान में रखते हुए देश के नीति निर्माता शिक्षा संबंधित क्षेत्रों को बेहतर बनाने का प्रयास करते रहते हैं। शिक्षा क्षेत्र की विभिन्न समस्याओं को संबोधित करने और उनका समाधान निकालने के लिए सरकार द्वारा शिक्षा आयोगों की स्थापना की गई जिसके तहत विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948), माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952), और भारतीय शिक्षा आयोग (1964-66) जिसे कोठारी आयोग के नाम से भी जाना जाता है, अस्तित्व में आए। कोठारी आयोग के सुझावों के आधार पर 1968 में भारत ने अपनी पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनपीई) बनाई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति मुख्य रूप से मानव संसाधनों के विकास पर केंद्रित थी। इसका प्रमुख उद्देश्य अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों और महिलाओं पर विशेष ध्यान देते हुए समाज के सभी वर्गों को शिक्षा प्रदान करना और उनकी उन्नति में सहयोग करना था।

•

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020

भारतवर्ष के वैज्ञानिक एवं सामाजिक उत्थान को ध्यान में रखते हुए जुलाई 2020 में भारत के केंद्रीय मंत्रिमंडल ने एक नई शिक्षा नीति, "राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी)" को मंजूरी दी। यह नीति 21वीं सदी की पहली शिक्षा नीति है और एनपीई के 34 साल के अंतराल में आई है। शिक्षा के महत्व को समझते हुए समाज की

प्रगति के लिए "शिक्षा मंत्रालय" का गठन किया गया, जिसके तहत यह नई शिक्षा नीति क्रियान्वित की जाएगी।

शिक्षा सूर्य के समान होती है जो हमारे जीवन को ज्ञान रूपी प्रकाश से भर देती है। वर्तमान शिक्षा नीति इस उपमा को सार्थक करने की दिशा में रखा गया कदम है जिसमें हमारे देश की प्राचीन ज्ञान पद्धति को समकालीन परिवेश के अनुरूप ढालते हुए भविष्य की चुनौतियों के लिए तैयार करने की प्रेरणा से गंभीर चर्चा के उपरांत बनाया गया है।

एनईपी को देखने और समझने के कई नजरिए हैं, लेकिन इस लेख के द्वारा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को केंद्र में रखते हुए एनईपी 2020 की पाँच प्रमुख विशेषताओं पर चर्चा की गई है।

1. प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा (ईसीसीई) का सार्वभौमीकरण

नई एनईपी स्कूली शिक्षा के पूर्व प्राथमिक वर्षों (3 से 18 वर्ष की आयु) पर केंद्रित है जबकि एनपीई 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों की शिक्षा पर केंद्रित थी। यह बदलाव नई नीति के मुख्य बदलावों में से एक है। पूर्व प्राथमिक वर्ष, मनोविज्ञान दृष्टिकोण से बेहद महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस उम्र में बच्चों का सर्वांगीण विकास होता है जिसमें संज्ञानात्मक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक विकास शामिल है। उदाहरण के लिए, इन वर्षों में बच्चों का भाषा कौशल विकसित होता है जो उन्हें बोलने में सक्षम बनाता है, उनका संज्ञानात्मक कौशल उन्हें दुनिया की समझ सिखाता है और उनका सामाजिक कौशल उन्हें लोगों के साथ सार्थक संबंध बनाने में सक्षम बनाता है। शिक्षा नीति के यह सभी पहलू मनोवैज्ञानिक नजरिये से बच्चों के संपूर्ण विकास के लिए बेहद जरूरी है।

शैक्षिक दृष्टिकोण से भी पूर्व प्राथमिक वर्ष अपना महत्व रखते हैं। जो बच्चे इस स्तर पर अच्छी शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते हैं उन्हें अपने विषयों की मूलभूत बातें सही ढंग से समझने व सीखने में कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है। ऐसे बच्चे बाद में उच्च शिक्षा में परेशान होते हैं क्योंकि उनका बुनियादी ज्ञान कमजोर होता है। अगर पूर्व प्राथमिक वर्षों में बच्चों की गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा सुनिश्चित की जाती है तो अध्ययन की इस समस्या को दूर किया जा सकता है। वर्तमान शिक्षा नीति इन कमियों को अभिभूत करने का एक प्रयास है।

2. शिक्षा शास्त्र और पाठ्यचर्या प्रणाली में बदलाव

10+2 के स्थान पर 5+3+3+4 - शिक्षा की नई प्रणाली निम्न प्रारूप का पालन करेगी:

- 5 साल (3-8 वर्ष की आयु): मूलभूत/बुनियादी चरण (Foundational Stage)- इस चरण का मुख्य केंद्र भाषा कौशल को विकसित करना है। साथ ही इसमें खेल-आधारित शिक्षण तथा गतिविधि आधारित विधियां सम्मिलित है।
- 3 साल (8-11 वर्ष की आयु): प्रारंभिक चरण (Preparatory Stage)- इस चरण का आधार भाषा का विकास और संख्यात्मक कौशल है। खेल आधारित शिक्षा के अलावा कक्षा में वार्तालाप को सरल तथा सटीक रूप से करने पर जोर दिया गया है। इस कौशल से छात्र बेहतर तरीके से संवाद करना सीखेंगे, जो उन्हें न केवल खुद को अच्छी तरह से व्यक्त करने में मदद करेगा बल्कि दूसरों को बेहतर तरीके से समझने में भी सहायक

होगा। जिसके फलस्वरूप उनके आत्मविश्वास में भी वृद्धि होगी।

- 3 साल (11-14 वर्ष की आयु): मध्य चरण (Middle Stage)- इस चरण का लक्ष्य विज्ञान, गणित, कला, सामाजिक विज्ञान और मानविकी में अनुभवात्मक अधिगम के माध्यम से आलोचनात्मक सोच और शिक्षण को बढ़ावा देना है। यह सोच छात्रों को किसी भी विचार पर विश्वास करने या किसी गतिविधि को क्रियान्वित करने से पहले सोचने, जानकारी एकत्र करने और फिर उसका विश्लेषण करने में सक्षम बनाएगी। यह विचारधारा स्थिति को उसके सभी पक्ष-विपक्ष के साथ पूरी तरह तार्किक तरीके से देखने और फिर उसकी जांच करने में भी छात्रों की मदद करेगी। इसके साथ-साथ वे किसी भी विषय में अपनी एक समझ विकसित कर पाएंगे।
- 4 साल (14-18 वर्ष की आयु): माध्यमिक चरण (Secondary Stage)- इस चरण में छात्रों को एक बहु-विषयक प्रणाली के माध्यम से विषय संयोजन चुनने का अवसर मिलेगा। उदाहरण के तौर पर, इसके तहत एक छात्र भौतिकी के साथ भूगोल, लेखाशास्त्र के साथ जीव विज्ञान, और गणित के साथ संगीत का चयन कर सकता है। यह कदम विद्यार्थियों को ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में परस्पर समन्वय बनाते हुए एक संपूर्ण ज्ञान को अर्जित करने में सहायक सिद्ध होगा।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह वर्गीकरण छात्रों के संज्ञानात्मक-विकासात्मक चरणों पर आधारित है और सर्वोत्कृष्ट

अध्ययन सुनिश्चित करता है। इसके अलावा यह नई नीति हमारे राष्ट्र की विभिन्न भाषाओं और कला रूपों को बढ़ावा देने का भी एक प्रयास है। जैसा की अवगत है, वर्तमान काल में बच्चे और युवा अपनी सांस्कृतिक जड़ों से दूर जाते जा रहे हैं। यह कदम हमें अपने देश की जीवंत संस्कृति से जोड़ने की दिशा में एक सकारात्मक प्रयास है।

उपर्युक्त जानकारी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एनईपी 2020 सांस्कृतिक और सामाजिक पहलुओं का एक बहुत अच्छा समामेलन है और यह वर्तमान समय की आवश्यकता के अनुरूप है।

3. विज्ञान, मानविकी और वाणिज्य धाराओं के बीच लचीला अलगाव (Fflexible Distinction)

इस नीति में शैक्षिक धाराओं के अलावा पाठ्यचर्या और पाठ्येतर गतिविधियों, एवं व्यावसायिक और शैक्षणिक धाराओं के बीच भी कोई कड़ा (rigid) अलगाव नहीं है। मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य से यह पहलू इस बात की अभिस्वीकृति देता है कि प्रत्येक बच्चे का कौशल, योग्यता और अभिक्षमता अलग होती है जो कि एक तराजू से नहीं तौली जा सकती। पहले की शिक्षा प्रणाली के अनुसार छात्रों को निर्धारित प्रारूप के अनुसार ही अपने विषयों के चयन का मौका मिलता था परंतु यह नहीं नीति उन्हें अपनी दिलचस्पी तथा रूचि के अनुसार विषय चुनने की आजादी देती है। व्यवसाय विकल्पों को सीमित करने के बजाय यह उनकी कौशल और रुचियों के अनुसार उनकी क्षमता को प्रखर करने का मार्ग प्रशस्त करती है। इसका उद्देश्य माता-पिता और छात्रों की मानसिकता में भी बदलाव लाना है, कि जीवन में इंजीनियरिंग, चिकित्सा या विज्ञान में व्यवसाय के

अलावा और भी बहुत विकल्प है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के माध्यमिक स्तर में एक बहु-विषयक प्रणाली की ओर बदलाव तैयार किया गया है।

4. रटने के बजाय वास्तविक ज्ञान के मूल्यांकन को प्राथमिकता

भारत में परिवार की प्रतिष्ठा को शैक्षिक उपलब्धि से भी आंका जाता है। इसके कारण छात्र उच्च शैक्षिक मानकों को प्राप्त करने के लिए प्रायः दबाव का अनुभव करते हैं, इस बात की पुष्टि शोध अध्ययनों से की जा सकती है (देब, स्ट्रोडल, & सन, 2015)। अक्सर बच्चे उच्च अंक प्राप्त करने के लिए रटने का सहारा लेते हैं और वास्तविक ज्ञान से वंचित रह जाते हैं। विद्यार्थी बोर्ड परीक्षाओं से इस कदर घबराए रहते हैं कि अच्छे अंक प्राप्त करने में असमर्थ होने पर उन्हें शर्मिंदगी का सामना करना पड़ता है। उन्हें माता पिता की डांट-डपट और आसपास के लोगों के ताने सुनने को मिलते हैं। यह सब बच्चों में तनाव, चिंता और अवसाद पैदा करता है और परिणामस्वरूप उनके मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अफसोस की बात है कि कागज पर मौजूद एक संख्या छात्रों के लिए जीने या खुद की जान लेने के लिए एक निर्णायक कारक बन जाती है। एनईपी के द्वारा बोर्ड परीक्षाओं के इस दबाव को कम करने का प्रयत्न किया गया है। पहले की मूल्यांकन विधि को निरंतर मूल्यांकन से बदल दिया गया है और इस बात का प्रयास किया गया है कि बच्चों को वास्तविक ज्ञान मिल सके। ऐसी उम्मीद की जा सकती है कि इस प्रयास के द्वारा विद्यार्थी बिना किसी दबाव के ज्ञान अर्जित करने में समर्थ होंगे एवं अपनी इच्छा अनुसार कार्य कौशल को बढ़ाते हुए सही दिशा में अग्रसर हो पाएंगे।

5. मुक्त शिक्षा और दूरस्थ शिक्षा का विस्तार

एनईपी न केवल शैक्षिक सुधार लाने का प्रयास करती है बल्कि यह शिक्षा को सुलभ और सभी के लिए उपलब्ध कराने पर भी ध्यान केंद्रित करती है। एनईपी 2020 के प्रमुख लक्ष्यों में से एक 2035 तक सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) को 50% तक बढ़ाना है। इससे यह सुनिश्चित होगा कि सभी को उनकी सुविधा के अनुसार शिक्षा प्राप्त हो। जो लोग कॉलेज दूर होने के कारण, किसी सामाजिक समस्या या बुनियादी ढांचे की कमी की वजह से कॉलेज नहीं जा सकते हैं वह दूरस्थ शिक्षा का विकल्प चुन सकते हैं। शिक्षा जितनी अधिक सुलभ होगी लोग उतने ही अधिक सशक्त होंगे और सशक्त लोग राष्ट्र को मजबूत करने में सहायक होंगे।

प्रमुख खिलाड़ियों (Key Players) की भूमिका

किसी भी नीति की सफलता उसके क्रियान्वयन में निहित होती है, जो कि उसमें शामिल लोगों की कार्य-पद्धति से तय होती है। एनईपी के क्रियान्वयन में प्रमुख भूमिका निभाने वाले कुछ लोग हैं-

शासन (Governance)- एक संस्था उतनी ही मजबूत होती है जितना कि उसका नेतृत्व। राष्ट्र के उचित संचालन के लिए एक अच्छे शासन और नीतियों की अहम भूमिका होती है। सरकारी ढांचे के साथ-साथ इसके अधीन संस्थान भी विकास की राह पर रहे, यह सुनिश्चित करने के लिए ऐसी नीतियां बनाना आवश्यक है जो छात्रों को योग्य, सक्षम और दूरदर्शी बना सकें।

शिक्षक- वर्तमान शिक्षा संकाय शिक्षण में परिवर्तन लागू करने के लिए पर्याप्त कौशल से सुसज्जित (equipped) नहीं है। शिक्षण संसर्ग को एनईपी के अंतर्गत काम करने के लिए अच्छी

तरह से प्रशिक्षित किए जाने की आवश्यकता है। उचित प्रशिक्षण के अलावा शिक्षा क्षेत्र के समुचित कार्य के लिए एक और बात का ध्यान रखा जाना होगा कि शिक्षकों पर अतिरिक्त जिम्मेदारियां ना दी जाएँ। यह अनावश्यक अतिरिक्त जिम्मेदारियाँ उनके शिक्षण के मुख्य कर्तव्य में बाधा डालती हैं तथा उनके कार्य संपादन में रुकावट पैदा कर सकती हैं।

माता-पिता- बच्चों के जीवन में माता-पिता की मुख्य भूमिका होती है। वे अपने शब्दों, कार्यों, दृष्टिकोण के माध्यम से अपने बच्चों के जीवन को प्रभावित कर सकते हैं। बच्चा प्रोत्साहित होगा या हतोत्साहित यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि माता-पिता की क्या अपेक्षाएँ हैं, वे बच्चे को कैसा माहौल दे रहे हैं और शिक्षा के विषय में उनकी मानसिकता कैसी है। उन्हें इस बात को समझने की जरूरत होगी की परीक्षा में मिले अंकों से ज्यादा जरूरी यह है कि बच्चे ने क्या सीखा। अंतः-संस्कृति शोध से पता चला है कि माता-पिता की गर्मजोशी, स्वीकृति, सुरक्षा और देखभाल की धारणा आमतौर पर बच्चों के भावनात्मक सामाजिक और मानसिक कल्याण के सकारात्मक परिणामों से जुड़ी होती है, जबकि अति रक्षा करना अतिनियंत्रण करना तथा उपेक्षा करना अवांछनीय परिणामों से जुड़ा है (साहित्य, मनोहरी और विजया, 2019)। माता-पिता को अपने बच्चों की मानसिक और भावनात्मक पहलू के प्रति संवेदनशील होने की आवश्यकता है ताकि वे अपने बच्चों के जीवन में मूल्यवान और सहायक स्तंभ बन सकें ।

आधारभूत संरचना (Infrastructure)- एनईपी के निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए भारत को अपने बुनियादी ढांचे को बढ़ावा देने की आवश्यकता होगी। उदाहरण के लिए, भारत देश डिजिटल इंडिया कार्यक्रम के अंतर्गत काम कर रहा है और सभी

विभाग चाहे वह शिक्षा क्षेत्र हो, मनोरंजन उद्योग, यात्रा उद्योग या वित्तीय क्षेत्र हो, सभी डिजिटल हो रहे हैं। मगर खराब इंटरनेट सेवाओं के कारण देश के ग्रामीण हिस्सों में यह डिजिटल पहलू अच्छी तरह से कारगर नहीं है। इस मुद्दे के कारण इन भागों की शिक्षा प्रणाली पिछड़ रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में ऑनलाइन शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए उचित और अच्छी इंटरनेट सुविधाएं प्रदान करनी होंगी ताकि ग्रामीण छात्र भी डिजिटलीकरण का लाभ उठा सकें और पीछे ना रहे। विशेष रूप से पिछले वर्ष से जब डिजिटल प्लेटफॉर्म शिक्षा प्राप्त करने का एकमात्र तरीका था तब दूरस्थ क्षेत्रों में इंटरनेट सुविधाओं की कमी ने छात्रों को बहुत नुकसान पहूचायाँ। किसी भी छात्र को शिक्षा की प्राप्ति के साथ समझौता ना करना पड़े, यह सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्र की कनेक्टिविटी को मजबूत करना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

उपसंहार

इस नीति में शिक्षार्थी, शिक्षक एवं शैक्षिक संस्थानों को स्वावलंबन की ओर ले जाने का आधार प्रदान किया गया है। विद्यार्थी की आयु के अनुरूप, उसके मानसिक विकास को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम को रचा गया है। विद्यार्थी अपनी दिलचस्पी एवं कौशल के अनुरूप अपने विषय चुन सकते हैं। यह कदम ज्ञान की सभी शाखाओं को एक माला के रूप में पिरोने में सार्थक सिद्ध हो सकता है। भूमंडलीकरण के इस दौर में हम जी रहे हैं इस शिक्षा नीति के भिन्न प्रवेश-निकास की सहूलियत छात्रों को अपने जीवन को स्वावलंबित बनाने में सहायक हो सकती है। जिस तरह कोई वृक्ष या इमारत बिना जड़ों के फल-फूल नहीं सकती, उसी तरह जब तक शिक्षा को देश की संस्कृति, समाज, कार्य-व्यवस्था के अनुरूप नहीं

ढाला जाएगा, वे छात्रों को एक रोबोट से अधिक नहीं बना पाएगी। हम सभी का यह प्रयास होना चाहिए कि हम शिक्षा से विद्यार्थी समाज एवं देश का स्वावलंबन कर सकें।

संदर्भ

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020). मानव संसाधन विकास मंत्रालय. भारत सरकार।

देब, एस., स्ट्रोडल, ई. एंड सन, जे. (2015). एकेडमिक स्ट्रेस, पैरेंटल प्रेशर. एंग्जायटी एंड मेंटल हेल्थ अमंग इंडियन हाई स्कूल स्टूडेंट्स। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइकोलॉजी एंड बिहेवियरल साइंस, 5(1), 26-34.

साहित्य, बी. आर., मनोहरी, एस. एम., एंड विजया, आर. (2019). पेरेंटिंग स्टाइल्स एंड इट्स इंपैक्ट ऑन चिल्ड्रन- अ क्रॉस कल्चरल रिव्यू विद फोकस ऑन इंडिया। मेंटल हेल्थ, रिलिजन एंड कल्चर, 22(4), 357-383.

जोशी, ए. (2005).अंडरस्टैंडिंग एशियन इंडियन फैमिली : फैसिलिटेटिंग मीनिंगफुल होम-स्कूल रिलेशंस। वाईसी यंग चिल्ड्रेन, 60(3), 75.

भट्टाचार्य, जी. (2000). द स्कूल एडजस्टमेंट ऑफ साउथ एशियन इमीग्रेंट चिल्ड्रन इन द यूनाइटेड स्टेट्स। ऐडोलेसन्स, 35(137), 77.

साहित्य, समाज और संस्कृति

डॉ. सूर्यकांत त्रिपाठी
आचार्य, हिंदी विभाग,
तेजपुर वि.वि., तेजपुर, असम।
दूरभाष: 09435384799

"वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रर्वतते"1 यानी वाणी की कृपा से ही मनुष्य प्राणियों में सर्वोत्तम हुआ और इसी के बलबूते मानव-समाज का निर्माण और विकास संभव हो सका। अद्भुत क्षमता संपन्न वाणी वाड.मय (लिटरेचर) के रूप में सुरक्षित है और साहित्य इसी वाड.मय का समानार्थी शब्द है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'ज्ञानराशि के संचित कोश का नाम साहित्य है।'2 ध्यातव्य है साहित्य यहाँ वाड.मय के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है परंतु वाड.्मय और साहित्य में किंचित पार्थक्य है। वाड्.मय में वाचिक परम्परा से गृहीत ज्ञान का भी समावेश होता है जबकि साहित्य में ज्ञान और अनुभव का ही लिपिबद्ध रूप ही प्राप्त होता है। अतः साहित्य मनुष्य के अनुभव तथा ज्ञान का वह रूप है जो लिपिबद्ध होकर हमारे सम्मुख उपस्थित होता है अथवा सुरक्षित रहता है। वेद का प्रारंभिक स्वरूप वाड्.मय ही है, इसी हेतु उसे श्रुति कहा जाता है। साहित्य के मुख्यतया पाँच रूप होते हैं:-

1. विज्ञान 2. दर्शन 3. शास्त्र 4. इतिहास 5. काव्य।

उक्त सभी रूप क्रमागत तर्क तथा प्रयोग पर आधारित सिद्धांत और नियमों को स्पष्ट करने वाला प्रत्यक्ष अथवा इंद्रियगोचर, स्थूल और सूक्ष्म तत्वों का व्यवस्थित ज्ञान है।

संप्रति साहित्य के विषय में बहुत से प्रश्न उठते है यथा-वह उपयोगी है अथवा नहीं, सार्थक है अथवा नहीं और आज के लिहाज़ से समाज के विकास में ःसहयोगी है अथवा नहीं। इन सभी प्रश्नों को गौर करते हुए एक और प्रश्न उठता है जो अति महत्वपूर्ण प्रश्न है वह यह कि साहित्य अब सहित के भाव की आवश्यकता की पूर्ति क्यों नहीं कर रहा है। किसके सहित हो, किसके साथ हो यह निर्णय करना आज सरल नहीं है। आज लगभग विस्मृत साहित्य किसी कोने में सजाकर रखने की शोभा बढ़ाने वाली चीज़ नहीं हैं वह अपने अतीव निविड़ क्षण में सुनाई पड़नेवाली झनकार है। इन झनकारों के साथ जो जीवन में और अनुभव जुड़ते है और वे अनुभव इतने विवश कर देते हैं कि उन्हें अभिव्यक्त करना आवश्यक हो जाता है तो वही साहित्य बनता है। इस प्रकार साहित्य एक ही साथ जीवन के साथ होता है तथा अपने साहित्यिक दायरें के साथ भी। और सबसे सर्वाधिक साथ होता है एक ऐसे पाठक या श्रोता के साथ जो हमारी भाषा का सझयिता है, साझीदार है और साथ ही हमारी जातीय स्मृति का भी साझीदार है। इस प्रकार हम देखते है कि साहित्य साझीदारी के तकाजे से लिखा जाता है और साझीदारी का तकाज़ा करता है। वह जो कुछ भी करता है संवेदनशील मन से करता है, संवेदनशील चिंतन से करता है। ऐसा संवेदनशील मन बाहरी लोगों का संकल्प निश्चय ही कुछ अधिक प्रभावी रूप में करता है।

''साहित्य चिंतक पं. विद्यानिवास मिश्र ने अपनी पुस्तक 'साहित्य का खुला आकाश' में साहित्य की कई पारंपरिक व्याख्याएँ

की है और उसमें उसका एक अर्थ हित के साथ दिया है। उन्होंने 'हित' से संयुक्त होने के भी कई अर्थ दिए हैं। उनमें प्रमुख ये है- साहित्य हित अर्थात निहित है, एक सृष्टि है जो सृष्टि का विकल्प नहीं, सृष्टि का एक शब्द रूप में रूपांतरण है। दूसरा अर्थ है कि साहित्य प्रहित है अर्थात साहित्य संप्रेषण है और ऐसा संप्रेषण है जिसमें संप्रेषण शब्द भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना इन शब्दों में निहित संदेश। इसलिए वह संप्रेषण से अधिक संयोजन है, हृदय संवाद है। तीसरा अर्थ है कि साहित्य पिहित है अर्थात कुछ न कुछ ढका हुआ है। यह ढका हुआ एक तीव्र साबित प्रकाश की पुकार लगाता है। हर व्यक्ति के भीतर में कुछ न कुछ प्रकाश होता है। उस प्रकाश को साहित्य में एक आमंत्रण है।

हित का चौथा अर्थ है सन्निहित अर्थात अत्यंत निकट। साहित्य आत्मीयता का आमंत्रण है। यह आत्मीयता सहज होने से रचनाकार के व्यक्ति में अभिमान के विगलन से आती है। हित का पाँचवा अर्थ है निहित होना अर्थात शब्द और अर्थ में उचित सन्निवेश के रूप में तथा स्मृतियों में उचित विन्यास के रूप में प्रस्तुत साहित्य न केवल संप्रेष्य होता है, वही बार-बार दुहराए जाने पर नये अर्थ का संदेश देता है। हित का छठा अर्थ है अवहित होना अर्थात बड़ी एकचिŸाता व एकाग्रता के साथ रचना ही साहित्य है। इन सब अर्थों को जोड़कर ही हित से संयुक्त होने का भाव साहित्य कहलाता है।''3

यह संभव है कि सभी अर्थ प्रत्यक्ष रूप से साथ न दृष्टिगोचर हो किंतु कहीं न कहीं ये विवक्षित रहते है। रचनाकार के मन में कहीं न कहीं ये सभी भाव दबे हुए रहते है तुलसीदास के उपमा की तरह ''उपजहिं अनत अनत छवि लहहिं''4। साहित्य उपजता कहीं है और शोभायमान कहीं होता है। इसके अतिरिक्त

साहित्य जो कुछ भी है वह साहित्य से इतर शास्त्रों के विद्वानों के गहन चिंतन से आविष्कृत अपूर्व है। सच पूछा जाय तो साहित्य केवल चिŸा का प्राण और प्राण का शब्द बनने का एक सनातन व्यापार है। जो तब तक नहीं समाप्त होगा जब तक मनुष्य है और उसकी संवेदना है।

समाज और साहित्य के मध्य एक अजीब रिश्ता है, नाता है, इनका एक दूसरे के बिना काम भी नहीं चलता और ये एक दूसरे से निरपेक्ष भी होना चाहते है। साहित्य समाज के लिए होता है पर समाज साहित्य से नियमित होने के लिए तैयार होता है। इसी प्रकार साहित्य का सामाजिक संप्रेषण के बिना कोई अस्तित्व नहीं। परंतु साहित्य सामाजिक व्यवस्था को यथा रूप स्वीकार नहीं करता। साहित्य सामाजिक व्यवस्था को जाँचता है, परखता है फिर उसमें प्रश्न चिह्न लगाता है, उसकी जड़ता, उसकी गतिहीनता, उसकी निर्ममता और उसकी विसंगति मनुष्य के व्यक्तित्व को कितना तोड़ रहे है, यह अनुभव उसी समाज से बताना चाहता है, जिसमें वह व्यवस्था है, यह जोखिम उठाकर कि समाज को वह प्रतिकार शायद न लगे या कभी-कभी वह धक्कामार लगे अथवा समाज के नियामक वर्ग-विशेष को वह एकदम ध्वंसक लगे। समाज भी साहित्यिक छेड़छाड़ को बहुत गंभीरता से नहीं लेता, जितनी गंभीरता से वह विज्ञान और शास्त्र के निष्कर्षों को लेता है। साहित्यिक होना समाज में गैर जिम्मेवार होने का पर्याय माना जाता है। साहित्य, समाज के अवचेतन मन में रहता है, समाज का हर व्यक्ति जब अपने में प्रविष्ट होता है तो साहित्य उसे छू लेता है, वैसे वह साहित्य से ऐसे असंपृक्त रहता है जैसे वह कोई निष्प्रयोजन वस्तु। साहित्य भी समाज से ही श्वास लेता है, समाज में ही निःश्वास छोड़ता है पर

समाज की चिंता नहीं करता। वह समाज से ऐसे खेलता है जैसे बच्चा अपनी परछाई से खेलता है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। यानी उसमें समाज का यर्थाथ होता है या होना चाहिए। किंतु प्राचीन भारतीय साहित्य आर्दशवादी और कवित्वमय है। वहाँ मात्र कल्पना का विस्तार दिखाई देता है। इस प्रकार हमारा सारा साहित्य कल्पना और भावना से रंगा हुआ है। किंचित नाट्य रचनाएँ और कथाएँ ही है जिनमें सामाजिक जीवन की झलक दिखती है लेकिन उनकी भी रचना-शैली काव्यमय, कल्पना प्रौढ़ और आदर्शवादी है। सौंदर्यप्रियता एवं भाव-सबलता के कारण भारतीय साहित्य मनीषा की सदैव यही चेष्टा रही है कि संसार के अनुभव आदर्श रूप में प्रकट किए जाय। यथातथ्य निरूपण प्राचीन साहित्यकारों ने कदाचित निरूद्देश्य माना क्योंकि यह धारणा मूलबद्ध थी कि साहित्य से लोकमंगल तथा आनंद की उपलब्धि होती है।

यही पर साहित्य-निर्माण में समाज के सापेक्ष प्रश्न का महत्व भी उभरकर सामने आता है। समस्या है कि साहित्य की रचना में कवि की प्रतिभा का अधिक मूल्य है या फिर सामाजिक शक्तियों और परिवेश का। आधुनिक जगत में सामाजिक शक्तियों के प्रभाव की गहनता का विस्तार तो जगजाहिर है। अलावा इसके हम साहित्यकार और उसकी प्रतिभा को समाज से अलगा नहीं सकते। मानसिक चेष्टाएँ सदैव सामाजिक आदर्शों एवं प्रवत्तियोपर्वत्तियों के अनुरूप बदलती रहती है। साहित्यकार के सामाजिक उŸारदायित्व का गांभीर्य भी अनुदिन बढ़ता जा रहा है। स्वान्तः सुखाय की रचना अब कौतूहल का विषय बन चुकी है और मात्र दूसरों के मनोरंजनार्थ साहित्य सर्जक आदर नहीं प्राप्त करते। इस धारणा को अधिकाधिक बल प्राप्त हो रहा है। आनंद प्रदान

करने के अलावा साहित्यकार समाज के प्रति अपने दायित्व का निर्वहन भी करता है। ऊपर लिखी सभी बातों को मान लेने पर भी तो यह निर्विवाद सत्य है कि साहित्य का सर्जक व्यक्ति ही है और यही व्यक्ति समाज का अंग ही है। उसके प्रतिभा के अभाव में साहित्य सर्जन असंभव हो जाता है। परंतु साहित्यकार को ही सर्वस्व मान लेने पर साहित्य जगत में अराजकता का भय उत्पन्न हो जाता है।

समाज के लिए व्यवस्था बहुत जरूरी है उसकी गति के लिए भी जरूरी है, इस व्यवस्था को मानकर चलना पड़ता है लेकिन यदा-कदा ऐसा होता है कि व्यवस्था साधन न बनकर साध्य बन जाती है तब वह समाज को मानकर चलने लगती है। बतौर उदाहरण भारतीय समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था को लें-श्रम का तथा जीवन के विभिन्न सोपानों का बँटवारा एक समूचे और समरस जीवन के लिए स्वीकारा गया और इनके मध्य आपस में अवलम्बन का भाव भी रखा गया। इसने समाज को गति प्रदान करने में मदद की। लेकिन इस व्यवस्था में जब जड़ता आने लगी तथा आपसी अवलम्बीभाव छीजने लगा, समाज का मंगल इसका लक्ष्य न रहकर यह अपने लिए खुद लक्ष्य बनने लगी, तब इसे धर्म ने छेड़ा, दर्शन ने छेड़ा और साहित्य ने भी छेड़ा। भारत में तीनों अलग बहुत कम रहे, आज ही कुछ अलग दीख रहे हैं। वस्तुतः इसीलिए छेड़ने की क्षमता आज विभक्त हो गयी। उसे छेड़ने का नतीजा किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि व्यवस्था में परिवर्तन आ सका। यह निर भ्रम होगा, लेकिन व्यवस्था प्रश्नों से घिर गई और उसकी मान्यता संदिग्ध हो गई। इससे परिवर्तन की संभावना मात्र पैदा हुई। वैष्णव आचार्यों तथा वैष्णवों भक्त कवियों ने अपने-तरीके से सामाजिक स्तर भेद की मान्यता पर प्रहार किया। किसी ने इसकी एकदम

उपेक्षा की, इसे अनदेखा किया। उदाहरणस्वरूप चैतन्य महाप्रभु ने एक ऐसा भाव जगाया जिसमें केवल प्रेम था, अन्य दूसरे भावों को धराशायी करने वाले प्रेम का भाव था। कुछ ने इसे सामाजिक वस्तु स्थिति के रूप में स्वीकारा तो जरूर लेकिन इसकी भूमिका छोटी कर दी। हरि के भाव की, हरि का होना, राम का होना अधिक बड़ा है, जाति-पाँति, धन-धर्म की बड़ाई उससे छोटी है। तुलसीदास जी ने

"जाति-पाँति धन-धरम बड़ाई। सब तजि तुम्हहिं रहहि लौ लाई।।"5

और

"सो सब धरम-करम जरि जाऊं । जेंहि न राम पद पंकज भाऊ।।"6

जैसी नई स्थापनाओं से बहुत बड़े तथा आत्मविश्वसनीय मूल्य पर अधिक विश्वसनीय मूल्य पर जोड़ दिया। प्रचलित सामाजिक ऊँच-नीच की व्यवस्था ने स्थिर बढ़ाई के स्थान को हिलाकर नीचे ला दिया। तीसरे प्रकार के कबीर-दादू, नानक-नामदेव जैसे संतों ने इसे सिरे से नकार दिया। उन्होंने सीधा प्रहार किया कि यह ऊँच-नीच का भाव झूठा है, यह समाज का कोढ़ है, उन्होंने इस व्यवस्था से दबे-कूचले समाज में विश्वास भरा कि तुम ऊपर उठो, तुम कहीं भी किसी भी मायने में हीन नहंी हो। लेकिन उक्त तीन प्रकारों की छेड़खानियाँ कुछ न कर पायीं। ये स्तर-भेद बने हुए है और ऐसी सोचनीय स्थिति आ गयी कि संत रविदास केवल जूते गाँठनेवाली जाति के देवता बनकर एक जाति के हो गए। संत मलूकदास खत्री हो गए, कोई संत ठाकुर हो गए, कोई संत ब्राह्मण हो गए। नतीजा यह हुआ कि एक सीमित महत्व प्राप्त जाति एक राजनीतिक अस्मिता की पहचान बनने लगी, वही शक्ति का स्रोत बनने लगी। इससे स्पष्ट होता है कि सामाजिक मान्यता बदलने का काम साहित्य नहीं करता, वह बदलाव के लिए मन में उद्वेग पैदा

करता है। बदलाव जिस सामाजिक संकल्प से आता है उसके लिए कुछ और प्रयत्न आवश्यक होते हैं। कबीर, नानक, चैतन्य ने कभी साहित्य रचना ही नहीं, प्रयत्न भी किया, यात्राएँ की। लेकिन आज तो साहित्यकार सारा प्रयत्न शब्द तक ही सीमित रखे हुए है। हाँ उसका शब्द पहले से अधिक मुखर है पर भीतर से खाली है। इसीलिए आवाज कुछ और अधिक निकलती है। अचानक समाज शब्द साहित्य के ऊपर भूत बनकर बोलने लगा है और सामाजिक बदलाव साहित्य का एक दिवास्वप्न बन गया है।

साहित्य की सृष्टि इस प्रकार न व्यक्ति में होती है न समाज में होती है। वह व्यवस्था में जन्म नहीं लेता। वह जन्म लेता है चित्र की एक विचित्र अवस्था में, जिसमें सारी व्यवस्था व्यक्ति की अपनी और समाज की एक भूलनेवाली रंगमंच की तरह घूमती रहती है। आज की जिंदगी में साहित्य माना जाने लगा जिसके कई कारण है। एक तो सूचनात्मक ज्ञान का बड़ी तेजी से प्रसार हो रहा है कि उसी को संभालने में मनुष्य की संवेदना चूकने लगती है। दूसरे रचनात्मक व्यापार को हम दो कोटियों में बाँट चुके है-उपयोगी और स्वांत सुखाय। स्वांत सुखाय व्यापार बस थोड़े से लोगों के लिए जिनको इसको समझने-समझाने का गुरूतर भार मिला हुआ है। बहुत कम बचे है जो उस साहित्य को बार-बार रस लेकर पढ़ना चाहते है। तीसरे यदि साहित्य को मनोरंजन का साधन माने तो वह मनोरंजन वैद्युती (इलेक्ट्रॉनिक्स)मीडिया से भरपूर हो जाता है। उसमें जितना साहित्य परस जाए वही काफी है। उसको जितना साहित्य सौंप दिया जा सके उतना ही उसका अंश उपादेय है, शेष हेय है। इस प्रकार का विचार घर करता जा रहा है। साहित्यकार भी इसलिए संप्रेषण की विवशता के कारण समूह संचार माध्यमों विशेष रूप से वैद्युती का मुँह जोह रहा है। कुल मिलाकर स्थिति बड़ी

निराशाजनक है। जनतंत्र की दी हुई स्वतंत्रता के बावजूद साहित्य उत्पाद के रूप में लिया जाता है। इसीलिए रचनाकार उपभोक्ता की पसंदगी से बँधा हुआ है। यह 'खादी का गीत' मांगे तो खादी का देगा, फिल्मी माले मांगे तो फिल्मी देगा। गाहक की मर्जी, वह 'गीत-फरोश' है, वह विक्रेता है।

साहित्य इस युग में बस कोरा चिड़ियाघर है, कहीं बाड़ों के भीतर चक्कर मारनेवाला प्राणी है वह कौतुहूल का विषय है। ऐसे दहाड़ता है शेर, ऐसे कविता पढ़ते है कवि, ऐसे चहचहाती है चिड़िया, ऐसे चहचहाती है लघुकथा। कभी-कभी बच्चों को दिखा देना चाहिए। ऐसे साहित्य को समाज का अंग कैसे माना जाए ? इस प्रश्न से व्यथित पं. विद्यानिवास मिश्र द्वारा दिए उत्तर का उद्धरण निम्नवत् द्रष्टव्य है:-

"साहित्य वाचिक परंपरा के देश में अब भी कंठ में है जब चाहे फूट पड़ता है। माना चक्की नहीं चलती और चक्की पर गेंहूँ, जौ पीसते समय तो पूरी राम कथा या ठीक-ठीक कहें सीता की कथा गा दी जाती थी, वह विलाप दूर-दूर तक भोर में गूँज जाता था। वन में अकेली सीता किसको जोहेगी। जब प्रसव की पीड़ा उभरेगी कौन संभालेगा इस जंगल में अगर रात में बच्चा हुआ तो कैसे देखूँगी अपने बच्चे का मुँह और लकड़ी जलाकर प्रकाश करती है, नवजात संतान का मुँह देखती है। पूरा वन सीता को संभालता है। मिथिला के गांव के हल चलाने वाले विद्यापति का पद गाते थे। चरवाहे एक-से-एक मन को बींधने वाले गीत टेरते थे। अनपढ़ लोग भी बात-बात में रहीम, कबीर, तुलसी के उद्धरण देते थे। आज भी रामचरित मानस जैसा ग्रंथ निरंतर बाचा जाता है, सूना जाता है कथाओं में आँसू संभालते हुए दीख जाते है परंतु मेरा यह उत्तर अंकित नहीं होता। शिक्षित कहे जाने वाले मन पर वे ऐसे साहित्य

को कुसंस्कार ही मानते है, जो असली साहित्य है या जो अपने समय के मुताबिक प्राणवान साहित्य है उसे संस्कृति का सार सर्वस्व कहते है और इससे संतुष्ट रहते है कि यह विरल है और इसके चाहक विरल है। बस यह हीरे जवाहरात की तरह और यही गौरव इसे दिखाए रखेगा।"7

हमारी संस्कृति के केन्द्र में है साहित्य। और भी साहित्य समाज के रूप में। यह संस्कृति नये-नये अवतरणों की, नये जन्म की, प्रत्येक उत्सव में नये होने की कामना की संस्कृति हैं। इसी अर्थ में साहित्य, समाज और संस्कृति तीनों परस्पर संबंद्ध है, जुड़े हैं। हमारी संस्कृति में संबंधों के निर्वाह का एक लंबा तारतम्य है, सिलसिला है। जिसमें कोई पराया नहीं होता और ऐसा कोई औपचारिक रूप से अपना भी नहीं होता कि उसे कई श्रेणियों में विभक्त किया जा सके। भारतीय संस्कृति के साथ जिनका जुड़ाव रहा है वे अलग-अलग कारणों से जुड़े रहे हैं-कुछ भाषा के कारण, कुछ साहित्य के कारण, कुछ दार्शनिक ग्रंथों के कारण, कुछ विभिन्न मतों के प्रसार के कारण, कुछ व्यापार के कारण, कुछ आक्रामक बनकर, कुछ शरणागत बनकर। लेकिन सभी परिवार के ताने-बाने में ऐसे रच-पच गए कि भारत में कोई उपनिवेश नहीं बनाया पर भारत का प्रसार अब तक होता रहा है।

भारतीय संस्कृति की उदारता के कारण ही थाईलैंड, हिन्देशिया और कंबोडिया तक अयोध्या जयकृत जैसे नाम यात्रा करते है, नाम के साथ उनमें अंतनिर्हित भाव यात्रा करते हैं, रामायण-महाभारत की कहानियाँ चली जाती है जैसे कि अपने ही जातीय जीवन की कहानियाँ हो। संस्कृत, पालि मूल रूप में भी जाती है, अनुवाद के रूप में भी जाती है, मांगलिक प्रतीक और

अनुष्ठान भी यात्रा करते है। अजनबी या आयातित बनकर नहीं एकदम सगे बनकर।

भारतीय संस्कृति की मूल शक्ति उसकी सर्वमयता है। उसके देवी-देवता सबके है, वे सर्वमय हैं। उपनिषदों में उल्लेख है कि जो सबको देखता है वही देखता है, जो सबको नहीं देख पाता, वह जीवन को नहीं समझ सकता क्योंकि तब मृत्यु से आतंकित रहता है, व्यक्ति के रूप में वह असुरक्षित रहता है, सबके साथ जुड़कर वह अमर हो जाता है। वह अपनी संतान में जीवन की संभावना देखता है, वह स्वयं को अपनी पूर्वजों की अधूरी आकांक्षाओं की पूर्ति के रूप में देखता है। इसी सर्वमयता का परिणाम है कि यहाँ न कोई हिन्दू मन है, न मुस्लिम मन है, न इसाई मन है बस भारतीय मन है। ऐसा न होता तो यूनान के तत्व चिंतकों को वराहमिहिर ने ऋषि न कहा होता, ऐसा न होता तो पश्चिमी चिंतन को भारत में विश्व में सर्वाधिक गंभीरता से न लिया होता। यही है जो हिंदू को जायसी के पद्मावत का रसास्वाद कराता है। मुसलमान को कृष्ण के सौंदर्य की ओर आकृष्ट करता है। माइकल मधुसूदन दत्त से विरहिणी ब्रजांगना लिखवाता है। इसी सर्वमयता के कारण हिंदू हिंदू भी रहता, भारतीय भी रहता, मुसलमान मुसलमान भी रहता और तूतिए हिंद भी रहता है, इसाई इसाई भी रहता है और रामचरित मानस का अंग्रेजी अनुवाद ही नहीं करता, ब्रजभाषा में कविता भी करता है। इस समन्वय का सबसे जीता जागता उदाहरण दक्षिण-पूर्व में एशिया की कला-कविता जहाँ पर भारतीय, महाद्वीप के कथानक का नया विस्तार हुआ है लेकिन मूल संवेदना वही है रूपो में, उनके अभिलक्षणों में अपनी जातीय कल्पना के अनुसार यत्किंचित परिवर्तन भी किए गए है। इससे अलग पहचान भी होती है साथ ही यह भी पहचान होती है कि कहीं हम उनके भीतर है।

समन्वय खुलेमन से होता है और खुलेमन वाला ही समन्वित होने के लिए तैयार रहता है। भारत के परिवेश में यह अद्भूत बात थी कि इस्लाम और ईसाइयत से पर्याप्त द्वंद थी। इसलिए यहाँ पहले ही धर्म जितना था उतना साफ था। उसी को मानकर लोग जुड़े। ज्ञान-विज्ञान का आदान-प्रदान हुआ तथा काव्य शैलियों की लेन-देन हुई। कला भंगिमाओं का भी लेन-देन हुआ और क्रमशः एक ने दूसरे के गुण-दोषों को अपना लिया। सबने यह पहचाना कि संस्कृति के अनेक उपादान बराबर हो सकते है। मज़हब भले न हो और मज़हब के रहते हुए हज़ारों ऐसी बातें हो सकती है जहाँ सांझेदारी और बराबर की साझेदारी संभव है। इस पहचान के कारण कुछ विशेष क्षेत्रों में कुछ दिखावटी बातें भले हुई हो पर हिंदू कविता, मुस्लिम कविता, ईसाई कविता अथवा हिंदू चित्रकला, हिंदू संगीत, मुस्लिम चित्रकला, मुस्लिम संगीत जैसे भेद नहीं बढ़े। संगीत के घरानों, विधा की गुरू परंपरा, यहाँ तक की साधना की परंपरा में भी गुरू-शिष्य भिन्न मज़हबों के लोग कम ही सही पर लोग बराबर देखे जाते हैं।

हमारे देश में समन्वय की संभावना एक और कारण से बनी। हमारे देश में नस्ल-परस्ती नहीं रही। उपनिवेशी अभिसंधि के कारण आर्य-द्रविड़, कोल-किरात विभाजन हमारे मन में चोर की तरह चाहे बैठा हो उसके पहले पूरा देश एक महाजाति था। जायसी ने हिंदू और तुरुक का विभाजन स्वदेशी और विदेशी के अर्थ में किया।

एक तीसरा कारण भी था-यहाँ की प्रकृति, पहाड़-पहाड़िया, नदिया, झरने और घने बाग, लहलहाते खेत। इन सबसे सबको जुड़ाव रहा। हिमालय सबका सिरमौर रहा। गंगा सबके लिए पवित्र रही। अमराईयां सबको छाह देती रहीं। यहाँ की चाँदनी और धूप सबको नहलाती रही। इतनी उदार प्रकृति, इतना विकसित आकाश, इतनी

बड़ी समुद्रतट रेखा, बर्फ ढके पहाड़, पत्थरों को तोड़कर बहनेवाली नदियां, रंग-बिरंगे पखेरू, ढेर-सारे खुशबूओं और रंगों के फूल सबका मन हरते रहे। इसके साथ किसी ने भेदभाव नहीं किया। इसका जादुई प्रभाव पड़ा है, यहाँ सिकुड़ना संभव नहीं, यहाँ पुरइन पात की तरह पसरना ही मनुष्य की नियति है।

ये भाव किसी जाति विशेष, इतिहास विशेष, धर्म-ग्रंथ विशेष की इज़ारेदारी नहीं, सबके हैं। बस हाथ बढ़ाइए जितना आप ले सके वह सब आपका है।

संदर्भ

1. दंडी, काव्यादर्श, 1-2.
2. राय, पुनीत, वस्तुनिष्ठ हिन्दी, पृ.सं.185।
3. मिश्र, विद्यानिवास, साहित्य का खुला आकाश।
4. तुलसीदास, रामचरित मानस।
5. तुलसीदास, रामचरित मानस।
6. तुलसीदास, रामचरित मानस।
7. मिश्र, विद्यानिवास, साहित्य का खुला आकाश।

समकालीन हिंदी कविता में आदिवासी विमर्श का स्वरूप

प्रो. तीर्थेश्वर सिंह
आचार्य, हिन्दी विभाग
इं.गाँ.रा.ज.जा.वि.वि. अमरकंटक
drtitheshwar69@gmail.com
फोन नं. 9425331307

समकालीन भारत के पूरे साहित्य पर दृष्टि डालें तो हर भाषा संवेदना और शिल्प के धरातल पर एक बडे परिवर्तन कथ्य और शिल्प के धरातल पर दिख रहा है। पूरा भारतीय साहित्य मानव जीवन के आंतरिक प्रतिरोध को अभिव्यक्त करने की कोशिश कर रहा है। सभी रचनाकारों ने वर्ग विशेष की पीड़ा को गहरी संवेदना के साथ न केवल महसूस किया हैं; बल्कि जरूरत के हिसाब से भरपूर प्रतिरोध विमर्शों के बाद किया। उनके प्रतिरोध के कोख से कई विमर्श पूरे वैश्विक और भारतीय साहित्य में देखे जा सकते हैं। समकालीन हिन्दी कविता भी वर्तमान परिदृश्य में कई विमर्शों से गुजर रही है और इसमें सबसे पहला विमर्श, जो उभर के सामने आया वह 60 के दशक में स्त्री विमर्श। स्त्री विमर्श का प्रारंभिक गूंज वैश्विक परिदृश्य में 19 वीं शताब्दी में ही देखने को मिला; लेकिन हिन्दी साहित्य में उसके आहट महादेवी वर्मा की निबंध 'श्रंखला की कड़ियों में' 1927 ई. को देखने को मिला। इसके बाद मराठी

साहित्य से उभरा दलित विमर्श हिन्दी साहित्य में 7 वें दशक में पूरी तरह से उभर के सामने आया और 20 वीं सदी के अंतिम दशक में ही आदिवासी विमर्श ने अपनी अलग पहचान बनाकर साहित्य की कई मान्यताओं को चुनौती दी।

आदिवासी विमर्श धीरे-धीरे अपने एक निश्चित कथ्य और शिल्प के साथ साहित्य के विमर्शों में एक नया स्वरूप निर्मित करता जा रहा है। हिन्दी साहित्य की हर विधा में अब आदिवासी विमर्श का फैलाव हो रहा है। यह अलग बात है कि 20 वीं सदी के अंतिम छण में आदिवासी विमर्श उभरने लगा लेकिन विद्वान चिंतक यह मानते हैं कि इसकी विधिवत शुरुवात 21वीं सदी के प्रथम दशक के आसपास हुआ आदिवासी चिंतक की स्पष्ट मान्यता है कि उनके साहित्य की परम्परा वाचिक परम्पररा से निकली है। उनका पूरा लोक साहित्य संघर्ष गाथा के यथार्थ से परिपूरित है। इस संन्दर्भ में आदिवासी महिला चिंतक वन्दना ट्टे मानती है कि, ''आदिवासी दर्शन प्रकृति वादी आदिवासी समाज, धरती, प्रकृति के ज्ञात-अज्ञात निर्देश, अनुशासन और विधान को सर्वोच्च स्थान देता है। उनके दर्शन में सत्य, असत्य, सुन्दर, असुन्दर मनुष्य, अमनुष्य जैसी कोई अवधारणा नही है और न ही वह मनुष्य भी उसके बुद्धिविवेक अथवा मनुष्यता के कारण महान मानता है उनका दृढ़ विश्वास है कि सृष्टि में जो कोई सजीव और निर्जीव हैं सब समान है। न कोई बडा है न कोई छोटा है, न कोई दलित है, न कोई ब्राम्हण है। सब अर्थवान है एंव सबका अस्तित्व एक समान है। चाहे वह एक कीड़ा हो, पौधा हो, पत्थर हो या मनुष्य हो। वह ज्ञान, तर्क, अनुभव और भौतिकता को प्रकृति के अनुशासन के सीमा के भीतर ही स्वीकार करता है उसके विरुध नही। अन्वेषण, परीक्षण और ज्ञान को आदिवासी दर्शन सुविधा और उपयोगिता की दृष्टि से नही

देखता; बल्कि धरती, प्रकृति और समतल, जीव, जगत के साथ सहजीवी सामन्जस्य और अस्तित्व पूर्ण संगति के बतौर देखता है। मानव की सभी गतिविधियों और व्यवहारों को समूची विकासात्मक प्रक्रिया को प्रकृति और समष्टि के विरुध नही, बल्कि उसके पूरक के रूप में देखता है। उन सबका उपयोग वहीं तक करता है। जहाँ तक समष्टि की किसी भी वस्तु अथवा जीव को, प्रकृतिऔर धरती में कोई गंभीर क्षति नही पहुंचती है। जीवन का छरण अथवा छय नहीं होता। आदिवासी साहित्य इसी दर्शन को लेके आगे बढता है''।1

आदिवासी जीवन और उनके संघर्ष को लेकर हिन्दी की लगभग सभी विधाओं में कुछ न कुछ लिखा जाने लगा है। हिन्दी में आदिवासी कविताओं में अनुज लुगुन, हरिराम मीणा, निर्मल पुतुल, बन्दना टेटे, विनोद कुमार शुक्ल आदि के अलावा भी कई रचनाकार कविताएँ लिख रहे हैं। इसके अलावा कई आदिवासी भाषाओं में आदिवासी चिंतन को आधार बनाकर कवि अपनी रचना लिख रहा है, जिसका हिन्दी अनुवाद समकालीन हिन्दी कविता को समृद्धि कर रहा है। आदिवासी कविता स्वरूप को समझने का प्रयास अब आगे आदिवासी एंव गैर आदिवासी कवि और उनकी कविता के माध्यम से करेंगे।

आदिवासी कविताओं में लोकधुन कदम-कदम पर देखी जा सकती है। आदिवासी कविताओं में भीषण गरीबी,अशिक्षा, ऋण ग्रस्तता का वर्णन हुआ है। जंगल और पहाडों में रहने वाले आदिवासी की आवश्यकताएँ भी सीमित है उनमें संचय की प्रवृत्ति नहीं है। अपने अभाव और गरीबी में वहाँ सिर्फ दो वक्त की रोटी, रहने के लिए घर के अलावा, और किसी चीज की इच्छा नही रखता है जिसकी अभिव्यक्ति अनुज लुगुन की कविता 'हमारी अर्थी साही हो नहीं सकती' में हुई है-

''हमारे सपनों में रहा है
एक जोड़ी बैल से हल जोतते हुए
खेतों के सम्मान को बनाए रखना
हमारे सपनों में रहा है
कोइल नदी के किनारे एक घर
जहाँ हमसे ज्यादा हमारे सपने हों
हमारे सपनों में रहा है
कारो नदी की एक छुअन
जो हमारी आलिंगन बद्‌ध बाजुओं को और गाढ़ा करे
हमारे सपनों में रहा है
मंदिर और नगाड़ें की ताल में उन्मत्त बियाह
हमने कभी सल्तनत की कामना नही की
हमने नहीं चाहा कि हमारा राज्य भिषेक हो
हमारे शादी होने की कामना में रहा है
अंजुरी भर सपनों का सच होना
दम तोडते वक्त बाहों की अटूट जकडन
और रक्तिम होंठों की अंतिम प्रगाढ़ मुहर''-2

आदिवासी चेतना और उनकी मन की अभिव्यक्ति के माध्यम से समकालीन कविता के कथ्यगत स्वरूप को समझा जा सकता है। विकास के नाम पर जब से सभ्य समाज के लोग आदिवासी क्षेत्रों, पहाड़ों और जंगलों में आये, तब से आदिवासी समाज उनकी संस्कृति पर खतरा बढ गया है। बाहरी लोंगों की नजर आदिवासियों की भोली-भाली युवतियों पर रहती है। उनके खुले पन का लाभ उठा कर उन्हें बहला फुसला कर बन अधिकारी, ठेेकेदार उनकी लड़कियों का शोषण करते हैं जिसकी अभिव्यक्ति ''संथाली

लड़की के बारे में कहा गया है'' शीर्षक कविता में देखा जा सकता है-

''ये वे लोग हैं जो
हमारे ही नाम पर लेकर
गटक जाते हैं हमारे हिस्से का समुद्र
ये वे लोग हैं जो मुँह पर
करते हैं मेरी बड़ाई
और पीठ पीछे की
फुसफसाइटों में देते हैं
बदनाम और बदचलन औरत की संज्ञा
ये वे लोग हैं जो
हमारे बिस्तर पर करते हैं
हमारी बस्ती की बलात्कार
और हमारी ही जमीन पर
खड़े होकर पूछते हैं हमसे हमारी औकात
ये वे लोग हैं जो मेरी कविताओं में भी
तलाशते हैं मेरी देह........................''-3

समकालीन हिन्दी कविता की यह विशेषता है कि उसमें राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक विसंगतियों को यथार्थ उसका मुख्य विषय है यह सब हमें समकालीन कविता के कवियों में देखने को मिलता है। आदिवासी समाज राजनैतिक, सामाजिक कुचक्रों का शिकार है और चारों तरफ छद्‌यम् भेड़िये उनका शोषण का शिकार कर रहे हैं इसकी प्रक्रिया में हरिराम मीणा लिखते हैं-

''क्यूँ न बढती आ रही हो
भेड़ियां की फौज
जो खूँखार लगती

क्या मेमा हम
जो छुप जाएँ
या कर दे समर्पण सामने-4

हमेशा से सभ्य समाज शोषण आदिवासियों का करता रहा। उन्हें हर सुविधाओं से वंचित किया। यह सब करते हुए सभ्य समाज के लोंगों ने यह कभी नही सोंचा कि इसका परिणाम क्या होगा; और जब वे पलटकर वार करेंगे तो किस कदर उनके लिए घातक होगा? इसी बात की चेतावनी इस कविता मेंदेखी जा सकती है-

''छोटे और नाचीज इंसानो को
बस्तियों के हाशिये में पटके रखना
इतिहास की विषय सूची से बाहर रखना
खास बहत मुबाहिसों से दूर रखना
और भविष्य की योजनाओं से बेखबर रखना
यह सब-
एक हद तक की कारगार व कामयाब होता है
इसके आगे..
टूटता है यह सब रबर की तरह
एकदम अचानक फूट जोर
खींचने वाले की पलट-चोंट मारते हुए
यह ता महज एक बानगी है
वरना गुमसुम व खामोश की बर्दाश्तगी
पलती रहती है अपने कोख में
वह विस्फोट बीज
जो समय के इशारे के साथ
फूटता है सोए ज्वालामुखी की तरह

इसी को कहतें-
छोटे और नाचीज समझे जाने वालों की
बडी फतह-[5]

निष्कर्ष

इस प्रकार देखते हैं कि समकालीन हिन्दी कविता में आदिवासी विमर्श का स्वरूप प्रतिरोध और जीवन के यथार्थ अंकन में ही सामने आता है आदिवासी और गैरआदिवासी रचनाकारों ने अपनी कविता के माध्यम से आदिवासी समाज के जीवन संघर्ष और उनके यथार्थ का बडे साफ गोई से न केवल अभिव्यक्त किया है बल्कि उनकी पीड़ा को सभ्य समाज के सामने प्रतिरोध के रूप में रखा है यहीआदिवासी केन्द्रित समकालीन हिन्दी कविता का कथ्यगत स्वरूप है। उनकी शिल्पगत स्वरूप समकालीन कविता की तरह सपाटब्यानी और मुक्त छन्द में है।

सन्दर्भ सूची

(1) "आदिवासी दर्शन साहित्य और सौंदर्य बोध", बन्दना टेटे, संस्कृति प्रकाशन, भागलपुर, बिहार 2016 पृष्ठ 18।

(2) "समकालीन आदिवासी कविता", सम्पादक- हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर 2013 पृष्ठ 15 ।

(3) "समकालीन आदिवासी कविता", सम्पादक- हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर 2013 पृष्ठ 52 ।

(4) "सुबह के इंतजार में शिल्पायन'', सम्पादक- हरिराम मीणा, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली 2018 ।

(5) "सुबह के इंतजार में शिल्पायन'', सम्पादक- हरिराम मीणा, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली 2018 ।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजशास्त्र की प्रासंगिकता

डॉ विदुषी शर्मा

अकादमिक काउंसलर, IGNOU

M- 9811702001, 9625017478

Email- drvidushisharma9300@gmail.com

शोध सार

भारत का वर्तमान प्रशासन अतीत कालीन प्रशासनिक व्यवस्थाओं एवं प्रागैतिहासिक शासनों का विकसित रूप है। अपने वर्तमान रूप में यह ब्रिटिश शासन के विकास से पूर्ण रूपेण प्रभावित है। तथापि भारत का प्राचीन हिंदू युग राजनीतिक और प्रशासनिक दृष्टि से अत्यंत उन्नत माना जाता है। भारत देश का नाम राजा "भरत" के नाम पर पड़ा जो कि शकुंतला और राजा दुष्यंत के पुत्र थे। भारत देश जगतगुरु रहा है। उसके पीछे अनेकानेक कारण हो सकते हैं कि यह शिक्षा, ज्ञान, विज्ञान, तकनीकी, धर्म और अध्यात्म, सभ्यता, संस्कृति मूल्यों (सामाजिक, नैतिक ,पारिवारिक, मानवीय) परंपराओं में, लोक कलाओं और लोक आदि संगीत के वैविध्य में, भाषाओं में, बोलियों में, वैभव में, सभी परिप्रेक्ष्यों में सदा अग्रगण्य रहा है। भारतीय राजशास्त्र या राजतंत्र पर समग्र रूप से जिनका प्रभाव देखा जा सकता है, वे ग्रंथ है - मनुस्मृति,

याज्ञवल्क्य स्मृति, रामायण और महाभारत, गीता, कौटिल्य अर्थशास्त्र, कामंदकीय तथा शुक्र नीतिसार, किरातार्जुनीयम्, तिरुवल्लुवर का ग्रंथ "कुराल" सोमदेव की पुस्तक "नीति वाक्यामृत", पंचतंत्र, हितोपदेश, राज तरंगिणी इत्यादि। क्योंकि भारतीय राजतंत्र का आधार सदैव निष्पक्षता, जाति, धर्म निरपेक्षता, मानवीय मूल्य, "वसुधैव कुटुंबकम", "सर्वे भवंतु सुखिनः", "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय", "सत्यमेव जयते" इत्यादि रहे हैं। यानी भारतीय राजतंत्र आध्यात्मिक, धर्म तथा पौराणिक मान्यताओं पर आधारित माना जा सकता है। या यूं कहना भी अतिश्योक्ति नहीं होगी कि पौराणिक राजव्यवस्था इन्हीं पर आधारित थी। इन सब का आज के युग में भी अधिक महत्व होता जा रहा है । यह सब आधार आज के युग में अधिक प्रासंगिक है कि हम विस्तार से जानने का प्रयत्न करेंगे। भारत जैसे विशाल, गौरवमयी देश को तथा उसकी राज व्यवस्था को 5-7 पृष्ठों में समेट पाना आसान कृत्य नहीं है । प्रयास हमारा कर्तव्य है क्योंकि पूर्णता केवल ईश्वर में विद्यमान है।

कीवर्ड्स - पौराणिक, आध्यात्मिक, नीति, प्रासंगिक, प्रयत्न, मान्यताएं, धर्म, सत्यमेव, हितोपदेश, राजव्यवस्था, वसुधा इत्यादि।

परिचय

किसी भी देश की राजव्यवस्था उस देश के अनुसार ही वृहद होती है। इतनी बड़ी व्यवस्था, इतने बड़े तंत्र को समझना, समझाना बहुत कठिन कार्य है। प्राचीन भारतीय राजव्यवस्था राजा और प्रजा पर केंद्रित थी। इसके लिए आचार्य कौटिल्य ने अपने विश्व प्रसिद्ध ग्रंथ "अर्थशास्त्र" में निम्न विचार रखे थे-

"प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं प्रियं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं प्रियम्"।। (1/19)

अर्थात्-प्रजा के सुख में राजा का सुख है, प्रजाके हित में उसका हित है। राजा का अपना प्रिय (स्वार्थ) कुछ नहीं है, प्रजा का प्रिय ही उसका प्रिय है।

भारतीय राजव्यवस्था की बात हो और आचार्य कौटिल्य का नाम ना आए ,ऐसा हो ही नहीं सकता। कौटिल्य राजकीय सत्ता के प्रबल समर्थक थे। प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था बहुत ही सुव्यवस्थित ,सुगठित, सुप्रबन्धित, अनुशासित, थी। मनुस्मृति, रामायण ,महाभारत,गीता आदि ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है।

मनु के अनुसार,

"राजा को राजदूत नियुक्त कर देना चाहिये, सेना को सेनापति पर आश्रित रहना चाहिये, प्रजा पर नियंत्रण सेना पर निर्भर करता है, राज्य की सरकार राजा पर, शांति और युद्ध राजदूत पर"।

मेगस्थनीज ने अपनी पुस्तक "इंडिका" Indica में वर्णन किया है कि मौर्यो ने अपनी राजधानी पाटलिपुत्र के लिए नगर प्रशासन की एक विस्तृत और सुव्यवस्थित प्रणाली तैयार की। मौर्य काल में भारत ने पहली बार राजनीतिक एकता प्राप्त की। इसके परोक्ष में कौटिल्य के बेहद प्रासंगिक ग्रंथ "अर्थशास्त्र" का नाम लिया जा सकता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वर्तमान व्यवस्था की बात की जाए तो इसकी भूमिका सन 1600 ईस्वी से मानी जा सकती है। जब ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना की गई थी। महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम चार्टर द्वारा उन्हें भारत में व्यापार करने के विस्तृत अधिकार प्राप्त थे। 1857 के विद्रोह के परिणाम स्वरुप ब्रिटिश ताज ने भारतीय शासन का उत्तरदायित्व अपने हाथों में ले लिया ।यह शासन 15 अगस्त 1947

(1857 से 1947 तक) भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति तक अनवरत जारी रहा।

संविधान निर्माण

आजादी के पहले ही भारत को संविधान की आवश्यकता महसूसज की गई । संविधान निर्माण की नींव 1934 में रखी जा चुकी थी। 1946 में संविधान सभा का गठन हुआ और अनवरत कई तरह के उद्‌देश्यो, प्रस्तावों, संविधान सभा की समितियों के गठन इत्यादि के बाद अन्ततः 26 नवंबर 1949 को अपनाए गए प्रस्तुत संविधान में प्रस्तावना, 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां थी ।इसे 26 जनवरी 1950 को लागू किया गया। विधि मंत्री डॉ बी. आर. अंबेडकर के नेतृत्व में समिति का गठन हुआ था। अब भारत एक गणतंत्र में परिणत हो चुका था । भारतीय राज व्यवस्था का आधार है भारतीय संविधान। इसलिए बिना पौराणिक पृष्ठभूमि तथा संविधान निर्माण की बात किये, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसकी प्रासंगिकता की बात करना बेईमानी होगा। इसलिए वर्तमान को ठीक प्रकार से समझने और पहचानने के लिए इतिहास में झांक कर देखना ही पड़ता है। वरना कोई भी जानकारी प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती।

राजशास्त्रीय चिंतन

वास्तव में भारतीय संविधान की प्रस्तावना ही सम्पूर्ण राजशास्त्र की रूपरेखा तथा उसके उद्‌देश्यों, मूल्यों और आदर्शों की व्याख्या करती है । इसके मूल में "विशुद्ध भारतीयता" समाहित है जो कि हमारी पहचान है । वास्तव में संपूर्ण राजकीय व्यवस्था तथा वो भी भारत जैसे विशाल देश की, उसे 5 -7 पृष्ठों में समेट पाना एक दुष्कर कृत्य है। फिर भी हम सार्थक प्रयास

करेंगे। प्रस्तावना के मुख्य शब्द संप्रभुता, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक, गणतंत्र, न्याय, स्वतंत्रता, समता, बंधुत्व, आदि ये वो शब्द है जो संपूर्ण राजशास्त्र का आधार माने जा सकते हैं।

संवैधानिक ढांचा

वर्तमान राजशास्त्रीय व्यवस्था भारतीय संवैधानिक ढांचे पर आधारित होने के कारण, देश में किसी भी प्रकार के सभी विवादों में संविधान द्वारा ही मार्गदर्शन प्राप्त किया जाता है । यह देश का सर्वोच्च कानून है। भारतीय राजव्यवस्था के मुख्य बिंदुओं को हम यहां पर निरूपित करना चाहेंगे क्योंकि भारतीय राजतंत्र इतना अधिक विस्तृत है कि उसके एक- एक विषय पर भी विस्तृत, गहन,सूक्ष्म, चिंतन किया जा सकता है। इसलिए यहां केवल मुख्य बिंदुओं को ही दर्शाया गया है।

भारतीय राजव्यवस्था में संघ तथा इसके क्षेत्र , नागरिकता, मूल अधिकार, राज्य के नीति निर्देशक तत्व, मूल कर्तव्य, संविधान का संशोधन आदि विषय सम्मिलित हैं।

सरकार की व्यवस्था प्रणाली

इस विषय के अंतर्गत संसदीय व्यवस्था, संघीय व्यवस्था, केंद्र राज्य संबंध,अंतरराज्यीय संबंध, राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, केंद्रीय मंत्री परिषद, मंत्रिमंडलीय समितियां, संसद, संसदीय समितियां, संसदीय मंच, संसदीय समूह, उच्चतम न्यायालय, (इनका गठन ,इनकी शक्ति, इनकी भूमिका, अधिकार क्षेत्र आदि) जनहित याचिका आदि सम्मिलित है ।

इसी प्रकार राज्य सरकार, राज्यपाल, मुख्यमंत्री राज्य परिषद, राज्य विधान मंडल, उच्च न्यायालय ,अधीनस्थ न्यायालय, (इनके गठन इनकी शक्तियां, इनकी भूमिका, शक्तियां तथा

अधिकार क्षेत्र), जम्मू और कश्मीर को विशेष दर्जा तथा कुछ राज्यों के लिए विशेष प्रावधान इत्यादि सम्मिलित है।

इसी के साथ स्थानीय सरकार, पंचायती राज, नगर निगम इत्यादि आते हैं। केंद्र शासित प्रदेश और विशेष क्षेत्र, अनुसूचित जाति व जनजातिय क्षेत्र सम्मिलित हैं।

संवैधानिक निकाय के अंतर्गत निर्वाचन आयोग, संघ लोक सेवा आयोग, राज्य लोक सेवा आयोग, वित्त आयोग, अनुसूचित जातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग, भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के लिए विशेष अधिकार, भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, भारत के महान्यायवादी राज्य का महाधिवक्ता शामिल हैं।

गैर संवैधानिक ढांचा, इसके अंतर्गत भी देश के विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय कार्य किए जाते हैं। इनमें प्रमुख हैं नीति आयोग, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राज्य मानवाधिकार आयोग, केंद्रीय सूचना आयोग, राज्य सूचना आयोग, केंद्रीय सतर्कता आयोग, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो, लोकपाल एवं लोकायुक्त इत्यादि।

अन्य संवैधानिक आयाम, सरकारी समितियां राजभाषा, लोक सेवाएं, अधिकरण, सरकार के अधिकार तथा दायित्व, विशिष्ट वर्गों से संबंधित विशेष प्रावधान।

इन सबके अतिरिक्त राजनीतिक को जिससे गतिशीलता मिलती है, वे हैं राजनीतिक दल, निर्वाचन, मतदान व्यवहार, चुनाव कानून, चुनाव सुधार ,दल परिवर्तन कानून,दबाव समूह, राष्ट्रीय एकता एवम विदेश नीति।

यह है भारतीय राजव्यवस्था का प्रारूप।इसमे केवल मुख्य बिन्दुओ को ही सम्मिलित करने का प्रयत्न किया गया है। ये एक ऐसी माला के समान है जिसमें प्रत्येक मोती महत्वपूर्ण है तथा सभी का अपना सौंदर्य है और पूरी माला तभी सुंदर लगेगी जब

सभी मोती अपनी जगह पर विराजमान हो क्योंकि सभी को एक निश्चित, विशिष्ट स्थान प्राप्त है। बिना इस राज व्यवस्था के राज शास्त्र की प्रासंगिकता पर हम विचार नहीं कर सकते ।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजशास्त्र की प्रासंगिकता

यह सत्य है कि समय सदा चलायमान रहता है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। प्रस्तुत राज व्यवस्था का निरूपण 1949 में किया गया था। हालांकि समय - समय पर आवश्यकता तथा परिस्थितियों के अनुरूप इसमें संशोधन भी होते रहे हैं। परंतु लगभग 70 वर्ष के बाद आवश्यकता है परिवेश, परिस्थितियों, वातावरण, देशकाल, विदेशों में भारत की वर्तमान स्थिति, भारतीय जनता की वर्तमान स्थिति, देश की वर्तमान सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, वैश्विक स्थिति के अनुसार इसमें आमूलचूक परिवर्तन करना ही होगा तथा इसकी प्रासंगिकता तभी कायम रह सकेगी, क्योंकि ना तो अब वह मूल्य, आदर्श, सिद्धांत इत्यादि देखने को मिलते हैं और ना ही वह परिवेश। हर जगह भांति - भांति के अपराध ही अपराध नजर आते हैं। ऐसे में न्याय व्यवस्था को पुनः परिभाषित करने की आवश्यकता है। इसी के साथ नए कानून का सृजन तथा इसी के साथ - साथ उसका कानून को जल्द से जल्द सख्ती से लागू करने की भी आवश्यकता है। नियम, कानून बनाने की प्रक्रिया को पुनः परिभाषित करना भी वर्तमान समय की मांग है, कि समाज हित के कार्यों में अनावश्यक विलंब ना हो, तथा सभी को समय पर न्याय मिल सके कि उस प्राप्त न्याय की भी प्रसंगिकता बनी रहे क्योंकि "का वर्षा जब कृषि सुखाने" ऐसी परिस्थितियों के आने से पहले ही सभी को न्याय मिलना ही चाहिए। इसी के साथ अपराधियों को निश्चित समय अंतराल पर

उनके अपराध का दंड। जब तक कानून और व्यवस्था सही प्रकार से कार्य नहीं करती किसी भी देश की उन्नति पर प्रश्नचिन्ह लग जाता है। यह कहा भी है ---

"न भक्षयन्ति ये अर्थान् न्यायतो वर्धयन्ति च ।
नित्याधिकाराः कार्यास्ते राज्ञः प्रियहिते रताः" ॥
(ये अर्थान् न भक्षयन्ति न्यायतः वर्धयन्ति च, राज्ञः प्रिय-
हिते रताः ते नित्य-अधिकाराः कार्याः ।)
(कौटिलीय अर्थशास्त्र, द्वितीय अधिकरण, प्रकरण 25)

अर्थ - जो कर्मचारी राजा का धन नहीं हड़पते, बल्कि उसे न्यायसम्मत तरीके से बढ़ाते हैं, राजा के प्रियदायक हितों में संलग्न रहने वाले वैसे कर्मियों को अधिकारियों के तौर पर कार्य में नियुक्त किया जाना चाहिए। उसी धन से सभी विकास एवं जनसुविधाओं के कार्य किए जाते थे । आज के संदर्भ में राजा उस संस्था को व्यक्त करता है जो देश की शासकीय व्यवस्था चलाती है ।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि जो राजनीति व्यवस्था प्रस्तुत है वह ठीक है ।परंतु राज्यशास्त्र को समयानुकूल, परिस्थितियों के अनुकूल, न्याय के अनुकूल, मानव हित के अनुसार, सभ्यता, संस्कृति के रक्षण, संवर्धन के अनुसार, समाज उत्थान को आदर्श मानते हुए कुछ परिवर्तन, संशोधन अवश्य ही करने चाहिए ताकि विश्व में भारत पुन: जगदगुरू के स्थान पर विराजमान हो जाए। इसकी प्राचीन राज्य व्यवस्था, दंड व्यवस्था, अर्थव्यवस्था, न्याय व्यवस्था, समाज व्यवस्था इत्यादि अपने पौराणिक काल में थे वैसे ही आज की परिस्थितियों को देखते हुए नव निर्मित, संशोधित और उन्हें पुनः परिभाषित किए जाने की अत्यंतावश्यकता है, तभी

भारतीय राज्यशास्त्र अपने वर्तमान परिप्रेक्ष्य में (प्रत्येक आधार पर) पूर्ण प्रासंगिक सिद्ध होगा।

संदर्भ

1 बी एल फाडिया - उच्चतर लोक प्रशासन ।

2 शर्मा एंड अग्रवाल - प्रशासनिक विचार ।

3 सीपी भांबरी- लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार।

4 शर्मा महादेव - लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार ।

5 शर्मा पी डी एच सी - लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार ।

6 पंडित नेहरू - भारत एक खोज।

7 रमेश दत्त- इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया।

8 रणजीत सिंह - भारतीय लोक प्रशासन।

9 शर्मा एंड अग्रवाल - ग्रामीण स्थानीय प्रशासन

10 अवस्थी एंड अवस्थी- प्रशासनिक सिद्धांत

11 भारत की का प्राचीन इतिहास- रामशरण शर्मा ।

12 भारत: गांधी के बाद- रामचंद्र गुहा।

13 कौटिल्य का अर्थशास्त्र - डॉ ओम प्रकाश प्रसाद ।

14 समष्टि अर्थशास्त्र- एससी जैन ।

15 आधुनिक भारतीय चिंतन - हरीश खत्री ।

16 विभिन्न पत्र पत्रिकाएं, समाचार पत्र, इंटरनेट साइट्स।

भारत सरकार
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)

Government of India
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Education
(Department of Higher Education)